

कंकर

हसराज रहबर

दिनमान प्रकाशन

दिल्ली—6

लेखक

प्रकाशन : दिनमान प्रकाशन
3014, चखेवाला, दिल्ली-6

मूल्य : 75.00

दि० प्र० प्रथम संस्करण : 1990

मुद्रक : जितेन्द्र प्रिंटर्स, बाबरपुर रोड
शाहदरा, दिल्ली—32

उत्तराधिकारी

वर्षा होने के पश्चात् आसमान निखर गया था। लाहौर के एक उपनगर में एक बड़ी इमारत के दो मकानों पर दो झूठे सूर्य की किरणों से सर-फोशिया कर रहे थे। इन झूठों में एक तिरफा और दूसरा लाल था। तिरफे पर चर्खा और लाल पर हथौड़े और दराती का निशान बना हुआ था। इन दोनों मकानों के बीच खुला आगन था, जिसमें बड़ शहतूत, शींगम और कई खट्टों के पेड़ उगे थे। उनकी टहनियाँ और पत्तों में घुलने के बाद बहुत ही मनोहर और आकर्षक दिखाई देते थे। इन पेड़ों के बीच एक नौजवान गीली घरती पर उकड़ू बँठा था। उसने रेत की अगुली-दो-अगुली ऊँची दीवारें खड़ी करके अपने गिर्द एक अहाता सा बना लिया था। इस अहाते में सामने की ओर दो द्वार खुलते थे—एक छोटा और दूसरा बड़ा। बड़े द्वार पर उसने एक मेहराब लगाई थी और अब उस पर बेल-बूटे बना कर मुस्करा रहा था, शायद उसे अपनी कला पर भव था, शायद कोई अनूठा विचार उसे गुदगुदा रहा था। छोटे द्वार पर न बेल बूटे थे और न किसी प्रकार की सजावट की गई थी। उसे यो ही छोड़ दिया था। इस बीच मदा और नौजवान साईकिलो पर आये और उसके निकट पहुँचकर रुके। वह नौजवान उन्हें देखकर उठा और फौजी ढंग से सैल्यूट मारकर मुस्करा दिया।

“कामरेड गनी ! यह क्या बना रहे हो ?” एक नौजवान ने पृथ्वी की ओर सकेत करते हुए पूछा।

“यह जेल है और यह दो उसके दरवाजे । बड़ा अमीरों के लिए और छोटा गरीबों के लिए ।” गनी ने उत्तर दिया और वह बराबर मुस्कराता रहा । सच तो यह है कि मुस्कराहट उसके होंठों से कभी अलग न होती थी ।

“अशोक जी ! कामरेड गनी हर वक़्त जेल ही के स्वप्न देखता है । जैसे वह जेल ही में पैदा हुआ हो और जेल ही में जान देगा । उसे और कुछ सूझता ही नहीं ।” उस नौजवान ने अपने साथ आये दूसरे नौजवान से कहा ।

“नही, और भी सूझता है ।” अशोक ने दोनों साथियों पर हर्ष-युक्त निगाह डाली और धरती पर बने नक्शे की ओर संकेत किया, “देखिये, उसने जाने-अनजाने समाज को यहां भी वर्गों में विभाजित किया है । जिससे पता चलता है कि उसने हमारी लड़ाई के बुनियादी असूल को भली-भांति समझ लिया है ।” अशोक ने गनी के कंधे पर हाथ रखा और उसे होले से हिलाकर वाक्य पूरा किया ।

अशोक के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर गनी का चेहरा उल्लास से खिल उठा । होंठों पर जो मुस्कराहट सतत खेलती रहती थी, कानों तक फैल गई ।

“आगे क्या बनाया है ? यह भी बताओ ।” अशोक ने फिर नक्शे की ओर संकेत किया ।

“यह लीडर है और यह जेल का दारोगा.....लीडर.....जेल में दाखिल हो रहा है और दारोगा.....उसे झुककर सलाम कर रहा है ।”

दोनों व्यक्ति खिलखिलाकर हंस पड़े और गनी ने भी हंसी में उनका साथ दिया ।

इतने में चार-पांच आदमी और आ गये और तीन-चार पास के कमरों से निकल आये । अशोक ने सबको जेल का नक्शा दिखाकर गनी की बात दोहराई तो एक जोरदार कहकहा बुलंद हुआ । हवा थरथरा उठी और चूषों की टहनियां हिलने लगी, जैसे वे भी अपनी मूक भाषा में इस अतूठी

सूचक की दाद दे रही हों।

“और हमारा क्या हाल होता है जेलों में, (सिमेंट गनी?)”

“हमारा!” गनी ने गर्दन हिनाई और गोंगकरे बज्जों धुंके किये
“हमने सबकी पिमघाते हैं।” उसने अगुसी पर गिना जैसे बँह रहा हो एक
बात—“मूज बुटवाते हैं—बोस्हू में जानते हैं—और... ” यों तो वह
प्रत्येक वाक्य अटक-अटककर बह रहा था; लेकिन यहाँ पहुँचकर बिल्कुल
रुक गया। वह मोच नहीं सका कि आगे चौथी बात मौन-सी है। आखिर
उसने दोनों हाथ फेंका दिये और कहा—“देखो मह छाले पड़े हुए हैं।”

उमके हाथों पर छाले नहीं थे; मगर छालों के निदान जरूर थे।
अगुनियों के नीचे गट्टे पड़े हुए थे जैसे हासी बँसों के बंधे पर पड़ जाते हैं।

गनी कुछ ही दिन पहले जेल में छूटकर आया था। फँसे हुए हाथों की
सूचक भाषा शब्दों की भाषा से बही अधिक सबल और प्रभावशाली थी।
छालों के निदान स्पष्ट बता रहे थे कि उसे जेल में याकई बड़ी मशक्कत
करनी पड़ी है। सब लोग इन निदानों को ध्यान से देख रहे थे और उनकी
मुन-मुद्रा गम्भीर और कठोर होती जा रही थी। गनी के भीतर का दर्द
इन निदानों के रास्ते उबल-उबलकर बाहर आ रहा था। उसकी आँखों
में प्रतिहार और प्रतिहिमा की भावना उमर आयी थी; मगर होठों पर
अब भी मुस्कराहट नाच रही थी।

यह मुस्कराहट प्रसन्नता की नहीं धीरता की सूचक थी।

कुछ क्षण मौन रहा। यह वह मौन था, जो उस समय देखने में आता
है, जब देश-भक्त नौजवान स्वतंत्रता की पुनीत प्रतिशा को मन-ही-मन
दोहराते हैं। पत्तों पर से वर्षा के बिंदु टपटप गिरने के अतिरिक्त किसी की
सांस भी तेज नहीं चल रही थी।

“बलो अब ऊपर चलें। समय हो गया है।” अशोक ने कहा और सब
उमके पीछे-पीछे उस मकान की ओर बढ़े, जिस पर साल झुंडा फहरा रहा
था।

पार्टी की जतरल बाड़ी की मीटिंग थी। ऐसी मीटिंग महीने में एक
बार बुलाई जाती थी, जिसमें महीने भर के काम की जांच की जाती थी

और आगे का प्रोग्राम निर्धारित किया जाता था। पार्टी के कामों और उसके संगठन पर बहस होती थी। कई बार जटिल समस्या और आकस्मिक घटनाओं पर विशेष ध्यान देना पड़ता था और बैठक लंबी खिच जाती थी।

इस मकान की दूसरी मंजिल पर तीन कमरे थे। तीनों की लम्बाई-चौड़ाई लगभग बराबर थी और आगे बरामदा था। यही पार्टी का दफ्तर था, यही मीटिंगें होती थी और यही अशोक, गनी, नारायण और कुछ दूसरे साथी स्थायी रूप से रहते भी थे।

सब लोग दाईं ओर के कमरे में जमा हो रहे थे। फर्श पर एक चटाई बिछी थी, जो काफी पुरानी थी। झाड़ने में टूट जाने का डर था, इसलिये उस पर गर्द ने कब्जा जमा लिया था। कमरा काफी खुला था, साठ-सत्तर व्यक्ति सहज में बैठ सकते थे। पीछे की ओर दो खिड़कियां थी, जिनमें से पिछवाड़े के मकान दिखाई पड़ते थे। उनकी बाहरी टीप-टाप देखकर ही इस कमरे की विपन्नता आंखों में खटकने लगती थी। सब लोग इस वातावरण से पूर्व-परिचित थे। वे इत्मीनान से चटाई पर बैठ गये और उन चित्रों की ओर देखने लगे जो कमरे की दीवारों पर लगे हुए थे। यह चित्र उन नौजवानों के थे, जो स्वाधीनता-संग्राम में मारे गये, फांसी चढ़े, पुलिस अथवा फौज की गोलियों का निशाना बने थे। उन्हें देखकर दिल जोश और फ़र्र से भर जाते थे। वे देख रहे थे और उनकी आंखों में दृढ़ निश्चय भरा हुआ था जैसे शहीदों को विश्वास दिला रहे हों कि तुमने जो कहानी अपने रक्त से लिखना आरम्भ की है, हम उसे पूरी करेंगे; हम तुम्हारे उत्तराधिकारी हैं, एक ही मार्ग के पथिक हैं; चल रहे हैं; चलते रहेंगे और मजिल को जा लेंगे।

चालीस से ऊपर आदमी जमा हुए। सब नौजवान थे, कुछ स्वस्थ और मुझिल थे; बलिष्ठ दिखाई देते थे, लेकिन अधिकांश पतले-दुबले थे, चेहरे सूखे हुए थे जैसे तपेदिक अथवा दमे के मरीज हों, जैसे विपन्न परिस्थितियों ने शरीर का तमाम रक्त निचोड़ लिया हो। फिर भी वे इन परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्षरत थे, जीवन की चाह में सक्रिय थे। उनकी आंखों में

निश्चय और अनुमति की चमक थी, हृदय में मोहस की नर्मल सतत मजिल की ओर चल रहे थे, कठिनाइयों और कष्टों के बावजूद आगे बढ़ रहे थे ।

अशोक ने घड़ी देखकर एक कागज उठाया और उस पर अपना नाम लिखकर पास के साथी की ओर सरका दिया, उसने भी अपना नाम लिखा और कागज दूसरे को दे दिया, इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपना नाम लिखता और कागज आगे सरकाता रहा । घूमकर वागज जब दोबारा अशोक के पास आया, तो उस पर अशोक, तुफैल, राजेन्द्र, इखलाक, मदन, नारायण और गोपाल के अलावा शीला और पद्मा आदि के नाम लिखे हुए थे । लिखने का ढंग और लिपि विभिन्न थी, पर वे सब नाम एक अटूट और अदृश्य सूत्र में गुंथे हुए दीख पड़ते थे ।

इस बैठक की सबसे जटिल समस्या यह थी कि ओकाढा के कपडे और रुई के कारखानों में जो मजदूर काम करते हैं, उन्हें संगठित करना बहुत कठिन है क्योंकि वहाँ मिल-मालिकों ने अपने वेतन से एक आदमी रखा हुआ है, जो मजदूरों और उनके बच्चों को पढाता है, उनमें धर्म और आध्यात्मिक ज्ञान का प्रसार करता है । वह मिल मालिकों से कह-सुनकर मजदूरों की छोटी छोटी मांगें भी पूरी करवा देता है । अगर कोई मजदूर विशेष रूप से चतुर और उद्दण्ड हो, किसी प्रकार काबू में न आता हो, तो उसे दूसरों से अधिक रियायतें दिलवा देता है । इस प्रकार मजदूर मालिकों के और उस व्यक्ति के भक्त बने हुए हैं और वे किसी मूनिष्यन में संगठित होने को तैयार नहीं हैं ।

अब इस समस्या पर बहस शुरू हुई । मदन जोश में भरा हुआ उठा, सास भीतर खींचकर फेफड़ों में हवा भरी और इधर-उधर दृष्टि डालकर भाषण शुरू किया—“साथियों ! जिस व्यक्ति ने मार्क्स का ‘डास कॉपिटल’ पढ़ा है उस पर यह बात चमकते हुए दिन की भांति विदित है कि पूँजी-पतियों और मजदूरों के हितों में जमीन और आसमान का अन्तर है । घन-पिशाचों की यह कुटिल नीति है कि वे छल, कपट और बेईमानियों से निर्धन जनता को श्रान्तिकारी संगठन से रोकते हैं ”

श्रोताओं ने अर्धवि व्यक्त की, लेकिन इससे पहले कि कोई दूसरा बोलता, अशोक ने स्वयं उसे टोका—“कामरेड मदन ! भाषण करने के बजाय बेहतर है कि आप अपना सुझाव रखें ।”

मदन तनिक धबराया ; लेकिन तत्काल संभलकर बोला—“जी हाँ, मैं सुझाव ही तो रख रहा हूँ । कहने का तात्पर्य यह है कि हम भोने और गुम-राह मजदूरों को बतायें कि वे घन-पिशाचों और मिल-मालिकों के हथकंडों और दगाबाजियों को समझने के लिए बुद्धि से काम लें ।”

मदन बैठ गया और उसने इधर-उधर निगाह डाली । वह देखना चाहता था कि सुनने वालों पर उसके सुझाव का क्या प्रभाव पड़ा है ।

“इस सुझाव में मेरा यह विनीत संशोधन है कि अगर बेचारे मजदूरों के पास बुद्धि न हो, तो हम खरीद कर भेज दें ।” नारायण ने अपने स्थान पर बैठे-बैठे कहा, और लोग मुस्कराये ।

तीन आदमी अपना-अपना सुझाव पेश करने के लिए एक साथ उठ खड़े हुए । उनमें जो सबसे पहले उठा था, उसकी ओर संकेत करते हुए अशोक ने कहा—“कामरेड गोपाल बोलें ।”

गोपाल का चेहरा गोल और शरीर स्थूल था । उसने चूड़ीदार पायजामे के ऊपर काली अचकन पहन रखी थी, जो उसके गोरे रंग पर खूब खिलती थी और गांधी टोपी उसके हाथ में थी । जब वह बोलने के लिए खड़ा होता, तो टोपी जरूर उतार लेता और घड़ीवाली कलाई आप ही आप सामने आ जाती । एक क्षण इधर-उधर देखकर बोला—

“मैं एक उचित सुझाव हाऊस के सम्मुख रखता हूँ ।” श्रोताओं में सरसराहट हुई जैसे वे इस उचित सुझाव को सुनने के लिए उत्सुक हो । गोपाल ने टोपी हिलाई और घड़ी पर निगाह डाली—“मेरा सुझाव है कि मजदूरों में लगातार जलसे किये जायें जिनमें ट्रेड यूनियन आन्दोलन का इतिहास उन्हें समझाया जाय और पम्पलेट छापकर बाँटे जायें ताकि उन्हें मालूम हो कि इंग्लैंड, फ्रांस और अमरीका आदि उन्नत देशों की मजदूर सभाएं किस प्रकार काम करती हैं ।”

गोपाल ने इतना कहा और बैठ गया । किसी को मालूम भी नहीं

हुआ कि उसने अपनी बात खत्म कर दी है या अभी कुछ और कहना है। इसलिए सब चुप रहे और कोई दूसरा नहीं उठा। इससे गोपाल ने समझा कि उसका सुझाव सबको पसन्द आया है। वह फिर बोला—“मेरे पास अग्रेजी अखबारों के ऐसे कटिंग मौजूद हैं, जिनमें इन देशों की मजदूर सभाओं की कार्य पद्धति दर्ज है। पैम्पलेट छापने के लिए मैं वे कटिंग दे सकता हूँ।”

कुछ लोग और बोले। इनमें से दो-तीन ऐसे भी थे जो मजदूर आन्दोलन में काम करते थे, इसलिए उन्होंने निजी अनुभव की बातें कही और बाकी सुझाव रखे। जैसे तुफैल ने कहा—“मैं समझता हूँ कि काम करने का तरीका यह है कि मजदूरों में जाकर रहा जाय और उनसे जाती ताल्लुक पैदा किया जाये।”

जगदीश एक ओर चुप बैठा था मुख मुद्रा गम्भीर और आँखें बड़ी बड़ी। उसकी अत्यंत चुप्पी सबको प्रभावित कर रही थी। अशोक ने उसकी ओर सकेत किया—“आपकी क्या राय है?”

‘मेरा खयाल है तुफैल का सुझाव सही है। यहाँ से दो-तीन साथियों को भेजा जाय जो स्थायी रूप से वहाँ रहें, समझदार और बारसूख मजदूरों से ताल्लुक बनायें। उनके जरिये दूसरों से मिलें। जब काफी मजदूरों से जान पहचान हो जाय तो यूनियन कायम कर दें।”

इसी आधार पर फैसला हुआ कि राजेन्द्र और इल्ललाक को कल ही उकाड़ा भेज दिया जाये। वे वहाँ जाकर रहें और यूनियन बनाने के उपाय सोचें।

इसके उपरांत एजडा के अनुसार कुछ स्टडी सर्किलों और एक कान्फ्रेंस के बारे में विचार होना था। और आखिरी मद्द यह थी कि कामरेड गनी नवी बार जेल काटकर आया है, उसे अपने इस त्याग और दश सेवा के लिए पार्टी की ओर में सम्मानित किया जाये।

एजडा पूरा हो जाने के बाद भी बातचीत होती रही जो लेखराम से जेल में भेंट और बलबन्त की अपील के बारे में थी।

वालंटीयर

कुछ व्यक्ति शरीर और मस्तिष्क से स्वस्थ होते हैं। अगर उन्हें अनुकूल परिस्थितियों में रखा जाय तो वे समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। मगर उन्हें समाज में ऐसे निचले स्तर पर रखा जाता है, जहाँ लोग उनके साथ कीड़े-मकौड़ों का-या व्यवहार करते हैं, उन्हें पागल समझते हैं और उन पर फब्तियाँ कसते हैं। जिस प्रकार पत्थर के नीचे दबा हुआ दाना उभरने की इच्छा करता है, जिस प्रकार अथाह खोह में पड़ा हुआ जल-बिंदु नदी की तरंगों में मचलने की कामना करता है; जिस प्रकार तुच्छ से तुच्छ अणु यह चाहता है कि वह आंधी के साथ मिलकर तूफान बन जाय, इसी प्रकार इन व्यक्तियों के मन में यह अरमान निहित रहता है कि अपने इर्द-गिर्द चल रहे सघर्ष में आगे बढ़कर भाग लें और जीवन को सार्थक बनायें। मगर उन्हें जीवन को सार्थक बनाने का अवसर ही नहीं मिलता। दुनिया उनकी अवज्ञा, अवहेलना और उपेक्षा करती हुई अपने मार्ग पर चलती रहती है और वे दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए कुछ ऐसी वेशभूषा बना लेते हैं; कुछ ऐसी चेष्टायें करते हैं, जो अनूठी और विचित्र होती हैं; लेकिन इस विद्रूप से उनकी विद्रोह-भावना संतुष्ट नहीं होती।

नौ-दस साल पहले लाहौर के बाजारों और गलियों में एक ऐसा ही पागल व्यक्ति घूमता दिखाई देता था। उसकी उम्र चौबीसेक साल होगी, कद दमियाना, शरीर गठा हुआ और रंग गोरा था; कपड़े मँले, ढीले-ढाले

और कुछ फटे हुए थे। वह निरुद्देश्य घूमता रहता। एक बिगुल हर वक्त पास रखता, जब जी में आती उसे जोर-जोर से बजाने लगता। लेकिन ध्यान से देखने पर पता चलता कि बिगुल बजाना अकारण और निरुद्देश्य नहीं है, इसके पीछे एक निश्चित भावना है। जब कोई मोटर फर-फर करती हुई समीप से गुजरती है, तब वह बिगुल बजाता है, चन्द कदम पीछे दौड़ता है। जब किसी घनी व्यक्ति अथवा अग्रेज या मेम को देखता है, तो बिगुल बजाने लगता है, जैसे उनका उपहास कर रहा हो, उनकी खिल्ली उड़ा रहा हो और उसे उनकी शकल तक देखना गवारा न हो।

लोग उसकी ये विचित्र चेष्टायें देखते और कहते—“पागल है। किसी सदमे ने दिमाग खराब कर दिया है।” लेकिन जो लोग राजनीति में दिल-चस्पी लेते थे, वे अपने सन्देह और शकयें यो व्यक्त करते—‘भेदिया है। खुफिया पुलिस का आदमी है। जान बूझकर यह भेस बना रहा है’

दूसरी बात सत्य से उतनी ही दूर थी जितनी पहली निकट। बहुत से लोग जानते थे कि पाच-छ महीने पहले वह अपने भाई के साथ मजदूरी किया करता था। वह और उसका भाई स्टेशन और मोटरों के अड्डे से मुसाफिरो का सामान उठाकर उनके ठिकानों पर छोड़ आते थे। इस प्रकार दिन भर की मेहनत मशकत से जो कुछ पा जाते उससे अपना पेट पालते थे। एक दिन सख्त घूप पड़ रही थी और दोनों भाई भारी बोझ सिर पर उठाये जा रहे थे। बड़ा भाई आगे-आगे चल रहा था, सामने से मोटर ने हार्न दिया, वह उसकी खद में आते-आते बचा, लेकिन यो ही एक ओर को मुड़ा तो केले के छिलके पर से पाव फिसल गया। कुछ दिन पहले उसे ज्वर आता था, इसलिए शरीर दुर्बल था। यह घटना मौत का वहाना बन गई।

भाई की मृत्यु के पश्चात वह इस विशाल सप्तार में अकेला—बिल्कुल अकेला रह गया। उदास और गमगीन इधर उधर घूमता रहता, जब फिरते-फिरते थक जाता, तो कम्पनी बाग में, जहा डेरो भिखमंगे पड़े रहते हैं, जा बैठता, घटो वहा बैठा रहता और इन भिखमंगो को देखता रहता। उसे यह चातावरण पसन्द था, इसलिए वहा बैठना अच्छा लगता था। राह

चलते लोग उसे भी भिखारी समझते और पैसा-धेला उसके आगे फेंक जाते। लेकिन वह उसे मिट्टी-कंकर समझकर यों ही पड़ा रहने देता, कोई पास बैठा भिखमंगा लपककर उठा लेता। रातें पहले भी दातागंज-बखश में गुजरती थी, अब भी वही पड़ा रहता था। अमीर आदमियों की ओर से भिखारियों में रोटियां बटा करती थी। वह भी बैठा-बैठा हाथ फैला देता और रोटी लेकर खा लेता। उसे यह भूल जाता कि मैं पहले ही दातागंज-बखश से खाकर चला हूँ।

एक दिन सुबह सवेरे वह आंख खुलते ही दातागंज-बखश से चला आया और बहुत देर तक सड़कों पर घूमता रहा। अब वह भिखमंगो में आकर बैठा तो रोटियां बंट रही थीं। उसने अभी तक कुछ नहीं खाया था, सब्त भूख लगी थी, वह बड़ी उत्सुकता से रोटी का इन्तजार करने लगा।

सब भिखमंगों को पंक्ति में बैठे रहने का हुक्म था। अगर बाग के किसी दूसरे भाग से कोई भिखमंगा आकर रोटी मांगता, उसे दुत्कार दिया जाता, और पंक्ति में बैठ जाने को कहा जाता। अगर वह कहीं बीच में घुसने की कोशिश करता, तो आपस में लड़ाई शुरू हो जाती क्योंकि कोई भी भिखारी यह नहीं चाहता था कि उसका नम्बर पीछे पड़ जाय। शायद उस तक पहुंचते-पहुंचते रोटियां खत्म हो जायें और उसे खाली पेट रहना पड़े। हर एक भिखारी को एक-एक रोटी दी जाती थी। अगर कोई असतोष प्रकट करता और गिड़गिड़ाकर कहता—‘माई-बाप ! भूख लगी है। एक रोटी और मिल जाय’ तो रोटियां बांटने वाले की आंखों में दया के बजाय घृणा उमड़ आती और वह टपटकर कहता—‘पेट भर खाना है तो काम किया कर। मांगकर पेट नहीं भरता।’ वह बेचारा चुप हो जाता। पेट भर जायेगा तो भगवान का नाम कौन लेगा ? अमीरों के लिए दुआएं कौन मांगेगा ? फिर उसे क्या मालूम कि रोटियां बांटने का उद्देश्य भूख मिटाना नहीं, एक धनी व्यक्ति के लिए स्वर्ग की सीढ़िया तैयार करना है।

बांटते समय अगर कोई रोटी घरती पर गिर जाती तो सब भूखे उस

पर लपकते, छीना झपटी शुरू हो जाती। रोटी धूल से सन जाती, जिनमें जिसके हाथ लगती, ले भागता और मँले कपड़ों से पूछ-पूछ कर खाता कितनी बड़ो थी इन्सान की भूख। कुत्ते और कोबरे ~~आसपास~~ महाराष्ट्र करते, उसकी ओर देखते रह जाते।

वह पक्ति के एक सिरे पर बैठा सब कुछ देख रहा था। समय, जैसा सबसे बड़ा वारू है, उसके दुख को धीरे-धीरे कम कर रहा था, शिथिल चेतना हरकत में आ रही थी। गर्म लोहा लगने से जैसे अर्ध-चेतन मनुष्य भी एकदम चौंक उठता है, भूख का यह वीभत्स दृश्य देखकर उसकी चेतना एकदम जाग उठी। वह झुञ्जलाने और बटबटाने लगा। उसके भीतर व्यग्रता बढ़ रही थी और शरीर तिलमिला रहा था, जैसे उसे समूचे वातावरण से घूणा हो और वह यहाँ से भाग जाना चाहता हो। पर वह भागा नहीं, अपनी जगह पर बैठा रहा और देखता रहा। शायद उसे भूख अधिक लगी थी, शायद बैठे रहने की आदत पड़ गई थी।

मगर जब उसकी बारी आई तो उसने मर-भूखो की तरह हाथ नहीं फैलाया, अपने विचारों में मगन बैठा रहा।

“हे।” रोटी बाँटनेवाला तीखे स्वर में चिल्लाया। विचार-मुद्रा टूटी, हाथ आप ही आप फैल गये और आँखें ऊपर उठी—“ध्यान भी नहीं रखता। नवाब बना बैठा है, हरामजादा।”

उसके तन-बदन में आग लग गई। उसने आँव देखा न ताव, गाली देने वाले के मुँह पर रोटी दे मारी और चल दिया। बाँटने वाले का चेहरा और कपड़े दाल से सन गये। भिखमगों को उसकी यह हरकत बुरी लगी और वे “हो! हो!” करते आने दाता के गिर्द जमा हो गये, जैसे उसे प्रहार से बचाना चाहते हों। साप धाला दूसरा आदमी टोकरा अलग रख कर उसके चेहरे और कपड़ों पर से दाल पूछने लगा और भिखमगे टोकरो में से रोटिया उठा-उठाकर खिसकने लगे।

वह फिर कभी भिखमगों के बीच जाकर नहीं बैठा। उसके भीतर विद्रूप भावना जाग उठी थी और मन में क्षीम ज्वालाभुखी की तरह में पडे लावे के सदृश उबल रहा था। जो चाहता था कि जोर-जोर से चिल्लाये,

सारी दुनिया को अपने दुख से परिचित कर दे; लेकिन वह अपढ़ भावनाओं को व्यक्त करने की शक्ति से वंचित था।

एक दिन वह किसी कवाड़ी की दुकान पर सहसा रुक गया। बहुत से लोग अपनी जरूरत की चीजें खरीद रहे थे। नुककड़ पर एक बिगुल पड़ा था, यों ही उसकी दृष्टि बिगुल पर पड़ी, उठाकर बजाने लगा। दुकानदार ग्राहकों को निपटाने में व्यस्त था, उसे किसी ने नहीं देखा, खड़ा बिगुल बजाता रहा। जितनी तेज आवाज निकलती थी, वह उतना ही अधिक प्रसन्न होता था। यह बिगुल उसकी भावनाओं को व्यक्त करने का साधन बन गया। वह आवाज को इस भय से बहुत ऊंचा नहीं करता था कि कहीं दुकानदार को बुरा लगे और वह उसे मना कर दे।

अब वह प्रायः दुकान के आस-पास मंडराया करता, अवसर पाते ही आंख बचाकर बिगुल उठा लेता, उसे कभी धीमे और कभी उच्च स्वर में बजाता, बिगुल की आवाज उसे सांत्वना देती। एक बार दुकानदार ने उसे बिगुल उठाते देख लिया और टोक कर कहा—“लेना चाहते हो?”

“हां।”

“निकालो पैसे।”

उसने खाली जेब उलट दी और घूरकर दुकानदार की ओर देखा।

“पैसे नहीं तो इसे क्यों उठाता है, चल भाग यहा से।”

वह बिगुल रखकर निराश और हताश चल पड़ा। लेकिन दुकानदार को एक बात सूझी और उसे वापस बुलाया—

“मजदूरी करना चाहता हो तो बिगुल मिल सकता है।”

मृत्यु का भयानक दृश्य उसकी आंखों में विजली की तरह कीष गया। जब से भाई मरा था, उसने यह पेशा छोड़ दिया था। मजदूरी के नाम ही से उमकी रूह वाप उठती थी। दुकानदार की बात सुनकर वह दुविधा में पड़ गया। उसने एक ललचाई हुई निगाह बिगुल पर डाली और सोचने लगा।.....

“बता करेगा मजदूरी?” दुकानदार ने फिर पूछा।

“हां!” उसके अन्दर से आवाज निकली।

कुछ दिन पहले कबाड़ी ने नीलामी का भाल खरीदा था, जिसे अब उठा-उटाकर दुकान में लाया जा रहा था। चार-पाच मजदूर पहले लगा रहे थे, जो सुबह से शाम तक काम करते थे, वह भी उनमें शामिल हो गया। चौथे दिन जब सारा सामान ढो लिया गया, उसे अपनी मजदूरी में वह बिगुल मिल गया।

बिगुल पाकर वह इतना खुश हुआ, जैसे उसे एकाकी जीवन का सगी मिल गया हो। वह उसे जोर-जोर से बजाता, भरे बाजार में अपने मन के क्षोभ को व्यक्त करता और जब रात को जाकर दातागज में लेटता तो एकान्त में उससे बातें करता। वह उसका हमदर्द, साथी और बन्धु था। फिर ताज्जुब ही क्या, अगर वह उसे प्यार करता था। वह बिगुल को सीने से लगाकर सोता और सुबह होने तक उसे कई बार यों थपक लेता, जैसे रडवा वाप तनिक आख खुल जाने पर अपने बे-मा के बच्चे को थपक लेता है।

एक दिन वह बिगुल बजाता हुआ बाजार में से गुजर रहा था कि पीछे से किसी ने पुकारा—

‘हे बिगुल वाले !’

सभी उसे बिगुल वाला कहते थे, मगर इसके साथ ‘हे’ का प्रयोग उसे अखरा। मुड़कर देखा तो पुकारने वाले की आखों में रोटी बाटनेवाले की तरह अवज्ञा नहीं थी। वह आगे आया और उसके कंधे पर हाथ रखकर मर्मी से बोला—

“सुन भई ! तू सारा दिन बेकार घूमता है, हमारे इस्तहार ही बांट दिया कर। तुम्हें दो आने फी सौ के हिसाब से पैसे मिल जाया करेंगे।”

वह इस्तहार बाटने लगा।

अनुभव से मालूम हुआ, यह काफी दिलचस्प काम था। आर्थिक लाभ तो था ही, इससे कहीं अधिक लाभ यह था कि प्रसन्नता प्राप्त होती थी। उसे दूसरों को यह आभास कराना होता था कि दुनिया में सिर्फ तुम्हीं नहीं रहते, मैं भी रहता हूँ—मेरा भी एक अस्तित्व है और इस अस्तित्व की तुम उपेक्षा नहीं कर सकते। वह बिगुल बजाकर राह चलते लोगों को

अपनी ओर आकर्षित करता, आमने-सामने खड़ा होकर दृष्टहार पकड़ाता, आंखों से आंखें मिलाता और उसकी अन्तरात्मा में यह बात कहीं-न-कहीं आप-ही-आप अंकित हो गई—अपना अस्तित्व स्वीकार कराने का इससे बेहतर कोई और उपाय नहीं है।

ढाही मार्च से सविनय भंग का आन्दोलन आरम्भ हुआ। देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक हलचल मच गई। मर्द और औरतें विदेशी साम्राज्य के विरुद्ध स्वाधीनता-संग्राम लड़ने के लिए उठ खड़े हुए। हर रोज कानून तोड़ा जाता था, जुलूम निकलते थे, गिरफ्तारियां होती थी और लाठीचार्ज होता था। इन जुलूमों में कितना जीवन, कितना जोश था। जुलूसवालों के नारे हर एक उत्पीड़ित और हर एक पददलित की मनो-भावनाओं को ध्वस्त करते हुए जान पड़ते थे। वे किस साहस और वीरता से आगे बढ़ते थे और अपने आपको गिरफ्तारियों के लिए पेश करते थे। दमन का उन्हें तनिक भी भय नहीं था। लाठियां खाकर गरदन और तन जाती थीं - ...

उसके मन में आई मैं भी जुलूस का एक अंग बन जाऊं, हत्थारी, हिसक और बर्बर शक्ति को उन्हीं की तरह चुनौती दूं।

अगले दिन वह एक जुलूस के आगे-आगे छाती ताने और गर्दन अकड़ाये विगुल बजाता हुआ चल रहा था। वह अपने भीतर असाधारण शक्ति और अतुल साहस अनुभव कर रहा था, उसका कदम एक खास अन्दाज और ध्यान से उठ रहा था, उसके अंग-अंग में नया रक्त और नया जीवन मचल रहा था।

जुलूस योंही चौक में पहुंचा, पुलिस ने उसे रोक लिया और लोगों को दस मिनट के अन्दर-अन्दर जुलूस भंग कर देने का हुक्म दिया। अहले-जुलूस न डरे, न घबराये, बल्कि वे पहले से भी अधिक साहस और संगठन का प्रदर्शन करने लगे। जुलूस भंग करने के बजाय वे एक दूसरे की बांहों में बाँहे ढालकर खड़े हो गये। जो कोई जहाँ था, वही हट गया, जैसे यह मानव-समूह न होकर लोहे की दीवार हो। पुलिस उनके तेवर देखकर चिढ़ रही थी और डर भी रही थी। ये लोग अगर कहीं बिगड़ खड़े हुए तो लेने

के देने पड़ जायेंगे। सिपाही लाठियों सगीनो और बंदूको से लैस थे, पर जुलूस की सामूहिक शक्ति कितनी विशाल, अखड और महान थी। निहत्थे लोगो का साहस देखकर उनका पित्ता पानी हो रहा था। मगर सिपाही और उनके अफसर यह भी जानते थे कि वे अहिंसा व्रतधारी हैं, उनके हाथ बंधे हुए हैं, सिर्फ जबानों खुली है और नारे ही नारे हैं। दस मिनट गुजरते ही वे बदहवास होकर जुलूस पर टूट पड़े। लाठिया पड़ती रही, जोश बढ़ता रहा और नारे बुलन्द होते रहे। कुछेक के सिर टूटे बहुतो को जखम आये और जुलूस के नेता गिरपतार कर लिये गये।

वह अपने स्थान पर खडा बिगुल बजाता रहा। उस पर न लाठी पड़ी और न उसे किसी ने गिरपतार किया। पुलिस उस जुलूस का अग ही नहीं समझती थी क्योंकि न गांधी टोपी थी और न खदर पहन रखा था।

अगर पुलिस की लाठी से सिर पट जाता तो उसे उतनी ही प्रसन्नता होती जितना अब साफ बच जाने का दुख था। वह इतना किंचिन क्यों है कि उसकी ओर कोई ध्यान ही नहीं देता? वह भी लाठिया खायेगा, गिरपतार होगा। उसमे जुल्म को चुनौती देने का साहस और शक्ति है, वह जुलूस का अग बनेगा, जरूर बनेगा।

थोड़ी ही देर बाद वह मोरी दरवाजे के बाहर कांग्रेस के कैम्प में खडा था। वहा वालटियर भर्ती किये जाते थे।

“क्यों आया है?” सेक्रेटरी ने पूछा।

“भरती होने।”

“कोई सिफारिश है?”

वह समझ नहीं सका कि इस सवाल का मतलब क्या है। अवाकू और विमूढ सेक्रेटरी के मुह की ओर ताकता रहा।

“सी० आई० डी० का मालूम होता है।” उसे चुप देखकर सेक्रेटरी ने वालटियर आफीसर से कहा।

वालटियर आफीसर जगदीश था। उसने सिर से पाव तक एक दृष्टि उस पर डाली और फिर वही पहला सवाल दोहराया—“क्यों आये हो?”

“भरती होने।”

जगदीश ने एक फार्म उठाया और सिफारिश के खाने में अपना नाम लिखते हुए कहा—

“तुम्हें भरती किया जाता है, अपना नाम बताओ।”

उसका मन उल्लास से भर उठा और होंठों पर मुस्कराहट तिर आई।

बोला—

“गनी !”

एक मोड़

अशोक ने जब राजनीतिक बदियों के आने की खबर सुनी तो वह इतना खुश हुआ, जैसे लाखों-करोड़ों सुनहली किरणों उसकी रूह में एक साथ जगमगा उठी हो; जैसे जेल की दीवारें ढह गईं हो और वह खुले वातावरण में आजादी से साग ले रहा हो। नये मेहमानों से गले मिलेगा। वे सब उसके साथी हैं, हम-कदम है, स्वाधीनता सग्राम व सिपाही है। वह डांडी माचें और तूफान की आमद-आमद की खबरें अखबार में पढता रहा था। अब इस तूफान से तरंगित मानव-हृदयों को देखेगा, सारे हालात नये साथियों की जबानी सुनेगा।

उमने कमरे की मफाई की। दीवारों को झाड़ने और जाले उतारने के अलावा फर्श धोया। साथियों का स्वागत करने के लिए वह कितना उत्सुक और कितना उतावला था। इस उतावलेपन में एक असावधानी हो गई, मन को ठेस लगी।

कमरे के एक कोने में अजनहारी ने घर बना रखा था। जिसे वह उस समय से देख रहा था, जब से नन्ही सी जान ने वही से चिक्नी मिट्टी ला-लाकर उसे बनाना शुरू किया था। वह घर को बनते देखता और सोचना—“जिन्दगी में बढ़ने की तमन्ना है और सृजन चेतना है। इस चेतना ने अजनहारी को निर्माता बना दिया है।” घर बनकर तैयार हुआ। वह बाहर से उड़ती हुई आती, घर के समीप पहुँचकर पर समेटती और सट से भीतर घुसी जाती। “जिन्दगी अपनी ही जैसी दूसरी जिन्दगी को

जन्म दे रही है, अपना प्रतिरूप उत्पन्न कर रही है !” अशोक के सम्मुख सृष्टि के विकास का परिच्छेद खुल गया। जिस सिद्धान्त को उसने पुस्तको में पढा था, अजनहारी उसका जीवित उदाहरण प्रस्तुत कर रही थी।

अंजनहारी आती और जाती रही। अशोक उसे और उसके घर को देख-देखकर सोचता रहा—“अंडे शायद दे चुकी है। अब उन्हें से रही होगी—और अब बच्चे निकल आये होंगे। नन्हे-नन्हे तनिक-से बच्चे—जैसे बो देने के बाद बीज में से अंकुर फूट आते हैं, धीरे-धीरे बड़े होंगे, पंख निकलेंगे और एक दिन घर की दीवारों को तोड़कर फुर से उड़ जायेंगे—और फिर वे खुद एक नई, अपने ही जैसी, जिन्दगी को जन्म देंगे……”

अशोक दीवारों को टूटते और बच्चों को उड़ते देखना चाहना था। वह कमरे की सफाई करते और फर्श धोते समय ध्यान रखता कि इस घर को क्षति न पहुंचे। एक बार अंजनहारी कही से “एक मुर्दा कीड़ा उठा लाई; उसे लेकर जब वह घर में प्रवेश करने लगी तो कीड़ा नीचे धरती पर गिर पड़ा। अशोक ने उसे उठाकर सुराख अर्थात् घर के दरवाजे पर रख दिया ताकि अजनहारी उसे बच्चों को खिलाये, वे जल्द बड़े हों और फुर से उड़ जायें। लेकिन……लेकिन उस दिन वह आने वाले साथियों के खयाल में इतना मगन था कि इस घर का ध्यान ही न रहा। फर्श धोने के लिये पानी का डोल जोर से कोने में फेंका, तो घर टूटकर फर्श पर आ गिरा। अंजनहारी के दो बच्चे पंख निकलने से पहले ही मृत्यु की भेंट हो गये।

उसे आघात लगा। वह सारा दिन कमी-कमी-सी महसूस करता रहा, जैसे उसने कोई प्रिय वस्तु खो दी हो। आने वालों का खयाल भूल गया। अपना एक साथी और उससे सम्बन्धित एक घटना याद आ रही थी। साथी और वह दोनों बीहड़ जंगल में एक पुराने मकान में छिपे हुए थे। वहां जंगली कबूतर बच्चे दे रहे थे। कुछ ही दिनों में कबूतर को बाज पकड़कर ले गया और कबूतरी बिल्ली का आहार बनी। अनाथ बच्चे रह गये। पंख निकल आये थे; लेकिन उड़ने की शक्ति अभी उनमें नहीं थी। उन्हें

चोगा कौन दे ? अशोक का साथी दाने चबा-चबाकर मुह बच्चों के सामने खोल देता और वे उसके हाथ पर निश्चित बँठे चबाये हुए दाने अपनी नहान ही चोचो में भर लेते । पुलिस उनकी टोह में जासूसी कुत्ते की तरह जमीन सूघती फिरती थी । वहाँ अधिक ठहरे रहने में पकड़े जाने का भय था । फिर भी उन्होंने वह मकान उस समय तक नहीं छोड़ा, जब तक कि वच्चे उठने और अपने आप चोगा लेने में समर्थ नहीं हो गये । अपने क्रान्तिकारी साथी का जो चित्र इस समय अशोक की आँखों के सामने घूम रहा था उसमें ब्रूतर का बच्चा उसके मुह में चोच डाले चोगा ले रहा था ।

उसका वह बहादुर साथी एक अग्रेज अफसर को गोली का निशाना बनाने के अपराध में फाँसी पा चुका था ।

वह अकेला ही नहीं, कई और साथी भी फाँसी चढ़े थे । उनके मरने का गम जरूर था, लेकिन खुशी भी थी । उन्होंने खुद मरकर एक सिद्धांत को — देश भक्ति की भावना को जीवित कर दिया था । उनकी याद से कितने ही दिल गव से भर उठते थे । क्रान्तिकारी दल पुलिस और फौज की सगठित शक्ति पडयंत्र केस, मारपीट, भूख हड़ताल, कँद और फाँसी, जाने क्या क्या घटनायें याद आती और अपने राजनीतिक जीवन की सारी कहानी फिल्म रील की तरह आँखों के सामने घूम जाती ।

सन् 1921 में असहयोग आंदोलन शुरू हुआ । लगता था कि हिन्दू और मुसलमानों ने एक मत होकर देश को आजाद कराने का दृढ़ संकल्प ले लिया है । अग्रेज अब गये ही गये । गांधी ने एक साल की अवधि निश्चित की थी, लेकिन उम्मीद थी पहले ही चले जाएंगे । नौजवान स्कूलों-यूनिवर्सिटियों और सरकारी नौकरियों का बायकाट कर रहे थे । जगदीश और अशोक कालेज में पढ़ते थे । जगदीश को एम० ए० की परीक्षा में बैठना था, अशोक उससे छोटा था और तीन माल पीछे । उन्होंने भी ममय की ललकार को सुना और कालेज छोड़कर सत्याग्रह-आन्दोलन में सम्मिलित हो गये ।

आन्दोलन जोरी पर था और देहातो में फैल रहा था । किसान जनता

सदियों के शोषण और अत्याचार का अन्त करने के लिये उठ खड़ी हुई थी। चोरी-चोरा की घटना घटित हुई और गांधी ने आन्दोलन वापस ले लिया। क्रांतिकारी भावना को आघात पहुंचा, आजादी के सपने अधूरे रह गये। आन्दोलन का स्थान रचनात्मक-कार्य ले लिया। शिक्षा के राष्ट्रीय केन्द्र खोले गये, जिनमें नौजवानों को संयम, सत्य और आत्मशुद्धि की शिक्षा दी जाने लगी। इतिहास और राजनीति से कहीं अधिक धर्म और अध्यात्मवाद पर जोर दिया जाता था। लेकिन दिलों में जो हलचल मच रही थी, उसे अध्यात्मवाद से संतोष नहीं मिलता था। वे भौतिक लक्ष्य को लेकर चले थे। उनकी आंखें एक निश्चित आदर्श—एक मंजिल पर लगी हुई थी।

असंतुष्ट युवकों ने क्रांति का मार्ग अपनाया। गुप्त दल स्थापित हुए। उनका सदस्य बनने के लिये कड़ी आजमायश में से गुजरना पड़ता था। जान जोखिम का काम था। दल के हर एक मेम्बर की यह खाहिश होती थी कि सबसे पहले जान लड़ाने का अवसर उसे दिया जाये। कुर्रा-अंदाजी से फैसला किया जाता कि कौन काम किसके सुपुर्द हो। सफलता-असफलता की किसे परवाह थी? उनका काम हुकूमत की जड़ों को खोखला करना और अरबम को अंग्रेज साम्राज्य के खिलाफ उकसाना था। वे अपने उद्देश्य के प्रचार के लिये 'लाल झंडा' नाम की एक अवैध पत्रिका निकालते थे और गाहे-गाहे सनसनीखेज घटनायें कर गुजरते थे।

10 अक्टूबर 1926 को इम्पीरियल बैंक पर डाका पड़ा। इस मुहिम का नेतृत्व अशोक कर रहा था। उन्हें खजाना लूट ले जाने में सफलता प्राप्त हुई; लेकिन रास्ते में कार बिगड़ गई। अशोक और उसके साथी पकड़े गये। उन्हें नाना प्रकार की यातनायें दी गईं। दल की खोज लगाने के लिये पुलिस ने बहुतेरे यत्न किये; मगर उन्होंने कुछ भी तो बताकर नहीं दिया। चुपचाप सब कुछ सहन करते रहे। न कोई भारपीट से डरा और न लालच में आया। आखिर मुकदमा चला और उन्हें डाका डालने और पुलिस का मुकाबला करने के अपराध में दस-दस साल सख्त कैद का दंड मिला।

एक बार सन्देश मिला कि साथी उन्हें जेल तोड़कर रिहा कराने की तैयारी कर रहे हैं। मगर जेल पर हमला होने से पहले ही देश में नई घटनायें घटित हुईं। कुछ अग्रेज अफसर कत्ल हुए, बम फेंके गये। साथी गिरपतार हुए, मुकदमा चला। फामिया और उम्र कैद की सजायें मिलीं।

हलचल और सघर्ष के यह चन्द साल अशोक के जीवन की अमूल्य पूजी ये। वह इनकी तुलना अपने पहले जीवन से करता, तो उसे कालेज का जीवन अधूरा और निरुद्देश्य जान पड़ता। दिन-रात किताबें चाटना, छिछली योग्यता की देखी बघारना और रेत की दीवारों पर रेंगते हुए इतराना। मगर क्रांतिकारी जीवन ने यह चन्द साल जोश, बलबली और उमंगों से ओत प्रोत थे। जंगलों और निर्जन स्थानों में छिपे रहना और दुश्मनों पर चीते की तरह लपक कर वार करना। जिन्दगी और मौत धूप और छाया की भाँति साथ साथ चलती थी। पल-पल व्यग्रता और पग-पग पर आशका। तनिक-सी आहट हुई, हाथ भट पिस्तौल पर। हर वक्त प्राण लेने और प्राण देने के मनसूबे बाँधे जाते थे। वीरो का इतिहास मन को गुदगुदाता था।

अशोक का मन उत्साह में भर जाता, रंगों में रक्त तेजी से दौड़ने लगता। कमरे की दीवारें तग होने लगती, जी में आती कि टक्कर मारकर जेल तोड़ दे और भाग जाये। जिन लोगी ने उसके साथियों को कैद किया है, फामी पर लटकाया है, उनसे गिन गिनकर बदला ले। भीम की गदा से दुर्योधन की जाघ तोड़ दे और शत्रु का रक्त पीकर कलेजे की प्यास को शांत करे।

लेकिन जब भावुकता का तूफान थम जाती, वह गम्भीर और शान्त चित्त से सोचता—“क्या हमारी कुर्बानियों का कोई और फल नहीं हो सकता था। जो अफसर उनके हाथों मारे गये हैं, क्या उनकी हत्या से सरकार की मशीनरी में कुछ अन्तर आया? उसे बीसे ही तनख्वाहदार मुलाजिम और मिल गये। लेकिन उनके बदले जो नौजवान फासी पर लटका दिये गये, काले पानी भेज दिये गये, जो जेलों में पड़े सड़ रहे हैं, वे

देश-भक्ति के चमकते हुए हीरे थे। उनकी तनस्वाहदार घोंघों से क्या सुलना ?

कैद और एकान्तवास इसीलिए दुःखप्रद है कि मनुष्य को सोचने का धुन लग जाता है। अशोक भी हर वक्त सोचता रहता। कभी साथियों के कारनामों पर गर्व करता और कभी मृत्यु की बात मोचकर मन भर आता। उसे अपने उपायो और सघर्ष में किसी त्रुटि की आशका होती। पहले यह आशका उसकी अन्तरात्मा को दूर, दूर—बहुत दूर कहीं गहराई में कोचती थी। लेकिन अब उनपर आ रही थी और स्पष्ट होती जा रही थी। जितना स्पष्ट होती गई; उतना ही आत्मविश्लेषण और आत्म-चिन्तन की मात्रा बढ़ती रही। कई बार वह झुझला उठता और आशका से बचने के लिए केवल घटनाओं को देखा करता, उनमें डूबकर भीतर जाने का प्रयत्न न करता। या फिर अपने साथियों के महान व्यक्तित्व का कल्पित-चित्र बनाने लगता। उनकी वीरता और अदम्य साहस की मन ही मन प्रशंसा करता।

ऊहापोह, दुविधा। सोचने की इच्छा न होते हुए भी सोचना पड़ता और कई बार तो वह इच्छा ही से सोचता और कुरेद-कुरेदकर इस त्रुटि के भीतर भाँकता। जिस प्रकार फटे में पाँव डालने से वह और फट जाता है, अब उसे किसी खयाल से झूठलाना सम्भव नहीं था।

इन्हीं दिनों जगदीश भी गिरफ्तार होकर जेल में आया, उसके साथ उसी तरह कुरेदने से त्रुटि स्पष्ट होती चली गई। यह मिलना बहुत दिनों के बाद हुआ था। अशोक पर मुकदमा चलने से पहले ही वे एक दूसरे से अलग हो चुके थे। आतंकवादी दल का सदस्य बनकर अशोक गुप्त जीवन बिता रहा था। मगर जगदीश एक राष्ट्रीय संस्था का आजीवन सदस्य बन गया था, जिसका काम शिक्षा और प्रचार द्वारा देश में जागृति फैलाना और बुद्धिजीवियों की सेना तैयार करना था। इस संस्था की ओर से एक कालेज खोला गया, जगदीश उसमें इतिहास और राजनीति पढ़ाने लगा।

अशोक के कई साथी, जो फाँसी चढ़े थे, जेलों में पड़े थे, जगदीश उनसे भली भाँति परिचित था। वे उसके शिष्य रह चुके थे। बहुत देर

तक उनके बारे में बात होती रही ।

“हमारे दिल और दृष्टिकोण के बारे में आपकी क्या राय है ?” बातों ही बातों में अशोक ने पूछा ।

“राय से क्या मतलब ?” जगदीश ने तनिक रुक कर कहा ।

“हमने जो कुछ किया, क्या आप उसे ठीक और उपयोगी समझते हैं ?”

“उपयोगी तो जरूर है । वर्तमान आन्दोलन और देश की जागृति में तुम लोगों का बड़ा हाथ है । तुम लोगों का सकल्प, साहस और त्याग ने जनता को नया जीवन प्रदान किया है ।

“आप इस आंदोलन को हमारे काम का नतीजा समझते हैं ?”

“तुम्हारे ही काम का नतीजा तो नहीं कह सकते । दुनिया भर के आर्थिक मददाड़े का असर है । देश में भूख और बेकारी है । पढ़े-लिखे लोगों को काम नहीं मिलता । अनाज के दर गिर गये हैं । गेहूँ सवा रुपया और उवार-बाजरा दस-बाराह आने में बिकता है । किसान के बीज के दाम भी पूरे नहीं होते । मालिया और लगान अब भी वही है । देश-व्यापी आर्थिक संकट और बेकारी का नतीजा यह आंदोलन है । तुम लोगों के उदाहरण से जनता को प्रेरणा मिली है, जागृति फैली है ।”

अशोक चुप हो गया, सोचने लगा । वह उन लोगों की, और किसान जनता की बात सोच रहा था जो भूख, बेकारी और आर्थिक संकट से पीड़ित थी । थोड़ी देर चुप रहकर वह फिर बोला—

“क्या सिर्फ नमक-कानून तोड़ने से ही देश को आजादी मिल जायेगी ?”

“हमारा खयाल है” जगदीश बोला—“आंदोलन शुरू करने का यह तो एक ढंग है । धीरे-धीरे वह मजदूरों, किसानों में और सारे देश में फैलेगा ।”

“लेकिन यह बताइये ।” अशोक बोला “कहीं फिर चोरी-चोरा जैसी घटना हो और आंदोलन को फिर एकाएक बन्द कर दिया जाय ?”

जगदीश सकपकाया । उसे इस बात की आशंका नहीं थी, बाहर रहते

इस बारे में सोचा तक नहीं था—

“नहीं, यह नहीं हो सकता। देश की जनता बहुत दुखी है। पंजाब की बात कुछ और है, यू० पी०, बिहार और बंगाल में जहाँ जमींदारी है, किसान बिल्कुल पिस गया है। वे किमी प्रकार आन्दोलन को बन्द नहीं होने देंगे। और फिर इस बार लोगों में जागृति भी पहले से अधिक है।”

“देखिये” अशोक बोला “इधर जेल में रहकर मैंने बहुत कुछ पढ़ा और सोचा है। बेकार की बातों पर आज मुझे विश्वास नहीं होता। जब तक नेतृत्व ठीक ढंग से न हो, लोगों का क्रोध और वैचैनी सरकार का कुछ घिगाड नहीं सकती। मैं अब समझा हूँ कि क्रान्ति बन्धों का खेल नहीं, विज्ञान है। सरकार की संगठित शक्ति को तोड़ने के लिए उससे भी बड़ी संगठित शक्ति दरकार है। हम भी आज तक जो कुछ करते रहे हैं, वह उपयोगी भले ही हो, काफी नहीं था। हम समझते थे कि मुट्ठी भर नौजवान अपने महान त्याग से देश को आजाद करा लेंगे, यह हमारी भूल थी। देश की आजादी के लिए हमें मेहनतकश जनता को संगठित करना होगा।”

जगदीश अशोक के मुँह की ओर देखने लगा, देखता रहा और फिर गम्भीर होकर बोला—

“तुम ठीक ही कहते हो।”

उसी समय गनी वहाँ आया जगदीश को सलाम करके मुस्करा दिया। जगदीश ने उसे अशोक से परिचित कराया और उसके वालंटियर भर्ती होने की कहानी भी सुनाई। अशोक उसे बड़े तपाक में मिला, उसके साथ काफी देर तक प्यार और स्नेह से बातें करता रहा।

अशोक से प्यार और स्नेह पाकर गनी खिल उठा और आपसी सम्बन्ध दिन-दिन गहरा होता चला गया।

अशोक उस रात अपने कमरे में सोने गया, तो उसे देर तक नीद नहीं आई। जगदीश के साथ उसे अपनी बातें याद आ रही थी। उसने आज तक जो कुछ पढ़ा और सोचा था, वह तर्क बन गया था। अब वह अपने ही तर्कों पर मुग्ध हो उठा था। जितना मोक्षता उठना ही वस्तुस्थिति स्पष्ट होती जा रही थी। वह अपने भीतर एक कसक, एक वेदना का अनुभव

कर रहा था। समस्त धरीर मे काटे से चुभ रहे थे, जैसे भौतिक तत्व नये साँचे मे ढल रहे हो, जैसे उसकी आत्मा मे कोई सूक्ष्म और महान वस्तु प्रवेश कर रही हो। यह अनुभूति—चाहे आनंद हो, चाहे पीडा—उसे सोने नहीं देती थी। करवटें लेते-लेते जब तनिक आख लगी तो स्वप्न देखा कि वह जनता के संगठन मे सलग्न है, हज़ारो गनी—मजदूर और किसान आज़ादी के लिए मर मिटने को तैयार हैं, वह उनका नेतृत्व कर रहा है। “इनकलाब जिन्दाबाद !” के नारो मे धायुमडल मुखरित हो उठा है ..

फिर आख खुल गई और वह आप ही-आप मुस्कराने लगा।

जया माता'

नमक सत्याग्रह को गांधी-इविन समझौता चाट गया। सविनय-मंग आंदोलन के सब कँदी छोड़ दिये गये; लेकिन अशोक और उसके साथी जेलों में पड़े सड़ते रहे, और जिन्हें फाँसी की सजा मिली थी, वे फाँसी लगते रहे। समझौता अहिंसावादी सिद्धान्त के अनुसार हुआ था, इन लोगों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं था।

तीन साल बड़े ही असंतोष और हलचल के बीते। आजादी का संघर्ष इसके बाद भी जारी रहा और मजदूरों और किसानों में फैल गया। यू० पी०, बिहार और बंगाल के किसान जमींदारों के विरुद्ध उठ खड़े हुए थे। कानपुर, बम्बई और अहमदाबाद के कारखानों में बड़ी-बड़ी हड़तालें हो रही थी, जिन्हें दबाने के लिए सरकारी मशीनरी पूरी बबरता से हरकत में आ गई थी। इधर यह दमन हो रहा था, जनता को कुचला जा रहा था, उधर भारत के प्रतिनिधि गोलमेज कांग्रेस में भाग लेने ब्रिटेन पहुँचे। स्वप्न पूरे नहीं हुए। खाली हाथ लौटे। कांग्रेसी नेता एक बार फिर जेलों में जा बैठे। गांधी-इविन समझौता की घञ्जियाँ उड़ गईं; उसे टुकड़े-टुकड़े करके हवा में बखेर दिया गया। संघर्ष और हड़तालें, दमन और अत्याचार बढ़ता रहा। भूखे अदाम निडर और निर्भीक ताल ठोंककर लड़ रहे थे। पर जेल में बन्द गांधी की आत्मा सिहर उठी, वह नहीं चाहता था कि जनता का खून इस निर्दयता से बहाया जाये। उसने सामूहिक संघर्ष और सत्याग्रह बन्द करने की घोषणा कर दी, अलबत्ता लोगों को इजाजत दे दी कि

सरकार के इस दमन और अत्याचार की निंदा करके सत्याग्रही व्यक्तिगत रूप से गिरफ्तार हो सकते हैं। मगर उन्होंने खुद अपनी समस्त शक्ति अछूत-समस्या को हल करने में लगा दी क्योंकि रैमजे मबडानल्ड की सरकार ने गोलमेज काफ़ेस की बहस के बाद जो एवार्ड दिया था, इसमें अछूतों को अलग प्रतिनिधित्व देकर सबर्ण हिंदुओं से जुदा करने की चाल चली गई थी, गांधी ने इस चाल के विरुद्ध मरण-व्रत रखा। दिल्ली से लंदन तक तारें खटक गईं। आखिर सत्य, अहिंसा और अध्यात्मवाद की 'जीत' हुई। पूना पैक्ट द्वारा ब्रिटिश एवार्ड में सशोधन किया गया और गांधी जेल से रिहा होकर बाहर आया।

कांग्रेस ने फिर रचनात्मक-कार्य की ओर ध्यान दिया और नये प्रोग्राम की मदद बड़ी मदद अछूत उद्धार था। गांधी ने अपनी समस्त शक्ति इसी कार्य में लगा दी। उसका अखबार 'यंग इन्डिया' दोबारा निकला तो उसका नाम 'हरिजन' रखा और वह हरिजन फंड' जमा करने देश के दौरे पर चल पड़ा।

लेकिन अशोक और उसके साथी कांग्रेस की नीति से सहमत नहीं थे। उन्हें यह पसन्द नहीं था कि देश की सबसे बड़ी राजनीतिक संस्था क्रांतिकारी परम्परा को छोड़ कर समाज सुधार के काम में लग जाये सेवा समिति का कार्य करे। वे मानते थे कि अछूत पीड़ित और पददलित हैं, हिन्दू समाज मनुष्यों की इतनी बड़ी तादाद के साथ पशुओं से भी बुरा व्यवहार करता है, इस रोग का निदान सुधार कदाचित् नहीं है। जिस फोड़े की जड़ें रगों में पैवस्त हो, वह मरहम से अच्छा नहीं होगा। उसके लिए आप्रेशन की जरूरत है। अछूत को लाख 'हरिजन' कहो, वह अछूत रहेगा। फिर एक यही समस्या तो नहीं, सैकड़ों समस्यायें हैं। इस जर्जर समाज के शरीर पर बहुत से नासूर हैं। तुम आप्रेशन से क्यों घबराते हो? आप्रेशन होते दो—श्राति को आने दो? इस जर्जर समाज को मिटने दो, नासूर भी मिट जायेंगे। फिर एक नया समाज जन्म लेगा—स्वस्थ और सुन्दर!

नौजवानों ने भी जेलों से छूटकर अपना कर्तव्य निश्चित किया। देश

की राजनीति दक्षिण पक्ष और वाम पक्ष में विभाजित हो गई।

उधर अछूतोद्धार हो रहा था इधर ये नौजवान मजदूर यूनियनों और किसान सभायें कायम करने में व्यस्त थे। दिन भर मुस्तैदी से काम करते थे, रात को थके-मांटे लौटते तो सोने से पहले किताबें पढ़ते, आपस में बहस करते, विचारों का आदान-प्रदान होता। फलसफे के नुवते सूभते और वे अपनी सूझ पर आप ही चौंक पड़ते। मनुष्य संघपंशील ही, स्वाध्याय तभी उपयोगी होता है; दिमाग सुलभता है, दृष्टिकोण स्पष्ट में स्पष्टतर होता चला जाता है और अन्तरात्मा असीम आलोक से जगमगा उठती है।

शहर में जहाँ पहले कांग्रेस कमेटी के अतिरिक्त किसी दूसरी संस्था का नाम तक नहीं था, एक साल के अन्दर प्रेस क्लबसं यूनियन, तांगा ड्राईवर यूनियन, स्वीपर यूनियन और रेलवे मजदूर यूनियन कायम हो गईं। काम के लिए विस्तृत मैदान खुला पड़ा था। लोग संगठित होने के लिए तैयार थे, कोई संगठित करने वाला ही नहीं था, सिर्फ नारों से तो आजादी नहीं मिलती। अशोक और उसके साथियों ने इस तथ्य को समझ लिया था। उन्हें अपने साथ काम करने वाले और बहुत से नौजवान मिल गये थे। गनी का बिगुल जागृति का प्रतीक बना हुआ था और हर तरफ गूँज रहा था।

यह ठीक है कि सतह से न टकराकर गर्म लहरों ने नीचे-ही-नीचे बढ़ना उचित समझा; लेकिन नीचे का मार्ग भी साफ नहीं था, उसमें भी नाना प्रकार की बाधाएँ और अडचनें थी, जो नीचे की लहरों को भी सँद कर देना चाहती थी, रुढ़ियों के स्पन्ज थे, जो आगे बढ़ने की उमंग ही चूस लेते थे; बड़े-बड़े भयंकर और हिंसक मगरमच्छ थे, जो खाहमखाह मार्ग रोककर खड़े हो जाते थे, जैसे उन्होंने प्रगति के विरुद्ध पड्यन्त्र रच रखा हो। उनसे भिड़ना जान-जोखिम का काम था। उनकी पुस्त पर जबरदस्त संगठित शक्ति थी। किसी को तनिक उभरते देखा, भट जवड़े फाड़ कर पीछे पड़ गये।

अशोक और उसके साथियों ने आतंकवाद के दिनों में इन मगरमच्छों के जबड़े तोड़ देने का भरसक प्रयत्न किया था; लेकिन असफल रहे थे।

उन्होंने दस-बीस को खत्म किया, तो देखते ही देखते उनकी तादाद हजारों हो गई, जैसे किसी जादू के जोर से खूम्बों की भांति धरती से उग रहे हों। अन्त में सोचा कि उनका खत्म करने के लिए वही तरीका इस्तेमाल किया जाय, जो रामायण के हीरो राम ने किया था। रावण का एक भाई अहिरावण था। उससे लडना बहुत कठिन था क्योंकि जहाँ उसके रक्त की एक बूद गिरती थी, वही से सँकड़ो अहिरावण उत्पन्न हो जाते थे। राम ने अपने सेनापति हनुमान को हुक्म दिया कि उसे उठाकर ऊपर ले जाओ और फिर इस तरह ठिकाने लगाओ कि उसके लहू की एक बूद भी धरती पर गिरने न पाये। अशोक और उसके साथियों की काशिश भी यही थी कि जनता को सगठित करके इन मगरमच्छों का सम्बन्ध धरती से काट दिया जाये। और फिर ? और फिर बस।

मगरमच्छ भी असावधान नहीं थे। नौजवानों के प्रयत्नों को असफल बनाने के लिए नए नए उपाय सोचे जाते थे। पार्टी के सदस्यों की कड़ी निगरानी होती थी। खुफिया पुलिस के आदमी परछाईं की भांति पीछे चगे रहते थे। दफ्तर की तलाशी अक्सर होती थी। जब कोई खास चीज हाथ न लगती, जो कुछ नजर आता पुलिस उठा ले जाती। एक बार वरामद चीजों की जो फहरिस्त तैयार की गई उसमें चन्द कागजात, नारियल का बेकार खोल लोहे का एक छोटा सा डण्डा और गनी का बिगुल शामिल था। नारियल का खोल अगर गरी निकाल कर बैसे ही फेंक दिया गया था। फिर भी कहा जा सकता था कि उसे बमसाजी के लिए प्रयोग में लाना अभिप्रीत था और लोहे का डण्डा तो बना बनाया शस्त्र था ही। लेकिन पुलिस गनी का बिगुल क्यों ले गई ? कोई कारण नहीं था। कारखानों में प्रति दिन अनगिनत बिगुल तैयार होते हैं और हजारों की तादाद में दुकानों पर बिकते हैं और खरीदने के लिए लाइसेंस भी दरकार नहीं। उसे बजाया ही जा सकता है पिस्तौल का काम तो उसमें नहीं लिया जा सकता। फिर बिगुल ले जाने का मतलब ? फारंवाई दिशाने के लिए कुछ न कुछ तो साथ ले जाना ही था। गनी को बिगुल छिन जाने का बड़ा दुःख था। वह दिन भर परेशान घूमता रहा, जैसे माँ का इक्लौता बच्चा उससे छिन गया हो।

गनी के लिए बिगुल कोई जड़ वस्तु नहीं थी। उसके हाथ में आते ही वह हाड-मांस और रक्त से निर्मित पुतला बन जाता था और गनी की आत्मा का एक टुकड़ा उसके भीतर प्रवेश होकर बोलने लगता था। इसलिए जब बिगुल गया तो गनी की आत्मा का वह टुकड़ा भी गया। वह उसे वापस लाने के लिए दो-तीन दिन लगातार धाने के गिदं मंडराता रहा। परिणाम यह कि उसे बिगुल तो नहीं मिला, अलबत्ता पुलिस ने उसकी कमजोरी भाप ली। इसके बाद जब भी वह तलाशी लेने आई, गनी का बिगुल जख्म ले गई।

एक बार गनी बहुत दुःखी हुआ, उसने अशोक से कहा—“मेरा यह पांचवां बिगुल जा रहा है। दूसरा बिगुल तो इतना अच्छा था कि वसा अब मिलता ही नहीं, अशोक मैया !”

“क्या हुआ कामरेड ! तसल्ली रखो।” अशोक ने सान्त्वना दी, “हम बाजार से और खरीद सारंगे। पुलिस जितने बिगुल चाहे, ले जाये। लेकिन तुम्हारे अन्दर जो बिगुल है, उसे तो नहीं ले जा सकती।”

“तूरर तू तू, तूरर तू तू !” वातावरण मुखरित हो उठा; जैसे लाखों-करोड़ों बिगुल एक साथ बज उठे हों। गनी को पहली बार महसूस हुआ कि उसके भीतर भी बिगुल बज रहा है। यह बिगुल अमर और अजय है। मनुष्य सृष्टि के आरम्भ से इस बिगुल को बजाता आया है और बजाता रहेगा। मेंह, आंधी और तूफान कुछ भी हो ! मुसीबतों के पहाड़ टूटे; मगर वह बिगुल बजाता हुआ उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ रहा है। कोई शक्ति चाहे कितनी ही बड़ी क्यों न हो, उसे रोक नहीं सकती, उससे यह बिगुल छीन नहीं सकती।

गनी का बिगुल मनुष्य के इस अमर और अजर बिगुल का प्रतीक था। जब यह बिगुल बजता था, तो सड़कों पर चलते हुए लोग ठिठक जाते थे, बाजारों में दूकानों पर बैठे दुकानदार उठ खड़े होते थे, और सार्वजनिक सभा में उपस्थित गण आदर और सम्मान से सिर झुका लेते थे।

उसके बिगुल में अद्भूत शक्ति थी, अनोखा जादू था। हाँ, जादू था। जब यह बिगुल बजता था तो मनुष्य की स्वाधीनता और उन्नति की चिर-

सचित भावना फिजा मे गूज उठती थी। वरना पुलिस लाईन मे हर सुबह बिगुल बजता है। उसकी आवाज कानो को छेदती है, अरुचिकर लगती है। कपो? वह भी तो बिगुल है? बिगुल है; मगर उसे सुनकर मनुष्य को अपने छिने हुए अधिकार स्मरण हो आते हैं।

परेड के मैदान मे फौज माचं कर रही है। बिगुल बज रहा है। उसकी आवाज इतनी कररुत है कि लोग सुनना नहीं चाहते। कपो नहीं सुनना चाहते? न सुनें। सुनने-न-सुनने की कौन परवाह करता है वह अपनी बात कहे जा रहा है—“ऐ मनुष्य! तूने जो अधिकार खो दिये हैं, वे तुम्हे वापस नहीं मिल सकते। देख, हम तुम्हे दबाकर रखेंगे—दबाकर रखेंगे तोप, और बन्दूक मे, तुम्ह मे इतना साहस और सामर्थ्य कहा कि तू इन्हें दोबारा हासिल कर सके।”

पुलिस का बिगुल लोगो को उनकी विवशता की याद दिलाता है। फौज का बिगुल उनकी पराधीनता का मजाक उडाता है। लेकिन गनी का बिगुल उन्हे सघर्ष का सुखद सन्देश देता है, आगे बढ़ने को निमन्त्रित करता है। लोग आप ही आप उसकी ओर खिचे चले आते हैं। उनके भीतर के बिगुल इस बिगुल के साथ स्वर मे स्वर मिलाकर बज उठते हैं, गुलामी की जंजीरें कटती हुई महसूस होती हैं; स्वाधीनता का विचार खून को गरमाता है। और वे गनी के गिर्द जमा होकर बार-बार पूछते हैं—

“कामरेड गनी! बिगुल क्या कहता है?” गनी मुस्करा देता है और अपने मुख की कठोरता को और कठोर बनाकर बन्द मुट्ठी हवा मे हिलाते हुए कहना शुरू करता है “मेरा बिगुल कहता है—

“अंग्रेज को हिन्दुस्तान से निकाल दो।”

“पूँजीवाद को मिटा दो।”

“दुनिया भर के मजदूरो एक हो जाओ।”

गनी बिगुल बजाता है, लोग सुनते हैं। उसे बजाने मे और लोगो को सुनने मे आनन्द मिलता है। सबके हृदय एक साथ धडकने लगते हैं और उनके भीतर के बिगुल इस बिगुल के साथ स्वर मे स्वर मिलाकर बज उठते हैं।

जब कभी गनी को किसी जलसे जलूस अथवा किसी और विरोध अवसर पर जाना होता है तो वह खाकी निबकर, नीले रंग की सफेदी मिली कमीज, सिर पर हेल्मटनुमा टोपी पहनता है, सुखं पेटी गले में ढालकर उससे बिगुल लटका लेता है और लाल भंडा हाथ में लेकर शान से नीचे उतरता है। जो भी व्यक्ति नीचे खड़ा मिल जाता है उसे फौजी सैल्यूट करके पूछता है—“ठीक है न, अब तो मैं रूसी सिपाही नजर आता हूँ ?”

ऐसे ही अवसर पर एक बार गोपाल ने एतराज किया था—

“रूसी क्यों हिन्दुस्तानी सिपाही बनो।”

गनी पहले तो भ्रम गया; लेकिन दूसरे ही क्षण छाती तानकर बोला—
“न मैं रूसी सिपाही हूँ।”

“वह क्यों ?”

“क्यों...क्योंकि...” वह रुक गया। लुकनत ने ज़बान पकड़ ली। वह कुछ भी नहीं कह पाया, लेकिन आंखों में आत्मविश्वास झलक रहा था।

नारायण भी पास ही खड़ा था उसने आगे बढ़कर कहा—“कामरेड, कहते क्यों नहीं कि रूसी सिपाही इसलिए फौज में भरती होता है कि आजादी के लिए लड़े। मजदूरों, किसानों ने जो अधिकार प्राप्त कर लिये हैं, उनकी रक्षा करे, जब कि हिन्दुस्तानी सिपाही को इस बात की तनख्वाह मिलती है कि वह खुद अपने ही भाइयों को गुलाम बनाकर रखे।”

गनी की आंखें चमक उठी। मुस्कराहट होंठों से कानों तक फैल गई और वह नारायण की ओर यों देख रहा था जैसे कह रहा हो—

“तुमने जो बात कही है, वह मेरे दिल पर नक्श है।”

उसने बिगुल होठों से लगाया और फौजी ढंग से कदम उठाता हुआ आगे बढ़ा। उसके हाथ में भंडा लहरा रहा था और बिगुल की आवाज फिजा में गूँज-गूँजकर दुनिया भर को स्वाधीनता का संदेश दे रही थी। जितना उसका आदर्श ऊँचा था उतना ही उसका कदम मजबूत पड़ रहा था।

पहेली

शीला जब जेल से रिहा होकर बाहर आई, तो उसका अपना कोई घर नहीं था। सास ससुर पहले ही मर चुके थे। एक पति था। वह आवारा। मालूम हुआ कि वह सारी सम्पत्ति बेचकर विलायत चला गया है और लन्दन के होटलो में बैठा प्यार का व्यापार कर रहा है।

इंग्लैंड का व्यापार सारी दुनिया में फैला हुआ था। उसकी फँक्टरियो और कारखानो में बेशुमार माल तैयार होता था, जो उपनिवेशो की मडियो में फँका जाता था। प्रकाश ने अपने विद्यार्थी जीवन में व्यापार के इस महान केन्द्र की तडक-भडक देखी थी, जो उसके मन में खूब गई थी। पूजीवाद जितना उन्नत होता है, उसका व्यापार उतना ही विस्तृत होता है। भारत ऐसे पिछड़े हुए देश में वह माल नहीं मिलता, जो प्रकाश ने वहाँ खरीदा था। फिर वह यहाँ क्यों पडा रहता। खरी जिनस भी हाथ न लगे, और लोग-बाग नाक-भौं भी चढायें, समाज और सभ्यता की आड लेकर आवाजें कर्सें। उन्हें कौन बताये कि तुम्हारी खोखली सभ्यता की भाँति प्रकाश की आत्मा भी खोखली है। अपने भीतर के भयानक शून्य को भरने के लिए वह प्यार का व्यापार करता है, तुम्हारे पास व्यापार नहीं, भूठी सभ्यता के भूठे आदर्श हैं। प्रकाश को रुपया खर्च करके भी इत्मीनान नहीं मिला। देश में इत्मीनान था कहा? मुद्दत हुई ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापारी उसे लूट ले गये। वह उसकी खोज में लन्दन पहुँचा। शायद वही खरा माल हाथ लगे और उसके भीतर का शून्य भर सके।

प्रकाश का यहाँ रहना अथवा विलायत चले जाना शीला के लिए एक समान था। उसने पति का कोई सुख नहीं देखा था, सारे अरमान दिल में रह गये थे। जायदाद के नष्ट होने का सदमा अलबत्ता हो सकता था; पर उसे यह भी नहीं था। क्या करना था जायदाद को लेकर? उसने जीवन देश-सेवा के लिए अर्पित कर दिया था। उसे अंग्रेज से भाई की मृत्यु का बदला लेना था। इस उद्देश्य से वह आतंकवादी दल की सदस्य बन गई थी। उसकी सरगमियों में बड़-बढ़कर भाग लेती रही थी। जब दल के सदस्य गिरफ्तार हुए, वे सरगमियाँ बन्द हो गईं। वह गिरफ्तारी से इसलिए बची रही कि वह औरत थी और जो लोग मुखविर बने थे, वे उसके बारे में नहीं के बराबर जानते थे। वह बाहर रहकर साधियों की सहायता करने लगी। उनके मुकदमों के लिए वकीलों और चढ़े के प्रबन्ध के अलावा उनके उद्देश्यों का प्रचार करती रही। फिर सविनय अवज्ञा आन्दोलन चला, वह उसमें भाग लेकर गिरफ्तार हो गई। जितनी देर आन्दोलन चलता रहा वह जेल में रही और जब आन्दोलन बन्द हुआ, जेल जाने का काम न रहा तो वह एक मकान किराये पर लेकर रहने लगी और उसने लड़कियों के एक स्कूल में नौकरी कर ली।

उसकी एक छोटी बहन पद्मा थी। शीला के पिता को वह शहर से वाहर रास्ते में पड़ी मिली थी। उनके कथनानुसार वह उसे अनाथ समझ कर उठा लाये थे। एक औरत को उसे पालने के लिए दे दिया था। शीला कई बार पिता के साथ उस औरत के मकान पर गई थी। वह जवान थी और सुन्दरी। पद्मा को वह इतना प्यार करती थी कि सगे मां भी कम करती होगी। वह शहर के एक ऐम्पे मुहल्ले में रहती थी; जहाँ बहुधा गरीब लोग बसते थे, जिनके मकान तंग और अंधेरे थे। लेकिन उसकी रिहाइयत दूसरे लोगों से भिन्न थी। बस्ती के सबसे अच्छे, खुले और सजे हुए मकान में रहती थी, उजले कपड़े पहनती थी और नाम-काज के लिए नौकर भी रख छोड़ा था। घर पर शायद कोई मर्द नहीं था। औरत भी कोई नहीं थी। शीला जब कभी पिता के साथ गई, उसे अकेले ही देखा और पूछने पर भी कुछ मालूम नहीं हो सका। जब अकस्मात् उसकी मृत्यु हुई

तो शीला का पिता पद्मा को घर पर ले आया। इस समय उसकी उम्र छ वर्ष थी। उसे बच्चों के एक रिहाइशी स्कूल में भर्ती करा दिया। जब तक बाप जीवित रहा, वह इसी स्कूल में पढ़ती रही। जब कभी वह घर आती, पिता उसे गोद में बिठाकर प्यार करता और फिर सारा दिन उदास रहता। उसका मन दुखद स्मृतियों से भर जाता।

शीला इसका कारण यह समझती कि उसके पिता बड़े ही दयालु और कोमल हृदय व्यक्ति हैं। लेकिन अपनी मृत्यु के समय उन्होंने जो पत्र उसे दिया था उससे यह भेद खुला कि वह स्त्री ही दरअसल पद्मा की मा— और शीला के पिता की दूसरी पत्नी थी।

दुनियाँ में शीला का अपना कहने को कोई नहीं था। एक पद्मा थी, जो बहन के एक सूक्ष्म और अदृश्य सूत्र से उसके साथ बंधी हुई थी। इस सम्बन्ध को अब वह दृढ़ बनाना चाहती थी और उसने फैसला किया था कि मैट्रिक पास करने के बाद वह पद्मा को कॉलेज में दाखिल करायेगी और अपने साथ घर में रखेगी। कई बार ध्याल आता कि इस तरह अकेला रहने से तो अच्छा है वह बहन को अभी से घर ले आए। फिर जाने क्या सोचकर दूसरे ही क्षण उसका विचार बदल जाता था।

इन्हीं दिनों विलायत से खबर आई कि उसका पति—प्यार का व्यापारी प्रकाश—नशे की तीव्रता के कारण लन्दन के एक होटल में सदा की नींद तो चुका है। खबर पढ़कर शीला को जबरदस्त धक्का लगा, जैसे किसी ने शरीर को बिजली के तार से छू दिया हो, जैसे वह आघात से बेहोश हो जायेगी। इससे पहले प्रकाश के साथ अपने सम्बन्ध को उसने स्वीकार नहीं किया था। धर्म और समाज ने उन्हें जिस बंधन में बाधा था वह इतना बौद्ध था कि पहले ही दिन टूट गया था। उसे क्या मालूम कि मानव हृदय इतना सरल और अवोध होता है कि जब तक उसे झुंझुंझुं कर सजग न किया जाये, वह इन्हीं बौद्धों और जर्जर बंधनों में बंधा रहता है। शीला अपन आपको कितना ही क्रांतिकारी समझती रही हो, उसका हृदय अभी तक परम्परागत बन्धनों में जकड़ा हुआ था। वह एक हिन्दू नारी थी, जिसे बचपन ही से यह शिक्षा दी जाती है कि पति चाहे

कितना ही निठल्ला, नाकारा और पंगू क्यों न हो, उसे भगवान का रूप समझे और तन, मन, वचन से उसकी सेवा करे। लेकिन अब पति-पत्नी का यह सम्बन्ध अकस्मात् टूट गया था। सुहागन विधवा वास्तव में विधवा हो गई। अगरचे प्रकाश सात समुद्र पार मरा था; फिर भी शीला को अपना घर सूना-सूना दिखाई देता था। वह इस सूनेपन को सहन न कर सकी और पद्मा को दूसरे ही दिन छात्रालय से घर ले आई।

पद्मा ने मां से जो स्नेह पाया था, उसके दूध में प्रेम का मजा चखा था, वह उसे फिर कभी प्राप्त न हो सका। बाप भी प्यार करता था, लेकिन बाप के निकट रहने का उसे सौभाग्य ही प्राप्त न हुआ। मां के मरते ही उसे स्कूल में भर्ती करा दिया गया और वह घर से दूर रहने लगी। वह बड़ी अधीरता से छुट्टी का इन्तजार करती ताकि पिता की गोद में बैठकर उनके स्नेह का रस-स्वादन कर सके। वह भीच-भीचकर उसका आलिंगन करते थे। इस आलिंगन में कितना प्यार—कितना स्नेह था। उनकी आंखों में आंसू उमड़ आते थे। पद्मा को यह आंसू प्रायः स्मरण हो आते थे; उसके कल्पना-पट पर चमकने लगते थे। यह आंसू कितने अच्छे थे! उनमें मानव-हृदय का स्नेह और आत्म-विपाद भरा रहता था।

स्कूल में उसे वह चीज नहीं मिलती थी। सखियां थी, अध्यापिकायें थीं, हंसी खेल थे और कहकहे थे। लेकिन किसी की आंखों में वह स्नेह-सिक्त और विपादपूर्ण—आधी रोती और आधी हंसती स्निग्ध और अनूठी भावना नहीं देखी थी। स्कूल की अध्यापिकाओं और नौकरानियों में भली और सहृदय औरतें भी थी, जो कर्तव्य-पालन के अतिरिक्त सच-मुच प्यार भी करती थी, लेकिन इस प्यार में वह बात कहां जो मां के दूध और बाप के आंसुओं में होती थी। उसकी सखियां थी, जिन्हें वह प्यार करती थी और एवज में उनसे भी प्यार पाती थी। वह उनके साथ पढ़ती, खेलती और भविष्य के स्वप्न देखती थी। इस प्रकार हंसती, खेलती और भविष्य के स्वप्न देखती वह जवान हुई। वह सुन्दर, समझदार और भावुक थी। सब कुछ होते हुए भी उसे किसी चीज की तलाश थी। अपने आस-पास में—स्कूल के वातावरण में उसे वह चीज ढूंढे नहीं मिलती थी। कुछ

रिक्त-रिक्त सा जान पड़ता था। रिक्त की इस भावना ने उसके व्यक्तित्व में ग्रहण सा लगा रखा था। उसका यौवन और उसका सौंदर्य विकसित होने और निखरने नहीं पाता था। वह बन्द कली थी, जिसे खिलने के लिये खुली हवा और रोशनी की जरूरत थी।

शीला उससे ग्यारह साल बड़ी थी। पद्मा को उसके व्यक्तित्व में बहन और मा एक साथ दिखाई दी। जब वह प्यार भरी दृष्टि से उसकी ओर देखती तो पद्मा को लगता कि उसकी आँखों से आलोक की सूक्ष्म और सुखद किरणें छन-छनकर घर भर में फैल रही हैं, उसकी अपनी आत्मा में प्रवेश कर रही हैं। यह आलोक पाकर बन्द कली थोड़े ही दिनों में खिल उठी, महकने लगी। पद्मा को रह-रहकर अफसोस होता था कि वह अब तक बहन के पास क्यों न रही। अजीब बात है कि आदमी खजानों का मालिक होकर भी कगल कहलाये और भूखा रहे।

मकान खुला और साफ था। पद्मा इधर से उधर दौड़ती फिरती थी। इस घर की उसे हर चीज अच्छी लगती थी। शीला के कमरे में सत्रह अठारह साल के नौजवान का एक चित्र टगा हुआ था, वह उसे देख कर बहुत प्रसन्न होती थी—देखती रहती थी। उसका रंग रूप शीला से मिलता था—लम्बा चेहरा, मोटी मोटी सुन्दर आँखें, पतले कोमल होठों पर मुस्कराहट थी और अधखुले होठ प्रतिक्षण अलग होते दीख पड़ते थे, जैसे अब खुले, अब कुछ कहा।

“दीदी! यह कौन है? मुझे बहुत प्यारा लगता है।”

पद्मा ने तस्वीर के शीशे पर हाथ फेरते हुए शीला से पूछा।

“भाई।” शीला मुस्कराई।

“भाई!” पद्मा ने उत्साह में भरकर दोहराया। उसका अग-अग खिल उठा, जैसे इस शब्द में जादू भरा हो, और उसके व्यक्तित्व के प्रत्येक प्रमाण को जग दिया हो। पद्मा ने चित्र को दीवार से उतार लिया उसे चूमा, छाती से लगाया। उ-मत्त-सी नाचने लगी—नाचती रही। उसे यो नाचते और खुश होते देखकर शीला चकित रह गई, सन्देह हुआ कि कहीं वह पागल न हो जाये। पागल न होते हुए भी उसकी हरकतें पागलों से कम

नहीं थी। जिस बहन ने जिंदगी में पहली बार 'भाई' शब्द सुना हो, और उसका मुस्कराता हुआ चेहरा देखा हो, वह अगर वाकई पागल न हो, उसकी प्रसन्नता पागलपन की सीमा तक जरूर पहुंच जाती है। पद्मा जब नाचते-नाचते थक गई, तो चित्र को एकटक देखने लगी। उसका दिल आंखों में आ बैठा था। चित्र उसे जीता-जागता और बोलता-सा जान पड़ता था।

"देखो दीदी? भाई कुछ कह रहा है।" पद्मा ने होंठों की ओर संकेत किया।

"हां, कह रहा है।" शीला ने उत्तर दिया। वह भी पद्मा के उन्माद से प्रभावित हुए बिना न रह सकी। भाई के चेहरे पर आंखें गड़ाकर बोली—

"मालूम है तुम्हें, भाई क्या कह रहा है?"

"क्या?" पद्मा के मुंह से एकदम निकला और बहन के समीप खिचकर बोली, "बताओ दीदी, क्या कह रहा है भाई?"

"वह कह रहा है।" शीला बोली और चुप हो गई। उसका चेहरा एकदम कठोर पड़ गया और आंखें दहकते हुए अंगारों की तरह चमकने लगी। धीरे-धीरे मगर दृढ़ स्वर में वह फिर बोली—"भाई कह रहा है—अंग्रेज को हिन्दुस्तान से निकाल दो।"

उसके यह शब्द कमरे में गूंज उठे। फिजा में फैलकर हिन्दुस्तान भर में गूंज उठे।

दोनों बहनों बहुत देर तक चुपचाप खड़ी रही—एक दूसरे की ओर देखती रही। पद्मा सहम गई थी, जैसे भूचाल आया हो और धरती कांप उठी हो। उसने बहन का यह उग्र रूप पहली बार देखा था। यह रणचढ़ी का रूप था। उसकी आंखों से आग बरस रही थी, प्रतिकार की चिनगारियां निकल रही थी, जो जुल्म और गुलामी को झुलस देना चाहती थी। अगर यह रूप दण भर में लोप न हो जाता, तो पद्मा भय के मारे चीखती-चिल्लाती बाहर भाग जाती।

यह शीला के भाई सुरेन्द्र का चित्र था, जो जलियानवाला बाग में

डायर की गोली का निशाना बना था। पद्मा के आग्रह पर शीला ने भाई की शहादन की कहानी उसे विस्तार से सुनाई और वह कहानी किसी एक भाई की नहीं सैकड़ों हजारों भाइयों की कहानी थी। निहत्थी जनता पर तोड़े गये अंग्रेज के अत्याचार की कहानी थी। मार्शल्ला, कैंद और फासियो की भयकरता के अतिरिक्त उसमें शीला के बचपन का मिठास और भाई के प्रति बहन का स्नेह भी सम्मिलित था। शीला की उम्र उस समय नौ दस साल थी और उसने पिता की गोद में बैठकर भोलापन में प्रतिज्ञा की थी— 'मैं भाई की मौत का बदला अंग्रेज से लूंगी।' बेटे के यह शब्द सुनकर पिता का मन प्रसन्नता से भर गया था, और वह बेटे को देश भक्त बनाने के लिए सदा उसे प्रोत्साहन देते रहे थे।

शीला के अतीत की कहानी पद्मा को अपने अतीत की कहानी महसूस होती थी। काश इस कहानी का अन्त न हो, शीला कहती और वह सुनती रहे। उसके मन में एक फांस अटकी हुई थी, जो यह कहानी पूरी सुनकर ही निकल सकती थी। बचपन, लडकपन और समूचे अतीत पर जो एक गहरा आवरण पड़ा हुआ था, वह उसके भीतर झांक लेना चाहती थी ताकि अपने आपको समझ ले, शीला को समझ ले और उनके बीच कोई बात अनबूझी न रह जाये।

लेकिन उस दिन यह कहानी अधिक आगे न बढ़ सकी। भाई और पिता की बातें करते करते, शीला का मन द्रवित हो उठा और वह नींद का बहाना करके चुप हो गई। जो कुछ सुन लिया था, वह भी कुछ कम नहीं था। पद्मा इत्मीनान से सो गई। रातभर बचपन के मधुर स्वप्न देखती रही। मा उस छाती से लगाये लोरी दे रही है। इतने में पिता और शीला आ जाते हैं। पिता ने मुस्कराते हुए उसे गोद में उठा लिया है। उधर शीला मचल रही है बाहे फँलाकर हठ कर रही है— पिता जी बहन को मुझे दो। मैं उसे प्यार करूंगी, उसके साथ खेलूंगी।

जब वह सोकर उठी तो एक सुखद आभास आत्मा में मचल रहा था, आखी म उल्लास भरा था। ऐसा मीठा स्वप्न उसने पहले कभी नहीं देखा

था। उसे अपना जीवन उस नदी के सदृश जान पड़ता था, जिसका मूल स्रोत बन्द हो गया हो, वह महज इधर-उधर से आकर मिलने वाले छोटे-छोटे नदी-नालों और परनालों के बल पर आगे बढ़ रही हो। आज वह मूल स्रोत सहसा फिर से खुल गया था। नदी में बाढ़ आई थी, वह कगारों को छूती, फरटते भरती और तरंगों उठाती आगे बढ़ रही थी।

अब यह नियम बन गया कि सोने से पहले दोनों बहनें रात गये तक बातें करती। पद्मा अपने स्कूल, सखियों और अव्यापिकाओं की बातें सुनाती और शीला से अतीत की कहानी सुनती। उसे साधारण बात भी असाधारण और रुचिकर लगती। जहाँ उसकी तसल्ली न होती, वह झट बहन को टोकती और कुरेद-कुरेद कर पूछती। शीला उसकी यह तत्परता और उत्सुकता देखकर दंग रह जाती। वह बहन का मुँह ताकने लगती। आखिर इसका कारण भी समझ में आ गया।

पद्मा को बचपन ही में अतीत से काट कर अलग फेंक दिया गया था। पराई भूमि में उसकी आत्मा भली प्रकार पनप न पाई। तभी अतीत के प्रति उसके मन में वह स्वाभाविक जिज्ञासा और वह उत्सुकता थी, जो प्रत्येक मनुष्य के मन में सृष्टि के आरम्भ और उसकी उत्पत्ति को समझ लेने के लिए होती है। जब तक वह इस रहस्य को—अपने अतीत को न समझ ले, उसे अपने भविष्य पर भरोसा नहीं होता।

लेकिन पद्मा जितना अतीत को समझने का प्रयत्न कर रही थी, उतना ही वह पहली बनता जा रहा था। शीला के साथ रहते-रहते और उसकी बातें सुनते-सुनते, हफ्ते, महीने और साल गुजर गया, फिर भी यह पहली अबूझी ही रही। वह समझनही सकी कि उसकी माँ और वह, शीला और बाप से अलग क्यों रहती थी? शीला ने अतीत की जो कहानी सुनाई थी, पद्मा को अपना जीवन उसकी एक स्वाभाविक कड़ी मालूम नहीं होता था। बीच में एक उपप्रसंग-सा आ जाता था, जैसे एक क्रमबद्ध जंजीर में दूसरी छोटी जंजीर लाकर कहीं बीच में जोड़ दी गई हो। इस दूसरी जंजीर का आरम्भ क्या था? वह पहली जंजीर में कैसे आ मिली? ये ऐसे प्रश्न थे, जिनका उत्तर बार-बार पूछने पर भी नहीं मिलता था।

अधिक कुरेदने पर शीला की मुखमुद्रा गभीर हो जाती और आँखों में विषाद उमड़ आता, जैसे किसी घाव को कुरेद दिया हो और पीड़ा सहन न हो रही हो। बहन को यो दुखी देखकर पद्मा ने पूछना ही छोड़ दिया। मगर उसके मन में जो कुरेद थी, वह न मिटी। फास अटकी ही रही।

कुठाली

पद्मा ने जिन दिनों कालेज में पढ़ना शुरू किया, नौजवान प्रगतिशील विचारधारा की ओर आकर्षित हो रहे थे। विद्यार्थी प्रायः किमानों और मजदूरों की बातें करते थे और पत्र-पत्रिकाओं में उनके बारे में कहानियाँ और कविताएँ पढ़ते थे। पद्मा के तो घर का वातावरण भी इन्हीं विचारों से ओत-प्रोत था। वह जाने-अजाने इस नये वातावरण की नई आत्मा को ग्रहण कर रही थी। उसकी आंखों में चंचलता और मुख पर माधुर्य की झलक थी। लगता कि इस बन्द कली को खुली हवा और रोशनी दरकार थी, वह उसे मिल गई है, और वह स्वाभाविक रूप से विकसित होने लगी है। वह दिन-दिन सुन्दर और आकर्षक होती जा रही है, उसके अंग-अंग से जीवन फूट रहा है, मचल रहा है।

अशोक और उसके साथी इन्हीं दिनों जेलों से छूटकर आये थे। उन्होंने जहाँ मजदूर यूनियनों और किसान सभाएँ बनाई थी, विद्यार्थियों को भी अपने ढंग से संगठित करना शुरू किया था। उस समय विद्यार्थी संघ में इखलाक, राजेन्द्र और पद्मा पेश पेश थे। अशोक ने उन्हें और कुछ दूसरे लोगों को जीवन और इतिहास का मार्क्सवादी दृष्टिकोण समझाने की व्यवस्था की। शीला के मकान पर स्टडी-सर्किल शुरू हुए।

शीला आतंकवादी दल की सदस्य थी और अब भी उन्हीं के साथ मिलकर काम करने को तैयार थी। लेकिन उनकी बातें वह पकड़ न पाती सुनती और चकित रह जाती। जब वह जेल से छूटकर आई, दूसरा

असहयोग आंदोलन बन्द हो चुका था और लीडर अपने अपने कारोबार में लग गये थे। शीला की कुछ समझ में नहीं आता था। वह उलझी उलझी और उदास उदास रहती थी। उसे अशोक और दूसरे साथियों का ध्यान आता जगदीश से मालूम हुआ कि अशोक बहुत बदल गया है और उसके साथी भी बदल गये हैं। यह सुनकर उमड़े मन में अशोक को देखने और खुद बदलने की आकांक्षा उत्पन्न होती थी। अब देखा तो यह भी मालूम हुआ कि तब्दील होना सहज नहीं कठिन है। अशोक और दूसरे साथियों ने बरसों के विस्तृत अध्ययन, मनन और साधना द्वारा जो कुछ प्राप्त किया है, उसे समझना और स्वीकार करना सहज नहीं है। बदलने में — अपने आपको पुनः जानने में वह पीड़ा सहन करनी होती है, जो मा को बच्चा जनने में करनी पड़ती है। यह पीड़ा दुखकर भी है और सुखकर भी।

स्टडी सर्किल के विषय थे—सृष्टि की उत्पत्ति, जीवन-विकास, इतिहास का भौतिकवादी दृष्टिकोण, मानव-समाज के विभिन्न युग, फासिस्टवाद, राष्ट्रवाद और गांधीवाद आदि। शीला के लिए ये बातें इसलिए कठिन और दुरूह नहीं थी कि उनमें एक नया दार्शनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया था, बल्कि इसलिए कठिन जान पड़ती थी कि वे उसके उस परम्परागत विश्वास से टकराती थीं, जो युग-युग से विरासत में मिला था। इखलाक कैमिस्टरी और बाईलोजी का विद्यार्थी था, उसके मस्तिष्क ने भौतिक दृष्टिकोण को अजाने ही में अपना लिया था, अब उसे चैतन्य रूप से ज्ञान होने लगा तो वह चौंक उठा, जैसे कोई आवरण, कोई जाला हट गया हो। अद्भुत और अलौकिक आनन्द अनुभव होने लगा। पद्मा और राजेन्द्र का मानसिक विकास ही एकदम नये वातावरण में हुआ था। रूढ़िवाद का उन पर अधिक प्रभाव नहीं था। वे नए विचारों को सहज में आत्मसात कर सकते थे, और कर रहे थे।

कठिनाई थी तो शीला के लिए। उसके आतंकवादी साथी वैज्ञानिक ढंग से सोचने लगे थे, मगर उसकी अपनी विचारधारा भावुकता के भवर में घुंकर काट रही थी। भावुकता उसके मन और मस्तिष्क पर आच्छादित थी। उसने धार्मिक वातावरण में परवरिश पाई थी। वह आत्मा के

अमरत्व और आवागमन के सिद्धांत में विश्वास रखती थी। उसका वर्तमान जीवन भूत और भविष्य के अनन्त जीवनो का एक अंश, एक क्षण मात्र था। वह फिर इसी जीवन—इसी अंश मात्र पर ही क्यों सन्तुष्ट हो ? आत्मा के अमरत्व को भौतिकवादी दृष्टिकोण पर क्यों बलिदान कर दे ?

स्टडी-सर्किल के अतिरिक्त इस विषय पर अशोक और शीला में आपस की बातचीत भी होती थी, जिसमें ऐसी उलझनें आ पड़ती थी, जिन्हें सुलझाते घंटों बीत जाते थे। रिहाई के दूसरे ही दिन अशोक जब शीला से मिलने आया, तो बातों-बातों में प्रकाश का जिक्र आ गया। शीला ने विषादपूर्ण स्वर में अत्यन्त गम्भीरता से कहा—

“मैंने उन्हें अपने जीवन में कभी कोई स्थान नहीं दिया। लेकिन अब ऐसा लगता है जैसे कुछ छिन गया हो। सोचने लगती हूँ तो महसूस होता है कि यह पिछले जन्म का कोई बन्धन था, जो न मानने पर भी बहुत दृढ़ था।”

अशोक मुस्करा दिया। कहने को उसने कुछ नहीं कहा; लेकिन उसकी मुस्कराहट में—और उसकी आंखों में उपहास और व्यंग्य स्पष्ट था। शीला ने उसका यह नया रूप पहली बार देखा था। यह व्यंग्य—यह उपहास उसकी रूह में उतर गया और उसकी मनोगत भावनाओं को झकझोरने लगा। मगर वह बहस का समय नहीं था। बरसों के बाद जो मुलाकात होती है, उसमें समस्याएँ सुलझती नहीं, उत्पन्न होती हैं।

इसके उपरान्त जब विभिन्न विषयों पर विचार शुरू हुआ, तो शीला के मस्तिष्क में सबसे ऊपर यही प्रश्न था। एक दिन जब उसमें और अशोक में वार्ता हो रही थी; शीला ने पूछा—

“तुम्हारे भौतिकवादी दृष्टिकोण को मान लेने का मतलब तो यह है कि हमें मिर्फ एक ही जीवन मिलता है ?”

“निस्संदेह।” अशोक ने उत्तर दिया, “जब हम आत्मा और उसके अमरत्व में विश्वास नहीं रखते तो पुनर्जन्म का सवाल ही पैदा नहीं होता।”

“इससे तो बड़ी गड़बड़ फैलेगी। जीवन में किसी प्रकार का नियम और समय नहीं रह जाएगा।” शीला ने आपत्ति की, “मान लीजिए कि प्रत्येक मनुष्य को बताया जाता है कि उसके जीवन का यहाँ अन्त हो जायगा तो उसे बुरे कर्मों के दण्ड का भय न रहेगा। वह जान-बूझकर पाप करेगा और अनाचार फैलेगा।”

“पाप और पुण्य का यह सिद्धान्त ही गलत है।” अशोक ने कुर्सी से टेक लगाकर गम्भीरता से कहना शुरू किया, “तुम जानती हो कि हमारे शास्त्रों में भी सत् युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग का धर्म अलग-अलग बताया गया है। फिर तुम्हें वह कहानी याद होगी, जिसमें विश्वामित्र ने कुत्ते को दुत्कार कर उसकी जूठी हड्डी का मांस खाया था, लेकिन यह कहकर कि इसके बिना अभी काम चल सकता है। चडाल के मटके का जल पीने से इन्कार कर दिया था। इसका मतलब यह है कि हमारी नीति, पाप और पुण्य हमारी भौतिक आवश्यकताओं से निर्धारित होते हैं। इतिहास के विकास को देखिये, जैसे-जैसे आर्थिक साधन बढ़ते हैं, मनुष्यों के आर्थिक सम्बन्ध भी बढ़ते हैं और उनके आचार-व्यवहार भी बढ़ते हैं.....”

अशोक कह रहा था और शीला ध्यान से सुन रही थी और उसकी शांत मुख-मुद्रा और होठों की हरकत को एकटक देख रही थी। जब वह अपनी बात कह चुका, तब भी देखती ही रही, जैसे उसके होठ बदस्तूर हिल रहे हों, युग-संघर्ष की बात कहे जा रहे हों। थोड़ी देर पहले अशोक ने उसे बताया था कि पदार्थ (Matter) गतिमान है, पदार्थ सोचता है और मस्तिष्क पदार्थ ही का उन्नत रूप है। शीला को लगा कि अशोक का समस्त शरीर पदार्थ का उन्नत रूप है उसका अग-अग सोच रहा है। वह वाकई बदल गया है। शीला इस बदले हुए अशोक की चाह लेना चाहती थी। इसलिए बार-बार सवाल करती, कुरेद-कुरेद कर पूछती—कुछ समझने के लिए और कुछ स्पष्टीकरण के लिए। लेकिन इस समय कुछ नहीं पूछा। अशोक ने बहुत कुछ कह दिया था। वह सोच रही थी, आत्म-चिन्तन कर रही थी।

अमरत्व और आवागमन के सिद्धांत में विश्वास रखती थी। उसका वर्तमान जीवन भूत और भविष्य के अनन्त जीवनो का एक अंश, एक क्षण मात्र था। वह फिर इसी जीवन—इसी अंश मात्र पर ही क्यों सन्तुष्ट हो ? आत्मा के अमरत्व की भौतिकवादी दृष्टिकोण पर क्यों बलिदान कर दे ?

स्टडी-सर्किल के अतिरिक्त इस विषय पर अशोक और शीला में आपस की बातचीत भी होती थी, जिसमें ऐसी उलझनें आ पड़ती थी, जिन्हें सुलझाते घंटों बीत जाते थे। रिहाई के दूसरे ही दिन अशोक जब शीला से मिलने आया, तो बातों-बातों में प्रकाश का जिक्र आ गया। शीला ने विषादपूर्ण स्वर में अत्यन्त गम्भीरता से कहा—

“मैंने उन्हें अपने जीवन में कभी कोई स्थान नहीं दिया। लेकिन अब ऐसा लगता है जैसे कुछ छिन गया हो। सोचने लगती हूँ तो महसूस होता है कि यह पिछले जन्म का कोई बन्धन था, जो न मानने पर भी बहुत दृढ़ था।”

अशोक मुस्करा दिया। कहने को उसने कुछ नहीं कहा; लेकिन उसकी मुस्कराहट में—और उसकी आंखों में उपहास और व्यंग्य स्पष्ट था। शीला ने उसका यह नया रूप पहली बार देखा था। यह व्यंग्य—यह उपहास उसकी रूह में उतर गया और उसकी मनोगत भावनाओं को झकझोरने लगा। मगर वह बहस का समय नहीं था। बरसों के बाद जो मुलाकात होती है, उसमें समस्याएँ सुलझती नहीं, उत्पन्न होती हैं।

इसके उपरान्त जब विभिन्न विषयों पर विचार शुरू हुआ, तो शीला के मस्तिष्क में सबसे ऊपर यही प्रश्न था। एक दिन जब उसमें और अशोक में वार्ता हो रही थी; शीला ने पूछा—

“तुम्हारे भौतिकवादी दृष्टिकोण को मान लेने का मतलब तो यह है कि हमें सिर्फ एक ही जीवन मिलता है ?”

“निस्संदेह।” अशोक ने उत्तर दिया, “जब हम आत्मा और उसके अमरत्व में विश्वास नहीं रखते तो पुनर्जन्म का सवाल ही पैदा नहीं होता।”

“इससे तो बड़ी गड़बड़ फैलेगी। जीवन में किसी प्रकार का नियम और समय नहीं रह जाएगा।” शीला ने आपत्ति की, “मान लीजिए कि प्रत्येक मनुष्य को बता दिया जाता है कि उसके जीवन का मुही अन्त ही जायगा तो उसे बुरे कर्मों के दड का भय न रहेगा। वह जान-बूझकर पाप करेगा और अनाचार फैलेगा।”

“पाप और पुण्य का यह सिद्धान्त ही गलत है।” अशोक ने कुर्सी से टेक लगाकर गम्भीरता से कहना शुरू किया, ‘तुम जानती हो कि हमारे शास्त्रों में भी सत् युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग का धर्म अलग अलग बताया गया है। फिर तुम्हे वह कहानी याद होगी, जिसमें विश्वामित्र ने कुत्ते को दुस्कार कर उसकी जूठी हडडी का मांस खाया था, लेकिन यह कहकर कि इसके बिना अभी काम चल सकता है। चडाल के मटके का जल पीने से इन्कार कर दिया था। इसका मतलब यह है कि हमारी नीति, पाप और पुण्य हमारी भौतिक आवश्यकताओं से निर्धारित होते हैं। इतिहास के विकास को देखिये, जैसे जैसे आर्थिक साधन बदले हैं, मनुष्यों के आर्थिक सम्बन्ध भी बदले हैं और उनके आचार व्यवहार भी बदले हैं।”

अशोक कह रहा था और शीला ध्यान से सुन रही थी और उसकी सात मुख मुद्रा और होठों की हरकत को एकटक देख रही थी। जब वह अपनी बात कह चुका तब भी देखती ही रही, जैसे उसके हाठ बदस्तूर हिल रहे हों, युग सघर्ष की बात कहे जा रहे हों। थोड़ी देर पहले अशोक ने उसे बताया था कि पदार्थ (Matter) गतिमान है, पदार्थ सौचता है और मस्तिष्क पदार्थ ही का उन्नत रूप है। शीला को लगा कि अशोक का समस्त शरीर पदार्थ का उन्नत रूप है उसका अग अग सोच रहा है। वह वाकई बदल गया है। शीला इस बदले हुए अशोक की थाह लेना चाहती थी। इसलिए बार बार सवाल करती, कुरेद कुरेद कर पूछती—कुछ समझने के लिए और कुछ स्पष्टीकरण के लिए। लेकिन इस समय कुछ नहीं पूछा। अशोक ने बहुत कुछ कह दिया था। वह सोच रही थी, आत्म-चिंतन कर रही थी।

“अब हमारे अपने ही समय की बात लीजिए” अशोक ने तनिक रुककर फिर कहा, “चोरी करना पाप और जुर्म है। दान देना धर्म और पुण्य है। लेकिन चोरी लोग क्यों करते हैं?”

“लेकिन” शीला बोली, “पहले भी तो लोगों ने आत्मा और परमात्मा को नहीं माना। हिन्दू फलासफी के छः दर्शनों में कणाद ने अपने दर्शन की बुनियाद पदार्थ पर रखी है। उनके विचार क्यों नहीं फैल सके।”

“यह दुरुस्त है कि प्राचीन युग में भी बहुत से दार्शनिकों ने अपने विचारों की भीति पदार्थ पर रखी है। लेकिन उनके नजदीक आत्मा और परमात्मा की तरह भौतिकवादी सिद्धांत का एक विश्वास मात्र था। उसके पीछे विज्ञान और अनुभव की शक्ति नहीं थी। उन्होंने पदार्थ को गतिशून्य निष्प्राण इकाई समझा था। उसके भीतर सकारात्मक और नकारात्मक— विरोधी शक्तियों का जो संघर्ष—जो गति है, उसे वे नहीं जान पाये थे। इसमें उनका कोई दोष नहीं। मनुष्य उस समय साधनहीन था। इतना ज्ञान और इतनी बुद्धि उत्पन्न नहीं हुई थी। उसे पृथ्वी को समझना था, आकाश को समझना था, विश्व-गति, विभिन्न पदार्थों और मंडलों के परस्पर आकर्षण को समझना था। प्रकृति के विभिन्न रूपों और दृश्यों के बारे में उसके मन में जो प्रश्न—जो शंकाएँ उत्पन्न होती थी, भौतिकवादी दर्शन उनका उत्तर देने में असमर्थ था। लेकिन अब जब कि मनुष्य ने धरती और आकाश छान मारे हैं, सूरज, चांद, तारों के आकार, सम्बन्ध और प्रक्रिया को समझ लिया है, वह क्यों भ्रम में पड़ा रहे? क्यों धर्मशास्त्रों में उनका उत्तर ढूँडे? सत्य को कल्पना पर कैसे वलिदान कर दे? वह अब कर्म और प्रारब्ध के सिद्धांत पर सन्तुष्ट नहीं रह सकता। स्वर्ग की सुन्दर कल्पना उसे नहीं बहला सकती। यह विज्ञान और मशीन का युग है। वह जानता है कि मशीन और विज्ञान के अधिक प्रयोग से और उत्पादन के उचित वितरण से इसी दुनियाँ को स्वर्ग बनाया जा सकता है। गरीबी के अन्त का नाम ही स्वर्ग है। जहाँ गरीबी नहीं; वहाँ पाप का भय भी नहीं।” अशोक सानन्द मुस्कराया और एक क्षण रुककर फिर बोला,

“मनुष्य अब भय और भ्रम को मिटाकर स्वच्छन्दता और समृद्धि को और बढ़ रहा है।

स्वच्छन्दता और समृद्धि मनुष्य की चिर-आकांक्षा है। अगर अशोक के सिद्धांत का भी यह उद्देश्य था तो शीला को क्या आपत्ति ही सकती थी। लेकिन सिद्धांत एक बात है और उसकी पृष्ठभूमि और समूचे दर्शन को समझना दूसरी बात। अशोक यह दूसरी बात ही शीला को आत्मसात् कराना चाहता था। ताकि इधर उधर भटकने की सम्भावना न रहे, सब भ्रम-भ्रांतियां मिट जायें।

यह फिर बोला—‘शीला, तुम कहोगी कि सब धर्म यही चाहते हैं। वेदमन्त्रों में मनुष्य ने समृद्धि और स्वाधीनता की कामना की है। इसलाम बराबरी का हामी है और ईसा का जन्म ही गरीबों के लिये हुआ था। पर हम देखते हैं कि सदियों के प्रयत्न और प्रचार के बावजूद मनुष्य का यह स्वप्न, स्वप्न ही बना रहा। धर्म ने दया और दान की प्रथा डाली। पर धनिया की दया और दान से निर्धन जनता न तो समृद्ध हुई और न स्वच्छन्द। जबतक पुनर्जन्म की लालसा, स्वर्ग का लोभ और नरक का भय मस्तिष्क से चिपटा रहेगा, मनुष्य का स्वाधीन और स्वच्छन्द होना संभव नहीं है। वह हमी तरह भ्रमों और दावाओं में पड़ा रहेगा। हमारा वर्तमान समाज, जो इन भ्रमों और दावाओं में भरी हुई साखली संस्कृति की रक्षा करता है, नितान्त खोखला है और अपने इस खोखलेपन के कारण क्षण-क्षण मिट रहा है।’

अशोक के ये शब्द—‘हमारा वर्तमान समाज खोखला है और क्षण-क्षण मिट रहा है।’ शीला के भीतर गूँज उठे। उनका लालन-पालन ममूद मध्ययुग में हुआ था। उनके पिता दीवान आत्मनारायण मन्थन वकील थे और एक धार्मिक सभ्यता के मजानक। ये उन्नत और उदार विचारों के ध्यक्षित थे। वे सामाजिक नियमों और धार्मिक सिद्धान्तों का पालन करते थे और दूसरों को उनके पालन की शिक्षा देते थे। वे धार्मिक मन्थन में कई बार यह सुने थे कि विवाह का उद्देश्य सन्तान-उत्पत्ति है। अगर पहली ही पत्नी से सन्तान उत्पत्ति का उद्देश्य पूरा हो जाय तो पत्नी की मृत्यु के

पश्चात् दूसरा विवाह किसी तरह भी उचित नहीं है। यह एक घमं-विरुद्ध आचरण है। जब उनकी पत्नी का देहान्त हुआ तो उनके दो संतानें थी— शीला और उसका भाई सुरेन्द्र। इसलिए उन्होंने दूसरा ब्याह नहीं किया। लेकिन पद्मा की माँ से अपने अवैध सम्बन्ध की यह बात मृत्यु-शैया पर खुद उन्होंने शीला को बताई थी। शीला के पास उनका जो पत्र अमानत पड़ा था, उसमें भी वर्तमान समाज को खोलला बता कर उसके रीति-रिवाज को बदल देने की कामना व्यक्त की गई थी।

शीला का ससुर भगवानदास उदात्त चरित्र का व्यक्ति था। समाज की विडम्बना से वह भी ऊपर न उठ सका। ब्याह के दूसरे ही दिन शीला ने प्रकाश की शठता भरी निपुसकता की शिकायत करते हुए खत में लिखा था कि ऐसे बेटे का उन्होंने ब्याह ही क्यों किया? बेटे के ये दोष मेरे पिता को क्यों नहीं बताये? क्या आप एक स्त्री—एक कन्या का कोई महत्व ही नहीं समझते? क्या ईमानदारी का यही तकाजा है? आप अंग्रेज से जिस आजादी की मांग कर रहे हैं क्या उसकी बुनियाद इसी अन्याय और इसी विडम्बना पर रखी जायेगी? अन्त में प्रार्थना की थी कि देश के नेता के नाते मैं आपका आदर करती हूँ और न्याय के नाम पर बड़े ही विनीत भाव से सम्बन्ध-विच्छेद की आज्ञा चाहती हूँ।

खत पढ़कर भगवानदास का चेहरा उतर गया और उसने शीला से कहा—“बेटो, लोग क्या कहेंगे?” लोगों के कहने की इतनी चिन्ता? झूठा मान, झूठा भय। देश के नेता के—इतने बड़े नेता के दृष्टिकोण में इतनी संकीर्णता क्यों? खोलला समाज, खोलनी संस्कृति और गुलामी को जन्म देना है।

जीवन की सारी कहानी क्षणभर के लिए साकार हो उठी। यह कहानी गचमुच जर्जर समाज के टूटने की कहानी थी।

शीला के भीतर एक टीम, एक वेदना उठी। उसे अपने मन पर कितनी शोट का अनुभव हुआ। अशोक की उपस्थिति में जब कभी प्रकाश का न्याय आता तो यही टीम, यही पीड़ा अनुभव होती। काश! प्रकाश उसके जीवन में आया ही न होगा। वह निर्फ अशोक को देखती! अशोक जो

इतना बहादुर, मर्चा और समझदार था, जिसके हृदय में देश-प्रेम और आजादी की तड़प थी। शीला को उसके गाय काम करके प्रसन्नता प्राप्त होती थी। वह उसके गाय निर्मम और निस्संकोच आजादी की मजिल की ओर बढ़ रही थी। उसने अपने इस गायी को कई बार प्रेम की दृष्टि में देखा था और मन-ही-मन कामना की थी कि अशोक प्रकाश होता अथवा प्रवास अशोक होता। एक निरम्मा, व्यर्थ और दरपोक व्यक्ति उनके बीच क्यों आ गया? क्यों यही यह दोवार? पूर्व जन्म का मर्चा ममकर शीला अपने मन को सात्वता दे लेती थी। अशोक अब नये रूप में सामने आया तो उसका आकर्षण और भी बढ़ गया। प्रकाश अब इस दुनिया में नहीं था और अशोक क्षण-क्षण ममीप आ रहा था, उसके मन में उतरा जा रहा था। लेकिन प्रकाश के साथ शीला का अदृश्य सम्बन्ध अब भी स्थापित था। वह सम्बन्ध उसे आगे बढ़ने से रोकता रहा और अब भी रोक रहा था। पूर्व जन्म का विचार ही इस सम्बन्ध का आधार था। अशोक का भौतिकवादी दर्शन इस आधार पर आधारित कर रहा था, इसे कच्चे घागे की तरह घुटकी में लेकर तोड़ देना चाहता था; लेकिन शीला उसे टूटते देखना नहीं चाहती थी। जबानी की उममें जिस आदर्श पर मेट चडा दीं, अब ढलती उम्र में उसे क्योंकर त्याग दे?

गिरफ्तारी से पहले अशोक ने एक बात कही थी, उसका सहारा लेकर बोली—

“जब बंक लूटने गये थे, तो तुम्ही ने कहा था कि जिन्दा बच आया तो बेहतर, करना दूसरे जन्म में फिर देश की आजादी के लिए लड़ूंगा। क्या यह सपाल हमें बहादुर नहीं बनाता? जब आत्मा अमर है तो मृत्यु का भय कैसा?”

“नहीं शीला! यह विचार बहुत छोटा है। जिस समय अर्जुन को यह सीख दी गई थी, उस समय इतना ही बहुत था। अब तो इसका परिणाम हम यह देखते हैं कि लोग गुलामी को महसूस ही नहीं करते। अगला जन्म सुधारने की अभिलाषा में, भीरु और निकम्मे बने हुए हैं। इससे अगर कभी वीरता का भाव उत्पन्न भी हुआ तो हमारे इस सपर्यं के लिए काफी

नहीं। इस युग का मानव स्वर्ग, नरक और प्रारब्ध के विचार से ऊपर उठ चुका है। उसका संघर्ष बदल गया है। इसके लिए बड़ा विचार चाहिए।

बड़ा विचार अशोक की आंखों से व्यक्त हो रहा था। शीला प्रसन्न-चिह्न बनी बैठी थी। पूछना चाहती थी कि यह बड़ा विचार क्या है ?

“आत्मा के इस सिद्धान्त ने हमें व्यक्तिवादी और अहंवादी बना दिया है। अहंवाद और व्यक्तिवाद सामंतवाद और पूंजीवाद का दर्शन है। इस नये युग में भावसंवाद ने हमें नया महान विचार दिया है। लेनिन ने कहा है—जीवन मनुष्य की सर्वश्रेष्ठ पूंजी है और यह उसे एक बार—सिर्फ एक बार मिलती है। संसार में वह अपना जीवन इस प्रकार बिताये कि मरते समय उसके मन में यह अरमान न रह जाये कि मैंने यह पूंजी व्यर्थ में खो दी।”

“लेकिन अशोक ! इससे तो बात नहीं बनती।” शीला बोली, “जब हमें एक ही बार जीना है तो जिस तरह भी हो सके दिन बिता लो। जब पुण्य-पाप कुछ नहीं है और अगले जन्म में उनका फल और दंड भी नहीं है तो मनुष्य निकम्मा ही बनेगा, अच्छा नहीं। इसके मुकाबला में तो हमारा दर्शन कहीं श्रेष्ठ है।”

“हमारे दर्शन की श्रेष्ठता तो सदियों की गुलामी से सिद्ध है।” अशोक तनिक मुस्कराया और फिर गम्भीर स्वर में बोला—“भ्रम सत्य से श्रेष्ठ नहीं हो सकता। जब हम जानते हैं कि परिवर्तन संसार का अटल नियम है तो हम अमरत्व की कामना क्यों करें। दरअसल इस विचार की तह में मृत्यु का भय निहित है। लेकिन मनुष्य मरता जरूर है। परिवर्तन के नियम से कोई बच नहीं सकता। जिन्दगी हमें सिर्फ एक बार मिलती है और हम इस जिन्दगी में जितना काम कर सकें उतना ही छोटा है। आदमी मर जाता है ; पर उसका काम उसके बाद भी जीवित रहता है।” अशोक का स्वर स्पष्ट था और वह पहले से अधिक गम्भीर हो गया था। शीला ने उसकी आंखों में झाँककर देखा तो उसे लगा जैसे वह यथार्थ के, ध्रुव सत्य के दर्शन कर रही हो। हम अपना काम और विचार ही आने वाली पीढ़ियों के लिए विरासत में छोड़ जाते हैं। यही जीवन का अमरत्व है। हमारे बाद हमारी

आने वाली पीढ़ियाँ हमारे अधूरे काम को आगे बढ़ाती हैं और अपने से आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए विरासत छोड़ जाती हैं। यों देखा जाये तो जीवन एक नदी है, जो सतत बहती रही है और बहती रहेगी।”

अशोक की आँखों में तरंगें उठ रही थीं। शीला ने चिरकाल से अपने भीतर जो गम्य सभाल रखा था, इन तरंगों से वह जैसे घुल-सा गया। उसका ससुर बेटे की सत्ता देखने की हसरत मन में लिए मर गया। शीला इसके लिए अपने आपको दोषी समझ बैठी थी। आज इस दोष से छुटकारा मिला और मन पर से बोझ-सा हट गया। ‘काम जिन्दा रहता है, काम ही हम आने वाली पीढ़ियों को विरासत में छोड़ जाते हैं। यही जीवन का अमरत्व है।’ वह सोच रही थी और अपने अन्दर विशालता और महानता का अनुभव कर रही थी। उसे एक भ्रम से—सदियों पुराने भ्रम से छुटकारा मिला था।

“अशोक।” उसने पूछा, “एक बात समझ में नहीं आती। मनुष्य पहले भी तो अपने इर्द-गिर्द की दुनिया को बदलते देखता था, फिर उसके मन में आत्मा के अमरत्व का विचार कैसे उत्पन्न हुआ?”

अशोक प्रश्न के अनूठेपन पर चौंक उठा और आँखों में उल्लास भर कर बोला—

“मैंने भी इस प्रश्न पर बहुत सोचा है और अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ। वेद-मन्त्रों से पता चलता है कि हमारे पूर्वज चाद, सूरज और तारों की पूजा करते थे और गायत्री मन्त्र इस बात का प्रमाण है कि वह सूरज और दूसरे नक्षत्रों को अक्षय और अमर मानते थे। सम्भव है कि इसी बात से उनके मस्तिष्क में आत्मा के अमरत्व का विचार उत्पन्न हुआ हो।”

बात शीला के मन को लगी। उसने अशोक की आँखों में झाँककर देखा और लगा कि अशोक नये फलस्फे का अन्धा पुजारी नहीं है, उसे अतीत का भी ज्ञान है, वह दर्शन की नई पुरानी माय्यताओं पर विद्वता और गम्भीरता से विचार करता है, उसकी आत्मा में अतीत और वर्तमान का अनुपम सगम हुआ है, उसमें सदियों के विश्वास और प्रयत्न का रहस्य

ओत-प्रोत है ।

“लेकिन शीला !” अशोक फिर बोला, “हम जानते हैं कि चांद, सूरज और सितारे भी क्षण-क्षण तब्दील हो रहे हैं । हमारा यह दिन सदा बढ़ता जा रहा है, जैसे आज 29 जुलाई सन् 1936 है, 29 जुलाई सन् 1937 का दिन इससे तनिक—अर्थात् सेकण्ड का सवा हजारवां अंश—बड़ा होगा । इस प्रकार दिन बढ़ रहा है, रात घट रही है । आखिर रात का अंत हो जायेगा । दिन ! दिन ! सिर्फ दिन ही रह जायेगा । शीला हम अंधेरे से उजाले की ओर बढ़ रहे हैं ।”

अशोक मुस्कराते हुए उठ खड़ा हुआ । उज्ज्वल भविष्य उसकी आंखों में चमक रहा था ।

धुआँ

गनी जब जेल से बाहर आता तो प्यालिया और चैनकी अलमारी से निकालकर साफ करता और ट्रे में सजाता । जब तक सेट पूरा न हो, उसे चाय पीने में तनिक भी आनन्द नहीं आता और चाय पीना एक ऐसा नियम था, जिसमें कभी नागा न होता था । जब में पैसे होते तो मक्खन और टोस्ट भी आते, वरना चाय डबल रोटी अथवा अकेली चाय ही पर सतोप कर लिया जाता ।

चाय बन रही थी । ट्रे में मक्खन की दो तीन टिक्किया और ढेर सारे टोस्ट रखे हुए थे, जैसे पांच-सात मित्रों को निमन्त्रित कर रखा हो । गनी खैरातीराम को वह अभिनन्दन पत्र दिखा रहा था, जो कल पार्टी की ओर से उसे मिला था । उसी समय नारायण ने कमरे में प्रवेश किया । वह सुबह की सैर से लौटा था । उसके हाथ में ताजा अखबार था । आते ही कहा—
“कामरेड गनी ! इधर आओ ! तुम्हें अखबार सुनाऊ । कल के जलसा की कार्रवाई छपी है ।”

“अच्छा ।” गनी की आँखें चमक उठी और वह अखबार पर झुक गया—गनी पढ़ नहीं सकता था, वह सिर्फ यह देखना चाहता था कि खबर किस जगह छपी है । नारायण ने खबर पढ़कर सुनाई ।

“मुबारकबाद ! कामरेड गनी ।” खबर सुनकर खैरातीराम ने कहा ।

गनी ने मुस्कराते हुए हाथ उसकी ओर बढ़ा दिया । खैरातीराम ने उसका गर्म हाथ अपने सदैव हाथ में धामते हुए कहा—‘अच्छा । अब मैं

चलता हूँ, नहा-धोकर दफ़्तर जाना है।”

गनी एक बार फिर अख़बार पर झुक गया। नारायण किसी दूसरे पृष्ठ पर पढ़ रहा था—“लाहौर हैलथ—68 उत्पन्न हुए और 3। मरे।” लेकिन गनी को जन्म और मरण की समस्या से सरोकार? वह तो पन्ने उलटकर वही कालम देख रहा था जिसमें जलसे की कार्रवाई छपी थी। कुछ एक पंक्तियों की यह छोटी-सी खबर, जिसे वह कल स्वयं ही दे आया था, अख़बार में प्रकाशित होते ही परियों की कहानी के सदृश विचित्र और आर्कषित बन गई थी। उसके अक्षर कितने सुन्दर और कितने मनोहर दीख पड़ते थे। गनी चाहता था कि नारायण उसे एक बार फिर पढ़कर सुनाये, ताकि वह इन शब्दों को अपने भीतर भर ले। अख़बार देश के कोने-कोने में जायेगा, सैकड़ों, हजारों लोग पढ़ेंगे, उन्हें मालूम होगा कि गनी को अभिनन्दन-पत्र मिला है। उसकी देश-भक्ति, उत्साह और त्याग को सराहा गया है। जितना अधिक वह इस खबर को देखता था, उतनी ही अधिक उसके भीतर उल्लास की मात्रा बढ़ती जा रही थी।

उसी समय अशोक ने कमरे में प्रवेश किया। उसके साथ एक और ध्यवित था, जिसके हाथ में मुलगती हुई बीड़ी थी। नारायण ने अख़बार अलग रख दिया और बीड़ी वाले ध्यवित का अभिनन्दन करते हुए बोला—

“पराशर जी, जय रायण!”

“जय रायण।” कहकर पराशर मुस्कराया और वही दरवाजे के निकट घटाई पर बैठ गया। अशोक और नारायण ने बहुतेरा कहा कि यहाँ क्यों बैठते हो, आगे आ जाओ। लेकिन वह तटस्थ रहा। घटनी को कम्बल में ढाँपता हुआ बोला—“यही ठीक है। बीड़ी पीऊंगा और धुआँ बाहर छोड़ूंगा।”

उसने दाएँ हाथ की मुट्ठी खोली। उसमें चार-पाँच बीड़ियाँ कँद थीं। पहली बीड़ी गरम हो रही थी, इसलिए एक दूसरी बीड़ी मुलगाई और मुट्ठी दोबारा कम्बल के भीतर खींच ली ताकि हाथ और बीड़ियाँ दोनों गर्मी में सुरक्षित रहें।

पराशर का शरीर इकहरा, आँखें छोटी, सिर गजा, कान लंबे और उम्र पचपन-छप्पन साल थी। दाढ़ी रखी हुई तो नहीं थी, लेकिन चेहरे पर दृष्टि डालने से मालूम होता था कि उसने हजामत की हडताल कर रखी है। अधिक नहीं तो शेष बनवाये कम से-कम दो हफ्ते अवश्य बीत चुक होंगे। दाढ़ी बढ रही है, तो बढा करे, कोई परवा नहीं। यो इससे एक लाभ भी था। दाढ़ें और दात देर हुई निकल चुके थे, इसलिए गाले भीतर को चिपक गई थी। बाल बढ जाने से गालो के गढढो पर हल्का-सा पर्दा पड जाता था और देखने मे कुछ ऐना बुरा नहीं लगता था। दात निकल जाने से जहा पाचन-शक्ति पर असर पडा था, वहा शब्दो का उच्चारण भी ढग से नहीं हो पाता था। मित्रो ने उसे डाक्टरो दात लगवाने का मशविरा दिया। लेकिन वह दूसरो की बात मानने के बजाय जो मन मे आये वही करता था और स्वेच्छाचारी था। इसलिए मित्रो को आशा थी कि मन मे आयेगी तो नये दात आप ही लगवा लेगा। उसने ऐनक भी आप ही लगवाई थी।

नारायण के अखबार रखने ही गनी ने उसे उठा लिया और खबर वाला पृष्ठ खोलकर उन पक्तियो पर नजरें गडा ली, जिनमे परियो की कहानियो का जादू बढ था। तनिक अवसर मिलते ही उसने अखबार अशोक के हाथ मे धमा दिया और कहा—“यह देखिए कल के जलसे की खबर छपी है।”

अशोक ने खबर पढकर सुनाई और गनी की ओर देखा। वह गद्गद् मन से मुस्करा रहा था।

अशोक की दृष्टि अखबार मे प्रकाशित एक चित्र पर पडी। वह उसे सब को दिखाते हुए बोला—

‘हमारे नये वायमराय लिनलियगो साहूब साहो का प्रदर्शन कर रहे हैं।’

“क्या खूब !” पराशर ने बीड़ी का बश लगाकर कहना शुरू किया, “अग्नेज दुनिया को अपनी कारगुजारी तो दिखाये। स्वास्थ्य, शिक्षा, अन्न—सब की व्यवस्था ठीक है; सिर्फ एक साहो की नसल उत्तम बनाने

रोष रह गया था... मा, उगे भी अब पूरा कर दि... दिनादिने ताकि हिन्दु...
 दुस्मान में दू... दूध की बर्दि... नदिया बह निकले । गगनपुत्र मोट भाड़े ।
 गांधी त्रिम रामराज्य का गणना देना देना है, अर्धे उगे लू... लूट ही पूरा
 कर दे... दे देगा दू... बूगरो की भांग में पू... धूम भोजना कोई अर्धे में
 गीत में । वे गमभने है कि दु... दुनिया में उनके गिवा सब मुझ... बुद्ध मन
 बध... बधाऊमल बगते है । पराशर ने बीड़ी रण दी और हाथ में अभिनय
 करते हुए कहा— “दुनिया की अमुगियों पर म... मथाना अर्धे बंधे की
 घुट्टी में पिसाया जाया है । और गायनराज तो उगे बनाकर भ्रजते है जो
 पाट-पाट का प... पानी पीकर कप... कपट की धामों में ताकती जाया
 है । फिर रहने के लिए महल, बार्डिंग हज़ार रुपये भरीना तनगाह भरत...
 भरत और अन्तःकर्म । दिमाग में आप ही भाग स्त्रीमें निबन्धनी है । बह त...
 तो अर्धे है, त्रिमरी राजनीति ही कपट है, इम कुर्मी पर अगर पराशर
 अथवा किमी और बुद्धमन बधाऊमल को बिटा दिया जाय तो यह न गिफें
 गाँवों का बल्कि हाथ... हाथियों का प्रदर्शन करे ।”

“पराशर जी ! यदि इन्गाफ में देगा जाय तो ममन बेहतर बनाना
 भारतीय परम्परा के अनुकूल है । यहाँ तो किमी गमय मनुष्यो तक में गाँव
 छोड़े जाते थे । मैंने सुना है कि बीरानेर की ओर एक गुन्दर और स्वस्थ
 जाति रहती है, पिछले घालीत-पनाम साल पहले तक उनमें यह प्रथा घसी
 आती थी कि वे अपनी जाति के बीग-बार्डिंग वर्ष के गुन्दर और स्वस्थ
 नौजवान को साँट छोड़ते थे । सारी संतान उसी में उत्पन्न होती थी ।
 घालीत साल की उम्र में उसे जिदा गहवा देते थे, ताकि संतान दुर्बल न
 हो । लेकिन अब यह प्रथा बंद हो गई है, यही कारण है कि अब ये लोग भी
 दुर्बल और असुन्दर होते जा रहे हैं ।.....”

नारायण अभी कुछ और कहना चाहता था; पर गनी चाय ले
 आया । पराशर ने बीड़ी उठाई, जो पड़े-पड़े बुझ गई थी । लेकिन वह धुआँ
 निकालने का ध्येय प्रयत्न करने लगा । गनी ने उसे चाय का प्याला और
 बीड़ी सुलगाने के लिए कोयला पेदा किया । पहले उसने बीड़ी सुलगाई और
 फिर मुट्ठी की बीड़ियाँ झोली में रखकर प्याला थामा; लेकिन टोस्ट लेने

से इन्वार कर दिया क्योंकि दात न होने के कारण वह खा नहीं सकता था। वह एक घूट घाम का पीकर चार कश बीड़ी के लगाता था। जब फेफड़े तनिक गर्म हो गये तो नारायण की बात से तिलतिला मिलाकर कहना शुरू किया—

‘किसी एक इलाके की बात नहीं त समाम हिन्दुस्तान में साड़ पलते थे और अब भी पलते हैं। मठो और खानकाहो में जाकर देखिये इतने सांड भरे पड़े हैं कि आदमी दे देखकर द दग रह जाता है और उनकी तादाद इतनी ज्यादा है कि यहा त तो उनके लिए गुजाइश ही नहीं। अगर उन्हें जहाजो में भरकर योरुप भेज दिया जाये तो इन साम्राजियो की न नसल भी अच्छी हो सकती है। फिर वे घाग भी पल्ले सिरे के होते हैं, उनमें से एक एक सौ सौ अंग्रेजो को छल और कपट की चालो में म मात दे सकता है। मेरे जैसे बुद्धमल बधाऊमल उनके पावो की घू • घूल घो घो धोकर पीते हैं।’

उसने एक नई बीड़ी सुलगाई और लम्बे लम्बे कश खींचने शुरू किये। प्याले में जा घोड़ी सी चाय बच रही थी, वह अब ठन्डी हो गई थी उस एक ही घूट में गट गट गले से नीचे उतार लिया। गनी ने एक और प्याला देना चाहा, जो उसने नहीं लिया। बीड़ी का कश लगाकर धुआ छोटा और फिर अशोक से पूछा—

‘कोई और खबर?’

‘हिसार के इलाके में अकाल जोर पकड गया है। सैकड़ो मवेशी चारा न मिलने के कारण मर गये और लोग घरबार छोड छोडकर दूसरे इलाको को भाग रहे हैं।’

‘पराशर जी!’ नारायण बोला, ‘ये हैं अंग्रेजी राज की बरकतें जो हमने दूसरी जमात से पडना शुरू की और अन्त तक रटना पडी। इतना रटो कि अब तक जबानी याद हैं—रेलें चलाई तार धर खोलें, सडकें बनवाईं नहरें निकाली, सिंचाई का प्रबन्ध किया, अकाल का भय नहीं रहा, लोग आराम से रहते हैं—शेर और बकरी एक घाट पानी पीते हैं।’

“कामरेड अशोक ! मुझे क्षमा करना । वैसे त...तो आप लोगों ने भी कालेजों में शिक्षा पाई है; लेकिन यह बहुत ही कड़व-कड़वी सच्चाई है कि हमारे कालेजों से बुद्धमल, बघाऊमल निकलते हैं । जब वे शिक्षा स... समाप्त करके कालेजों से बाहर आते हैं, तो उनके हाथ में एक गीदड़ परवाने के अ...अलावा और कुछ नहीं होता । अगर सौभाग्य से नौकरी मिल जाती है तो ये परवाने दि...दिखाकर अंग्रेजी सरकार के कल-मुर्जे बन जाते हैं । सुबह से शाम तक द...दफ्तरों में बैठे कलम घिसते हैं; दोनों हाथों से अपढ़ जनता को लूटते हैं और अंग्रेज ब...बहादुर के गुण-गान करते हुए मर जाते हैं...”

पराशर रुक गया अशोक का ध्यान इस ओर नहीं था, वह कोई विशेष समाचार पढ़ रहा था । नारायण भी अखबार पर झुका हुआ था । पराशर को यह बात अखरी ओर उसने बीड़ी का कश लगाकर गिला किया—

“मुआफ कीजिएगा । आपको मेरी बातें नागवार गुजरती होंगी, लेकिन जो कुछ मैं कह रहा हूँ कड़वा जरूर है, लेकिन सोलह आने सच है; प...पत्थर की लकीर है और मुझे यह म...मरज है कि जो कुछ सच समझ उसे अर्ज कर दू । वैसे त... तो हर एक बुद्धमल, बघाऊमल अपने आपको अबलमद समझता है; लेकिन पराशर ने जो कुछ सीखा है, जीवन का लहू न... निचोड़ कर सीखा है ।”

इस बात को कौन नहीं जानता था कि पराशर के शरीर का लहू निंदयता से निचोड़ा गया है । उसे माण्डला के दिनों में गिरफ्तार करके काले पानी भेज दिया गया था । पन्द्रह-सोलह साल अंडमान में व्यतीत हुए थे । अभी दो साल हुए छूटकर आया था और अब शहर की एक वार्ड कांग्रेस कमेटी का प्रधान था ।

अशोक को महसूस हुआ कि उसकी असावधानी से पराशर के मन को आघात पहुंचा है । उसने अखबार रखकर विनीत भाव से कहा— “पराशर जी, भूल हो गई, क्षमा कीजियेगा । आप कहिए मैं ध्यान से सुनूंगा । यो ही हिटलर के भाषण पर नजर जा पड़ी थी, मैं उसे देखने गए था ।”

“क्या भाषण दिया है हिटलर ने ?” पराशर ने घुभां बाहर निकालते

हुए दरियापत किया।

‘हिटलर कहता है कि हम विल्कुल लड़ना नहीं चाहते। हम सिर्फं वह इलाके वापस लेंगे जो पिछले युद्ध में जर्मनी से छीन लिए गये थे।’

“यह सब कहने की बातें हैं। नारायण बोला और दृढ़ विश्वास के साथ आगे कहा, ‘लड़ाई होगी और अवश्य होगी।’

‘इसमें तो सदेह नहीं कि लड़ाई होगी। सम्भव है कि साल दो साल और इमो तरह टल जाये। जर्मनी को मडिया चाहियें और हिटलर जानता है कि मडिया बिना लड़ नहीं मिलेगी। अंग्रेज चाहता है कि रूस और जर्मनी में छिड़ जाये और वह खुद अलग खड़ा तमाशा देखे। अंग्रेज की इसी नीति ने हिटलर को जन्म दिया है और इसी नीति के कारण उसे दिन-दिन ढील मिल रही है। उसने राईनलैंड और सार पर चुपके से कब्जा कर लिया, किसी के कान पर जू तक नहीं रेंगी। लेकिन जब वह और आगे बढ़ेगा, तो अंग्रेज को उसके विरुद्ध युद्ध का ऐलान करना पड़ेगा क्योंकि आज अंग्रेज ही दुनिया पर छाया हुआ है और उसे अपनी मडियों की चिन्ता है।’

‘कामरेड! मेरी एक बात याद रखना, अभी से कहे देता हूँ। युद्ध का ऐलान अंग्रेज करें चाहे जर्मनी करे, हमें इससे कुछ लाभ न नहीं होगा। हम सदा बुद्धमल बघाऊमल बने हैं और बनेंगे। पि पिछले युद्ध की तरह अंग्रेज को रुपया मिलेगा और भ भर्ती भी। एक बार फिर भूटे वादे करके हमें अगुलियों पर नचाया जायेगा और बाद में हमारी युद्ध से सेवामो का इनाम मिलेगा जेलो, गोलियों और मा—मार्शल्ला से।’

पराशर ने बीड़ी के लम्बे-लम्बे कश लगाना और धुआ छोटना शुरू किया। लगता था कि उसके भीतर भीषण ज्वाला घघक रही है, जो एक भयकर विस्फोट से इस कपट व्यवस्था का अन्त कर देना चाहती है। धुआ छोटते छोटते उसे जाने क्या खयाल आया कि तुरन्त उठकर जाने की तैयार हो गया।

“बस चले। कुछ और बैठिए। इतनी जल्दी क्या है?” अशोक ने

आग्रह किया।

“जल्दी त...तो कुछ खास नहीं। पर न...नन्ही घर पर अकेली है, मुझे याद करती होगी।” पराशर बोला।

नन्ही उसकी एक-मात्र संतान थी। उसे वह अंडमान से अपने साथ लाया था। वहां उसने एक बर्मी औरत से ब्याह कर लिया था। उसी औरत से यह लडकी उत्पन्न हुई थी। इस समय उसकी उम्र सात-आठ साल होगी। पराशर को नन्ही बहुत प्यारी थी। उसका ध्यान था जाये फिर कहीं वंटे रहना सम्भव नहीं था। अशोक के आग्रह पर भी वह रुका नहीं, जाने के लिए जूता पहनने लगा। लेकिन गनी इशारों में कुछ कह रहा था, उसका आशय समझकर नारायण बोला—

“हां, हां जरूर दिखा। पराशर जी एक मिनट रुकिए और गनी का एड्रेस देखते जाइए।”

पराशर ने एड्रेस गनी के हाथ से ले लिया और उस पर उचटती-सी निगाह डालकर कहना शुरू किया—“कामरेड गनी, रात में जलसे मे मौजूद था। शुक्र करो कामरेडों ने तु...तुम्हारी कुरबानियों का एतराफ तो किया। वरना सच तो यह है कि गरीब आदमी जेलों में...पड़ा-पड़ा सड़कर मर जाये, कोई उसका नाम तक नहीं लेता। दूसरी त...तरफ एक बुद्धमल बधाऊमल, जिसके पास पैसा हो, मोटरें हों, चाहे स...सयासत का अलिफ .. बे...भी न जानता हो, अब्बल दर्जे का बेईमान और भूठा हो, मुआफ करना मैं सद्ध बात मु...मुंह से नि...निकाल रहा हूं, दो महीने जेल में रह आये, तो उसे फछ्रे-कीम, देवता स्वरूप और जाने किन-किन नामों से पुकारा जाता है। फिर वंकों और कम्पनियों का डा...डायरक्टर बन कर ऐश करता है। पराशर सोलह साल अंडमान में रहकर भी गलियों की स...साक छानता फिरता है और उसकी बच्ची टु...टुकड़े-टुकड़े के लिए दूसरी की मु...मुहताज है।”

उसे फिर नन्ही का ध्यान आया, और वह एड्रेस घरती पर रखकर दोनों हाथों से प्रणाम करता हुआ कमरे से बाहर निकल गया।

कुछ देर सग्नाटा रहा। अशोक, नारायण और गनी चुपचाप दरवाजे

की ओर ताकते रहे और पराशर के खट खट सीढ़ियों से उतरने की आवाज सुनत रहे। जब उसके पाव की आाप सुनाई देना बन्द हो गई तो अशोक फिर अखबार पढने लगा, गनी ने एड्रेस को घरती से उठाकर झाडा-पूछा और नारायण ने दायें हाथ से दायें हाथ की अगुलिया चटखाते हुए दार्शनिक भाव से कहा—

‘ यह ब्यक्ति हर समय धुआ छोडता है और आग उगलता है ! ’

दीवार

राजेन्द्र और इखलाक को ओकाड़ा में आये लगभग एक हफ्ता हो चला था और उन्होंने मजदूरों से मेल-जोल बढ़ा कर हालात को समझने का प्रयत्न किया। यहाँ आठ-नौ हजार मजदूर काम करते थे और उनकी दो किसमें थीं— एक कच्चे और दूसरे पक्के। कच्चे मजदूर रुई के उन कारखानों में काम करते थे, जो कपास का मौसम शुरू होने पर चालू होते थे और सालभर में सिर्फ़ चार-पाँच महीने जारी रहते थे। इन कच्चे मजदूरों की तादाद तीन और चार हजार के दरम्यान होती थी। इनमें प्रायः ऐसे लोग शामिल थे, जो काम शुरू होते ही देहात से शहर आ जाते थे और काम खत्म होते ही फिर देहात को लौट जाते थे। उनमें से कुछेक की अपनी जमीन होती थी, बहुतों को दूसरों के खेतों पर काम मिल जाता था। इनके अलावा पाँच-छः हजार पक्के मजदूर थे, जो कपड़े के मिल में काम करते थे और स्पाई रूप से वहीं रहते थे। शहर से बाहर रेलवे लाईन के उस पार उनकी बस्ती आबाद थी। राजेन्द्र और इखलाक एक दिन मजदूरों की इस बस्ती को देखने गये। स्थानीय वर्कर्स ने उनके साथ एक गार्ड कर दिया, जो खुद मजदूर था और इसी बस्ती में रहता था। बीस-इक्कीस साल का नौजवान छोटी-छोटी मूँछें हस-मुस और बहुत ही समझदार। संयोगवश वह राजेन्द्र से पहले ही परिचित था। वह उसी अखबार के दफ्तर में चपड़ासी था, जिनमें राजेन्द्र सह-गम्पादक रह चुका था।

“बाबूजी नमस्ते । मुझे नहीं पहचाना ।” उसने देखते ही कहा ।

“ओहो रामदास ! तुम कहां !” राजेन्द्र ने उत्तर दिया ।

रामदास ने बताया कि उसका चाचा कपडा मिल में मजदूर है उसके कारण छ-सात महीने से वह भी यही आ गया है ।

रामदास का कद लम्बा, शरीर सुगठित और स्वस्थ था और इसके साथ ही वह मेहनती भी बहुत था । जब वह अखबार के दफ्तर में मुलाजिम था, उसने कुछ पढ़ना-लिखना भी सीख लिया था । मजदूरों से सम्बन्धित खबरें दिलचस्पी से सुना करता था । अमरीका में दो लाख मजदूरों ने हड़ताल की, उनकी मांगें मान ली गईं । कानपुर में छः हजार मजदूरों ने हड़ताल की, पिकेटिंग हुई, पुलिस ने गोली चलाई और दो मजदूर मारे गये । हड़ताल किसलिए हुई और गोली क्यों चली ? राजेन्द्र उसे कारण बताता तो उसका मन मजदूरों के प्रति सहानुभूति से भर जाता और वह विषाद युक्त स्वर में पूछता—“बाबूजी, गोली हमेशा मजदूरों पर ही क्यों चलती है ?”

और अब वह खुद मजदूर भर्ती हो चुका था और कपडासी से मजदूर बन जाने पर खुश था, क्योंकि वह अपने चाचा के पास रहता था, जो उसे घेरे की तरह प्यार करता था ।

उसे राजेन्द्र की याद कई बार आ जाती थी क्योंकि दफ्तर में उसका रवैया सबसे अलग था । वह सदा हमदर्दी से पेश आता था और हर एक बात प्यार और मुहब्बत से समझाया करता था । रामदास को मालूम था कि वह सियासी बर्कर है और मजदूर यूनियन में काम करता है । यहाँ भी उसने ऐसे सियासी बर्कर दूढ़ निकाले थे, जो मजदूरों से और उनकी मांगों से दिलचस्पी रखते थे । जब उसे मालूम हुआ कि लाहौर से दो आदमी आये हैं और मजदूर बस्ती देखना चाहते हैं तो उसने उन्हें बस्ती दिखाने का काम खुशी-खुशी अपने जिम्मे ले लिया ।

“आप यहाँ भी यूनियन बनायेंगे ?” उसने रास्ते में राजेन्द्र से पूछा ।

“हाँ बनायेंगे, होंगे तुम उसमें भर्ती ?”

“जरूर ! हमारे और भी कई साथी तैयार हैं । हम तो खुद ही यूनियन

बनाने की बात सोच रहे थे।”

क्वार्टर छोटे-छोटे थे; बस्ती दूर तक फैली हुई थी। जो मजदूर परिवार के साथ रहते थे, उनके क्वार्टर कुछ बड़े थे। हर एक मजदूर को दो-तीन रुपये महीना किराया देना पड़ता था। क्वार्टरों के बनाने में किमी योजना से काम नहीं लिया गया था। अगर आठ-दस के दरवाजे उत्तर को थे, तो आठ-दस के पूर्व को। यहां दो पंक्तियां और वहां तीन। फिर काफी जगह खुली छोड़ दी गई थी, जिसमें कूड़े-कंकट के ढेर लगे हुए थे और इन ढेरों को मुर्गे-मुर्गियां कुरेद रही थी। गलियां तंग और टेढ़ी-मेढ़ी थी; जिनमें आवाजा कुत्ते घूम रहे थे और मजदूरों के नंगे-धड़ंगे बच्चे भी थे। क्वार्टर इतने बिखरे हुए थे कि इसे एक बस्ती कहना कठिन था। लगता था जैसे कई बस्तियां हों और लोग एक दूसरे से दूर-दूर रहने के आदी हों।

लेकिन एक चीज विशेष रूप से इखलाक और राजेन्द्र के ध्यान का कारण बनी। जब से बस्ती शुरू हुई थी, वे एक दीवार के साथ-साथ चल रहे थे।

“इस दीवार के दूसरी ओर मुंशी और जाबर रहते हैं।” रामदास ने उन्हें बताया।

“मुंशी तो खैर बलक हूँ, लेकिन यह जाबर क्या बला है?” राजेन्द्र ने कौतूहल में भर कर उसकी ओर देखा।

“जाबर उस जमादार को कहते हैं।” रामदास बोला—“जो पच्चीस-तीस मजदूरों के काम की निगरानी करता है, काम का हिसाब मंनेजर को देता है, अर्थात् मशीन बिगड़ जाय तो दुरुस्त करता है और कोई पुर्जा घिस जाय तो बदल देता है।”

“लेकिन जाबर का तो मतलब है, जाबर और सख्ती करने वाला।” इखलाक ने कहा।

“नहीं साहब, यहाँ तो इन्ही लोगों को जाबर कहते हैं।”

रामदास ने अपने ही बताये हुए अर्थ की सीमा में रहना पसन्द किया “ये भी तो सस्ती और जबर ही करते हैं। जरा-जरा सी बात पर जुर्माना कर देते हैं। कुछ म्गड़ा हो जाये तो मासिकों का साथ देते हैं।”

“जाबर और मुन्गी सब इकट्ठे रहते हैं ?”

“जी हा, उनके क्वार्टर अच्छे और खुले हैं।”

“मजदूरो से उनका कुछ सम्बन्ध नहीं ?”

“सम्बन्ध क्या है ? वे अपना उधर रहते हैं हम इधर।”

“और बीच में यह दीवार खींच रखी है ?” इखलाक ने अगुली को तबील जुबिश देते हुए दीवार की ओर संकेत किया। राजेन्द्र हस पड़ा। लेकिन रामदास इस व्यंग को नहीं समझा। उसने समझा कि वह जो जान-कारी उन्हें दे रहा है, वही हसी का कारण है, आगे कहा—

“जो मजदूर जाबरी का उम्मीदवार बन जाता है, उसे भी दीवार के उस तरफ ही रहने की जगह मिल जाती है।”

“जाबरी का उम्मीदवार किस हिमाब से बनता है ?”

“हिमाब तो मुझे मालूम नहीं।” रामदास ने नकारात्मक ढंग से सिर हिलाते हुए कहा।

“और दफ्तरो की तरह मुलाजिमत का हिसाब होगा। पुराने मजदूरो को जाबर बना देते होंगे।”

“मुलाजिमत का हिसाब कोई नहीं।” रामदास ने सशोधन किया, “मेरे चाचा पुराने मजदूर हैं, उन्हें किसी ने जाबर नहीं बनाया, जिसे चाहते हैं, बना देते हैं और बनाये हुए को हटा भी देते हैं।”

“तो फिर खुशामद का हिमाब होगा। जिसने ज्यादा खुशामद की वही जाबर बन गया।”

“यह ठीक है।” रामदास को बात पसन्द आई। वह हस पड़ा।

दीवार में थोड़े-थोड़े फासले पर खिड़कियाँ थीं, उनमें से अक्सर बन्द पड़ी थीं। इत्तफाक से जो दो-चार खुली रह गई थी, राजेन्द्र और इखलाक ने उनमें से झाँककर दूसरी ओर के इन्सानों पर नज़र डाली। उनका रहन-सहन आम मजदूरो से अलग था, वस्त्र अलग थे। उन्हें तनखाह अच्छी मिलनी थी और रहने को क्वार्टर भी अच्छे मिले हुए थे, जो साफ-सुधरे और खुले थे। आगे आगन था, कुछ लोगो ने क्यारिया बनाकर उनमें सज्जी उगा रखी थी। मजदूर जब इन खिड़कियों में से

इधर देखते थे, तो उस दिन की कल्पना करते थे, जब वे भी जाबर बनेंगे; दीवार के उस ओर जाकर रहने लगेंगे और अपने कमरे के आगे सब्जी उगायेंगे। लेकिन बहुतों को तो जाबर बनने की भी आशा नहीं थी, वे मन ही मन कुढ़ कर रह जाते थे, बहुत हुआ तो मुट्ठी भीचकर एक दो घूसे दीवार पर लगा दिये, लेकिन दीवार इतनी कमजोर थोड़ी थी कि उनके घूसों ही से गिर जाती।

दीवार और बस्ती के दमर्यान जो तंग गली थी, उसे पार करके वे नुककड पर पहुंचे। यहा दीवार खत्म हो गई, कमरों का सिलसिला भी खत्म हो गया। सामने खुले खेत थे।

“बस्ती तो आपने देख ली, यहां सब पंजाबी मजदूर रहते हैं।” रामदास ने कहा और दक्षिण की ओर संकेत करके बोला, “वह मिल है। वहां दीवार खत्म होने पर जो दरवाजा दिखाई देता है, उसके अन्दर भी कमरे बने हुए हैं, जिनमें यू० पी० और गुजरात के मैया लोग रहते हैं। पर उस जगह को बस्ती नहीं क्वाटंजं कहते हैं। कहो तो वे भी दिखा दूं।”

वे उस तरफ चले। सामने से एक आदमी कोट पतलून पहने और टाई लगाये आ रहा था, जब नज़दीक पहुंचा तो रामदास ने उसे नमस्ते की। उस व्यक्ति ने तनिक गर्दन हिलाई और इन लोगों पर नज़र डाले बिना ही आगे चल दिया।

“यह साहब कौन थे ?”

“डॉक्टर है।”

“मजदूरों के लिए हस्पताल खोल रखा होगा ?”

“जी हां।”

“दवाई बर्गरह ठीक मिल जाती है ?”

“जी नहीं, डॉक्टर बड़ा बदमिज़ाज़ है।” रामदास ने शिकायत की, “जोई तकलीफ हो कुनीन पी लो। चोट आये, फोटा-फुंमी हो तो टिचर सगा लो। मेरी अंगुली पर जरा चोट आई थी। चीस दिन हो गये। आराम तो क्या आना था उल्टे पीप पड गई।”

रामदास ने बायें हाथ की दमर्यानी अंगुली पर पट्टी बांध रली थी।

बाह लटकाने से कष्ट होता था, इसलिए हाथ छाती से लगा कर चल रहा था। राजेन्द्र की नजर कई बार इस पट्टी बधी अगुली पर पड़ी थी और वह कैफियत पूछते-पूछते रुक गया था, अब बोला—“क्या हुआ ?”

“लकड़ी काट रहा था, फाक खुब गई।”

लम्बाई के मुकाबिले मे दीवार की चौड़ाई बहुत थोड़ी थी, वे जल्द सड़क पर पहुंच गये। रामदास ने बायें हाथ बनी हुई एक इमारत की ओर संकेत करते हुए कहा—“यह स्बूल है।”

“पढाई बाकायदा होती है।”

“जी नहीं। कभी पढाने लग जाते हैं और कभी बन्द कर देते हैं। जब से मैं आया हू, दो बार बन्द हो चुकी है। अब दम-दाग्ट दिन में दिन शुरू हुई है।” रामदास बता रहा था, लेकिन राजेन्द्र और लखलाक दाईं ओर एक मकान देख रहे थे, जिसके सामने तीन-चार बच्चे कुत्तों के साथ खड़े रहे थे। “यह डाक्टर का मकान है।” रामदास ने उन्हें दिखाते हुए संकेत करके बताया।

“और मैनेजर किस जगह रहता है ?” लखलाक ने पूछा।

“उसकी कोठी यहा से काफी दूर सड़क के किनारे है। मकान में बैठ कर आता है और मोटर में बैठकर चला जाता है।”

“बहुत खूब।” लखलाक ने राजेन्द्र की ओर लखलाक को, “मकानों की बस्ती, मुन्शियो के बवाटेर, डाक्टर का मकान और मैनेजर की कोठी” लजीब सिलसिला है।”

रामदास की बाह बातों में लखलाक ने लखलाक को, “मकानों की बस्ती, मुन्शियो के बवाटेर, डाक्टर का मकान और मैनेजर की कोठी” लजीब सिलसिला है।” सहसा ऊपर उठाया और वह दायां हाथ लखलाक को लखलाक को अगुली को दबाने लगा। उसमें लखलाक ने लखलाक को, “मकानों की बस्ती, मुन्शियो के बवाटेर, डाक्टर का मकान और मैनेजर की कोठी” लजीब सिलसिला है।” जाती थी, शायद दिल में भी लखलाक को लखलाक को, “मकानों की बस्ती, मुन्शियो के बवाटेर, डाक्टर का मकान और मैनेजर की कोठी” लजीब सिलसिला है।” दर्द को सहन करते लगा।

जब वे दरवाजे के लखलाक ने लखलाक को, “मकानों की बस्ती, मुन्शियो के बवाटेर, डाक्टर का मकान और मैनेजर की कोठी” लजीब सिलसिला है।” चलिये। अन्दर जाकर लखलाक ने लखलाक को, “मकानों की बस्ती, मुन्शियो के बवाटेर, डाक्टर का मकान और मैनेजर की कोठी” लजीब सिलसिला है।” जमादार जो सामने लखलाक ने लखलाक को, “मकानों की बस्ती, मुन्शियो के बवाटेर, डाक्टर का मकान और मैनेजर की कोठी” लजीब सिलसिला है।”

जमादार दरम्याने कद का गोल-मटोल आदमी था। उसने खाकी वर्दी पहन रखी थी, चेहरे पर बड़ी-बड़ी मूंछें और हाथ में डंडा। राजेन्द्र और इखलाक उसके करीब से गुजरकर भीतर चले गये। दरवाजे में दाखिल होते ही दाईं ओर दीवार के साथ एक बोर्ड पड़ा था, जिस पर चाक से एक सूचना लिखी हुई थी, वे उसे पढ़ने लगे।

“धर्म प्रेमियों को सूचित किया जाता है कि पंडित बैकुण्ठनाथ मधुरावासी शाम को रामायण की कथा बतारजे राधेश्याम करेंगे। सब तज्जनों को चाहिये कि पधारकर अमृत-पान करें।”

और बाईं ओर की दीवार पर तीन बोर्ड लटक रहे थे, जिनमें से दो पर मलेरिया और हैजा से बचने के लिए हिदायतें लिखी हुई थी। यों तो दोनों बोर्डों पर हिदायतों की तादाद सत्रह-सत्रह थी, लेकिन उनमें से तीन-चार दोनो पर दोहराई गई थीं, जैसे—मजदूरों को चाहिये कि वे कमरों के आगे दाल-भात या कोई और सड़ी-गली चीज न फेंका करें। शीघ्र पचने वाला भोजन खाएँ और दूध-दही का इस्तेमाल अधिक करें। और तीसरे बोर्ड पर मोटे-मोटे अक्षरों में यह सूचना दर्ज थी—

“यह अहाता कारखाना की मिलकियत है, इसमें धार्मिक जलसों के अलावा और किसी किस्म का जलसा वर्ग रह करने की सख्त मनाही है।”

जब वे बोर्ड पढ़ रहे थे, रामदास भी भीतर आ गया और वे तीनों आगे बढ़े।

मजदूरों की इस बस्ती के गिदं फमील बनी हुई थी और क्वार्टरों की बनावट में भी एक व्यवस्था थी। आमने-मामने दो-दो पंक्तियाँ थी और इन पंक्तियों के बीचों बीच काफी खुली पक्की गलियाँ थी। लेकिन क्वार्टर छोटे-छोटे थे और खाना बनाने से उनकी छतें सियाह हो गई थी। मँग्या लॉज कमरों में भरे पड़े थे। छुट्टी के बावजूद घूमने नहीं गये थे, जैसे उन्हें घूमने-फिरने की आदत ही न हो। अक्मर लेटे हुए थे, कुछ बीड़ी पी रहे थे, कुछ गप्पें हाक रहे थे और कुछेक धार्मिक पुस्तकें पढ़ रहे थे। धोतियों के अतिरिक्त पतले-दुबले शरीर नगे थे, या फिर जनेऊ पहन रहे थे। चारपाईया मोटे मूँज की चारमाना बुनी हुई थी, जो छोटी-छोटी और

कमजोर थी, इसलिए कहीं भी दो से अधिक व्यक्ति किसी एक चारपाई पर नहीं बैठे थे। कई चारपाइयों का एक पाया या एक बाजू टूटा हुआ था, उन्हें इंटों का सहारा दे रखा था। वे सारी बस्ती पार कर गये, कहीं भी स्वस्थ चेहरा और सुडौल शरीर दिखाई नहीं दिया। राजेन्द्र, इखलाक और रामदास बीच में से गुजरते गये, किसी ने उनकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा, जैसे वे वातावरण से उदासीन और बे-खबर हो, जैसे उनका अस्तित्व भी इन कमजोर चारपाईयों से अधिक न हो, जैसे जीने के लिये उन्हें भी कोई सहारा दरकार हो। वे हैजा और मलेरिया से बचने के लिये दाल-भात जैसा नरम और शीघ्र पचने वाला भोजन बहुत थोड़ी मात्रा में खाते थे। शरीर सूख गये थे, लेकिन बीमारी से बचे हुए थे और पड़ित ब्रह्मकुण्ठाथ की कथा में जो अमृत पान करने को मिलता था, उसी के कारण अमर हो गये जान पड़ते थे।

“ये भी अपना अलग-अलग रहते हैं ?” इखलाक ने पूछा—

“हां, ये हम पंजाबी मजदूरों से मिलते-जुलते नहीं।”

“इसका मतलब है कि इन्हें संगठित करना बहुत कठिन है ?”

“इसमें क्या शक है।” राजेन्द्र बोला, “लेकिन कामरेड, यह सिर्फ इन्हीं की बात नहीं। जो पंजाबी मजदूर कानपुर, अहमदाबाद और बम्बई के कारखानों में काम करते हैं, वे भी इसी तरह अलग-अलग रहते हैं। किसी आन्दोलन और किसी संगठन में बहुत कम भाग लेते हैं।”

“ठीक होगा” इखलाक बोला और तनिक सोचकर कहा, “इसका तो यह मतलब हुआ कि जब आदमी एक सूबे से दूसरे सूबे में मजदूरी करने जाता है, तो उसको जहाँ धरती में कट जाती है। अपने समाज और अपनी रवायत से उसका कोई ताल्लुक नहीं रहता। उसे अपना और बीबी बच्चों का पेट पालने की फिक्र लगी रहती है।”

“कुछ भी हो। यह एक हकीकत है जिसे शायद कारखानेदार बख्शी समझता है, तभी तो उसने अपनी ओर क मे भैया लोग लाकर भर्ती किये हैं।”

बार्तें करते वे एक छोटे से चौक में पहुँचे, जहाँ नहाने-घोने के

पानी के नल घे और पक्का फरां बना हुआ था। उन्होंने भी पानी पिया। दिन छिप चला था, इसलिए लौटने की सोची। जब वे नल वाली गली से गुजरकर नुक्कड़ पर आए तो देखा कि पांच-सात भैया लोग इकट्ठे बैठे "आल्हा" गा रहे हैं। गाने का स्वर गूँज रहा था और सिर झूम रहे थे। इखलाक यह दृश्य देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—

"लो भाई, यहाँ भी जिन्दगी रकस (नाच) कर रही है।"

वे मुस्कराते हुए और बोड़ों पर उचटती सी निगाहें डालते हुए अहाँत से बाहर निकल आये।

"यह दीवार है, वह दीवार है।" इखलाक ने सड़क पर चलते-चलते कहा "सरमायादारी का काम इन्सान, इन्सान के बीच दीवारें खीचना है।"

"और इन दीवारों को गिराना मुश्किल है।" राजेन्द्र बोला।

"मुश्किल तो है, लेकिन बहुत मुश्किल नहीं। वक्त ने उनकी बुनियादों को खोखला कर दिया है।"

जिस मोड़ पर उन्हें घूमना था, वहाँ खड़े दो मजदूर बातें कर रहे थे। रामदास इस बार भी दरवाजे से गुजरते समय पीछे रह गया था। अब दौड़ कर साथ आ मिला और इन मजदूरों की ओर इशारा करके बोला—"वह मेरा चाचा बदरी है और जिसके साथ वह बातें कर रहा है, उसका नाम सदीक है। इन दोनों में बड़ी दोस्ती है। दोनों मजदूरों के एक घड़े के चौधरी हैं। मुकाबिले में एक दूसरा घड़ा है, जिसके चौधरी नन्दू और रहमा हैं।"

"अच्छा, बस्ती के मजदूरों में भी दो घड़े हैं?"

"जी हाँ, बड़े जबरदस्त और दोनों में खूब चलती है।"

"गोया यह एक और दीवार है।" इखलाक ने संजीदगी से कहा और उसकी नजर उस दीवार पर पड़ रही थी, जो बस्ती के बीचों बीच फैली हुई थी।

नई शक्ति, नई आवाज

सब भैया लोग पक्के मजदूर थे। लेकिन पंजाबी मजदूरों की बस्ती में कच्चे मजदूर भी रहते थे। कमरे अगरचे पक्के मजदूरों को ही किराये पर दिये जाते थे, लेकिन उनके भाईबन्द और जवान बेटे-बेटिया भी साथ ही रहती थी। जब रुई के कारखाने चालू होते थे तो उन्हें काम दिलाने के लिए दौड़-धूप होती थी। देहात से आए बेकार लोगों से उनकी होड़ लगती थी और इस होड़ में रुई के कारखानों की मजदूरी अक्सर कम हो जाती थी। इसलिए पक्के मजदूरों को न सिर्फ यह ध्यान रखना पड़ता था कि उनके सम्बन्धियों को रुई के मौसम में काम मिल जाये बल्कि वे यत्न करते थे कि अबसर मिलने पर उन्हें पक्के मजदूर भर्ती करा दिया जाये।

इसी आर्थिक संघर्ष ने मजदूरों को दो घडों में बांट दिया था, रामदास ने इन्हीं घडों का जिक्र किया था। दोनों ओर के चौधरी अपने-अपने घडे को मजबूत बनाने के लिए जोड़-तोड़ करते रहते थे। जिस घडे का बहुमत हाता था, उसे काम पाने में सुविधा रहती थी। लेबर वेलफेयर आफिसर, जिसे मजदूर इंचार्ज साहब कहते थे, उसी घडे की रिआयतें देता और इस घडे के लोगों को मिल की डिस्पेंसरी में दवादारू अच्छी मिलती थी। यही कारण था कि दोनों घडों की शक्ति एक दूसरे को मात देने में नष्ट होती थी और वेलफेयर आफिसर की सफलता इस बात पर निर्भर थी कि वह मजदूरों को इसी उधेड़-बुन में डाले रखे।

अब नन्दू और रहमा का घड़ा बहुमत में था और उन्हें यह हैसियत पिछले पांच-छः महीने से हासिल हुई थी। बदरी और सदीक का घड़ा लगातार कई साल से बहुमत में चला आता था। कारण यह कि नन्दू और रहमा की अपेक्षा वे अधिक मेहनती, अधिक चतुर और बात के खरे थे, इसके अतिरिक्त मजदूरों को अपने साथ रखने का ढंग भी जानते थे। अब भी बहुमत टूट जाने की सम्भावना नहीं थी। उनकी यह हार अकस्मात् हुई। कारण यह था कि लेबर वेलफेयर आफिसर मनचंदा किसी बात पर बदरी से चिढ़ गया था और उसके घड़े के कमजोर हिस्सों पर भीतर ही भीतर चोट कर रहा था। बदरी ने उसकी नाराजी को समझ लिया था और चाहता कि उसके मन का द्वेष दूर करे। लेकिन सदीक को यह बात गवारा नहीं थी, वह बोला—“तुम्हारा कोई कसूर नहीं। अगर वह इस लिए नाराज है कि तुम मनेजर से क्यों मिले, तो रहने दो। हम उससे भी निपट लेंगे, वह हमारा खुदा थोड़े ही है।”

सदीक की बात बदरी के मन लगी। दोनों अपनी आन पर अड़े रहे। मनचंदा से दिन-दिन खिचते चले गये। यहां तक कि अब उसे भी खुल्लमखुल्ला विरोधी पक्ष में गिना जाता था।

“बहुत मुश्किल मामला है। अगर हम एक घड़े से मेल-जोल पैदा करेंगे तो दूसरे घड़े के लोग हम से बिगड़ जायेंगे और हमें अपना विरोधी समझेंगे। इसलिए बेहतर है कि हम दोनों घड़ों के चौधरियों से मिलें और आपस में सुलह सफाई कराकर यूनियन की बुनियाद रखें।” राजेन्द्र ने इखलाक से कहा।

“हमें पुरानी इमारत की मरम्मत नहीं करनी, नई बनानी है और उसकी ईंट ठोस बुनियादों पर रखनी है।” इखलाक ने जवाब दिया, “अब्वल तो चौधरियों में समझौता मुमकिन नहीं। कांग्रेस और लीग सीटर्सशिप की मिसाल हमारे सामने है। फर्ज करो समझौता हो भी जाये, दोबारा किसी बात पर तनाजा हुआ तो फिर टूट जाएगा और कदाकदा पहले से कही तेज हो जायेगी। हमें अपने काम का आगाज शखमीयतों से नहीं असूनों से करना है।”

“असूलो को अमल में लाने के लिए भी तो आदमी दरकार हैं।

‘बेशक आदमी दरकार हैं लेकिन दुष्ट किस्म के।’

“दुष्ट किस्म के आदमी कहां से आयेंगे ?”

“रामदास और उसके साथी नौजवान, जो इस घडेबंदी से बेजार हैं, सरमायदारी से मुतनफर है और मजदूरो के मफाद के लिए एक होने को तैयार हैं।”

“बात तो ठीक है” राजेन्द्र ने थोड़ी देर सोचने के बाद कहा, “तादाद अगरचे थोड़ी होगी लेकिन उन्ही से इब्नदा करना मुनासिब है।”

बैठक बुलाई गई। पचास साठ नौजवान मजदूर जो शहर में जाकर कांग्रेस के जलसे जुलूस देखते रहते थे पहले ही से यूनियन बनाने के लिए तैयार थे। उनकी देखा देखी दस-पन्द्रह व्यक्ति और आ गये। राजेन्द्र ने उन्हें बताया कि इस समय मजदूरो का कोई संगठन नहीं है, छोटी छोटी बातों पर आपस में लड़ते हैं घडेबन्दी है। हम सब में एकता चाहते हैं ताकि मजदूर अपनी भागों मालिकों से मनवा सकें। मसलन ईद आ रही है। मुसलमान मजदूरो की छुट्टी होगी, हिन्दुओं की नहीं। फिर दीवाली आयेगी हिन्दुओं की छुट्टी होगी, मुसलमानों की नहीं। आप लोग चाहते हैं कि हर एक त्यौहार पर सबको छुट्टी हो, पर कोई नहीं सुनता। मजदूरो की यह भाग दुष्ट है और हम इसे मनवाने की कोशिश करेंगे। इसी तरह अस्पताल में दवाई खत्म हो गई, तो बस खत्म है। दोबारा नहीं आती। हम भाग करेंगे कि दवाई मगवाई जाये। फिर स्कूल है हम उसमें बाकायदा पढाई की भाग करेंगे। इसके अलावा जाबर लोगों के जुमाने बन्द हो और बोनस सबको मिले

वे पहले ही से ये बातें सोचते थे। अब कही गई, तो अच्छी लगी। नौजवान ऋट मेम्बर भर्ती हो गये। यूनियन बन गई और रामदास को उसका सेक्रेटरी चुना गया।

पौधा जमकर पेड़ बनता है। हजारों मजदूरो की बस्ती में साठ सत्तर छोकरों का यूनियन बनाना कोई विशेष महत्त्व की बात नहीं थी। को तो कानों कान खबर तक नहीं हुई। जैसे कुछ हुआ ही न हो,

बदरी ने रामदास से मजाक में कहा—

“अच्छा बेटा ! अब तुम भी चौधरी बन गये हो।”

“भाई साहब, बनने दो। हज़ं क्या है ?” सदीक बोला, “आखिर हमें कयामत तक तो जीना नहीं। अब इन्हीं का जमाना है।”

रामदास बहुत खुश था, उसकी चिराभिलाषा पूरी हुई थी। उसे अपना अस्तित्व साठ-सत्तर लाखों-करोड़ों मजदूरों में फैला हुआ महसूस होता था। यह मजदूर कानपुर में रहते थे, अमरीका में हड़तालें करते थे, रूस में उनका अपना राज था—वे सारे संसार में फैले हुए थे। मजदूरों की शक्ति बहुत बड़ी शक्ति है। इस शक्ति के आभास से रामदास की छाती तन गई, गर्दन ऊपर उठ गई और इसी शक्ति के बलवृत्ते पर उसने दूसरे ही दिन मुगली जाबर से झगड़ा भी मोल ले लिया।

एक जवान औरत नल पर पानी लेने जा रही थी। मुगली भी उधर से गुजर रहा था और उस औरत को लोलुप दृष्टि से देख रहा था। रामदास को आते देखा तो उच्च स्वर में कहा “क्यों भई, कभी कबूतरी को मटक-मटक कर चलते देखा है ?”

“हां देखा है।” रामदास ने उत्तर दिया, “तुम्हारी मां अब तो बूढ़ी हो गई, लकड़ी टेककर चलती है; पर जब जवान थी तो कबूतरी ही की तरह मटक-मटक कर चलती थी।”

मुगली जब भी बस्ती में आता, औरतों को घूरते हुए गुजरता। लोग देखते और दिल ही दिल में कुठ कर रह जाते। कौन बदमाश से झगड़ा मोल ले ? उसने छः-सात बदमाशों की टोली बना रखी थी, जो खाहस्ताह दूसरे का अपमान कर देते थे। रामदास को भी उसकी हरकतें बुरी लगती थीं और उससे कान्नी कतराते हुए अपनी जवानी पर खेद होता था। लेकिन आज—आज वह दबने को तैयार नहीं था। उसकी बात पर हंसने के बजाये उद्वेगता से जवाब दे रहा था।

मुगली ने उसके बदले हुए तेवर देखे और एक गहरी नजर उग पर डाली। रामदास के पीछे-पीछे थोड़े ही फासले पर रक्सा, बंमो और करमा तीन नौजवान और आ रहे थे। मुगली ने उलझना उचित नहीं

समझा, मुस्करा कर बोला—“तूने मेरी मा की जवानी कहा देखी बच्चू ! अपनी मां की बात करता होगा।”

“नहीं, मैंने तेरी मा की जवानी भी देखी है। तू मुझे क्या समझता है ?” अब वे तीनों भी उसके पास आ पहुँचे थे, रामदास ने तुनककर कहा, “मैं तेरे बाप के बराबर हूँ। मेरे पेट में दाढ़ी है।”

और वे तीनों हम पड़े। मुगली कट गया और चिड़ कर बोला, “अच्छा बकवास न कर।”

“बकवास तू करता है। कमीना कही का। शर्म नहीं आती और तो पर आवाजें कसते।”

“क्या बात है रामदास ?” बसी ने पूछा।

“बात है इसकी ऐसी-सैसी। बड़ा बदमाश बना फिरता है, सारी जाबरी निकाल दूंगा।”

मुगली ने वहाँ से खिसक जाना ही उचित समझा। लेकिन जाने से पहले मूँछों पर ताव देकर बाला—“अच्छा बच्चू याद रखना कि किसी मर्द से पाला पडा है।”

“जा, जा ! बड़ा मर्द बना फिरता है। कल से इधर आया तो टाँगें तोड़ दूंगा।”

शाम तक यह बात सारी बस्ती में फैल गई। जिसने सुना, रामदास की हिम्मत को सराहा, जैसे सारी बस्ती की लाज रख ली हो, जैसे उसने यह काम सब के मशविरा से किया हो। लेकिन बदरी चिंता में पड़ गया। वह जानता था कि मुगली बड़ा जालिम है। लडना-भिडना उसका नित्य का काम है। रामदास पर जाने क्या बीते ? उसने अपनी यह आशका सदीक को भी बताई। वह बोला—“तुम्हारी बात दुष्ट है। मुगली चुप तो नहीं रहेगा। मगर मैं यह कहूंगा कि रामू ने जो किया, ठीक ही किया। घबराने की जरूरत नहीं, जो होगा, देख लेंगे।”

इस साधारण घटना ने यूनिन के महत्व को बड़ा दिया और सब लोग उसके बारे में सोचने और सगठन में दिलचस्पी लेने लगे।



ग्लेडी-एटर

ग्यारह बजे का समय था। बरामदे में दो कुर्सियां आमने-सामने पड़ी थी, उन पर नारायण और प्रह्लाद बैठे विश्व-इतिहास का अध्ययन कर रहे थे। रोमन साम्राज्य और उसकी सभ्यता और संस्कृति का अध्याय था। नित्य के युद्धों, लड़ाइयों और हत्याओं ने मानव हृदय को कठोर और निर्दयी बना दिया था। विजेता विजित जातियों का न सिर्फ धन-दौलत लूट लेते थे, बल्कि उन्हें गुलाम बनाकर ले आते थे। विजेता राष्ट्र के जो सूरमारण-क्षेत्र में मारे जाते थे, उनकी आत्माओं को प्रसन्न करने के लिए गुलामों का बलिदान किया जाता था। धीरे-धीरे इन बलिदानों—गुलामों की नृशंस हत्याओं से उनका अपना मन ऊब गया, तो मृत-आत्माओं को प्रसन्न करने का एक दूसरा उपाय सोचा गया। जब कोई बड़ा व्यक्ति मर जाता तो उसकी अर्धा के साथ-साथ गुलामों को लड़ाया जाता। उनके वीरता से सड़ने और प्राण देने से मरने वाले की आत्मा प्रसन्न होती थी। वीरता और बबरता की सीमायें परस्पर मिल गई थी। लोग भी उन्हें लड़ते और मरते देखकर खुश होते थे। बाद में तमाशा देखने का शौक इतना बढ़ा कि अबसर लोगों ने गुलामों की इन लड़ाइयों को अपना पेशा बना लिया और उन्हें कला का रूप दे दिया। गुलामों को लड़ाने के लिए अखाड़े बनाये गये और अखाड़ों पर भ्रम्य और विनाल इमारतें बनाई गईं, जिन्हें ऐम्फी-थियेटर कहते थे और उनमें लड़ने वाले गुलामों को ग्लेडी-एटर कहा जाता था।

ग्लेडी एटर सिर्फ आपस में ही नहीं बल्कि उन दरिदो से भी लड़ते थे, जो इसी उद्देश्य से पाले जाते थे। तमाशाई मानव-रक्त बहने देखकर मत्स्यन्त प्रसन्न होते थे। उनका विश्वास था कि यह हिंसक खेल देख समूचा राष्ट्र बहादुर बनता है। जब एक ग्लेडी-एटर अपने प्रतिद्वन्दी ग्लेडी-एटर को घायल करके पृथ्वी पर गिरा लेता तो वह पहले एक अवज्ञापूर्ण दृष्टि उस पर डालता और फिर उसका समीप खड़ा सगर्व तमाशाइयों की ओर देखता, और उस समय तक देखता रहता, जब तक कि घायल ग्लेडी एटर को मार डालने या जीवित छोड़ देने की आज्ञा उसे न मिल जाती। अगर घायल ग्लेडी-एटर इस अवस्था में भी किसी प्रकार के साहस और वीरता का परिचय देता तो तमाशाई खुश होते और अपने अगूठे घरती की ओर झुका देते, जिसका अर्थ यह होता कि उसे कत्ल न किया जाय। और अगर दुर्भाग्य से वह न किसी वीरता का प्रदर्शन करता और न अपने साहस से तमाशाइयों को खुश कर पाता, तो वे अपने अगूठे आकाश की ओर उठा देते, जिसका अर्थ यह होता कि इस मरदूद को कत्ल कर दो।

नारायण पढ़ रहा था और प्रह्लाद सुन रहा था। अब उसने पुस्तक अलग रख दी और अपनी विशेष जानकारी के आधार पर कहा—“एक बार ग्लेडी एटरो, दरिदो और जहाजों की लड़ाई बराबर सौ दिन तक हाती रही, जिसमें मानव रक्त की नदिया बहने लगी। एक धार्मिक उत्सव पर यह हिंसक खेल एक सौ तीस दिन तक बराबर जारी रहा, जिसमें ग्लेडी एटरो के पांच हजार जोड़े लड़ाए गये और उनमें से हजारों मारे गये ”

“इसका यह मतलब हुआ”, प्रह्लाद ने उसे टोका ‘कि वे लोग विशेष उत्सवों और त्यौहारों पर यह खेल इस तरह करवाते थे जिस तरह हमारे यहाँ रईस लोग रडियो का नाच और मुजरा करवाते थे ?

‘विल्कुल। उन्हें खूब आनन्द आता था और अभीर लोग इस प्रकार के खेल करवाने में फ़ख़ और शान समझते थे।’

नारायण पढ़ते पढ़ते थक गया था। उसने कमर कुर्सी की पुस्तक से टेक दी और टाँगें फैला दी। बूझो के ऊपर से होकर जाने वाली किरणें उसके

शरीर को गरमा रही थीं। प्रह्लाद का शरीर किरणों की इस गरमी से वंचित था। उस पर बड़े पेड़ की ऊंची चोटी की छाया पड़ रही थी। वह चुप और निस्तब्ध कुछ सोच रहा था, शायद रोमन साम्राज्य के उस युग की कल्पना कर रहा था। उसके मन में जाने क्या विचार उठ रहे थे कि उसके चेहरे का रंग बदल गया था और होंठ तनिक हिल रहे थे। आखिर आंखों में धूना और अबज्ञा भरकर वह हठात् बोल उठा—

“कैसे वहशी लोग थे। मुझे तो ग्लेडी-एटर शब्द ही से नफरत है।”

“नफरत इस वक्त है। अगर उस वक्त तुम रोम में पदा होते तो शायद ग्लेडी-एटर बनना पसन्द करते।”

“ना, ना, ना, ! मैं तो कभी न बनता।” प्रह्लाद ने हाथ और गर्दन हिलाते हुए विरोध प्रकट किया। नारायण मुस्कराया।

“लेकिन ग्लेडी-एटर तो गुलाम होते थे।” प्रह्लाद फिर बोला।

“पहले गुलाम होते थे, बाद में यह शौक इतना बढ़ा कि अमीर गरीब सब ग्लेडी-एटर बनने लगे। जो व्यक्ति अधिक सफलता प्राप्त करने के पश्चात् इस जीवन का त्याग करता था, उसे लकड़ी की तलवार इनाम में दी जाती थी। मूर्तिकार ग्लेडी-एटरों की मूर्तियाँ बनाते थे, जिन्हें अमीर लोग मकानों में रखते और इमारतों में लगवाते थे।

“और वह रोमन साम्राज्य की उन्नति और पराकाष्ठा का युग था ?”

“इसमें क्या सन्देह है।” नारायण बोला, “वहशत और बर्बरता में ही सम्यता की वर्तमान उन्नति का बीज अंकुरित हुआ है। जीवन का स्वभाव है आगे बढ़ना। बर्बरता के इस युग में भी वह आगे बढ़ा है, मानव-संस्कृति का विकास हुआ है। ग्लेडी-एटर बनने की प्रथा को तो अन्त में सरकार ने कानून बनाकर बन्द कर दिया; लेकिन इन बर्बर खेल-तमाशों ने जिस कला को जन्म दिया, वह अब तक जीवित है।”

नारायण ने अन्तिम वाक्य पर अधिक बल दिया। लेकिन प्रह्लाद उससे सहमत नहीं था, वह विद्रूप भाव से मुस्कराया और स्वर में बटुता भरकर बोला—

“प्रगति वाकई हुई है। पहले लोग तलवार से लड़ते थे, अब तोपों, टैंकों और बमों से लड़ते हैं। हत्या और रक्तपात की कला जीवित है।”

“कभी उज्ज्वल पक्ष भी देख लिया करो या सिर्फ अंधेरे में भटकते रहना ही सीखा है।”

“उज्ज्वल पक्ष तुम बता दो। हम तो देख रहे हैं कि दुनिया पर युद्ध के बादल मडरा रहे हैं।”

“युद्ध के बादल मडरा रहे हैं, इसमें सन्देह नहीं।” नारायण ने दृष्टि प्रह्लाद के चेहरे पर गड़ा दी, “मगर हम इस युग की नहीं, रोमन साम्राज्य की बात कर रहे हैं। देखिये, ग्लेडी-एटर बनने का रिवाज बन्द हो गया, लेकिन खेल-तमाशे जारी रहे, जो हम ऐम्फी-थियेटर के बजाय ओपन-एयर-थियेटर, सर्कस और सिनेमा के रूप में देखते हैं। यह उन्ही खेलों का उन्नत रूप है।”

प्रह्लाद चौंक सा गया, जैसे नारायण ने ऐसे सत्य का उद्घाटन किया हो, जिसे वह देखते हुए भी न देख पाया हो। नारायण फिर बोला, “और देखिए, ऐम्फी-थियेटर के रूप में विशाल और भव्य इमारतें बनीं, निर्माण-कला की उन्नति हुई। ग्लेडी-एटरो की मूर्तिया बनाने का रिवाज पडा, तो मूर्ति-कला का विकास हुआ ”

“यों तो हरेक बात का कुछ न-कुछ लाभ होता है” प्रह्लाद ने बात काटी।

“लाभ होता है; लेकिन हम देखते नहीं।” नारायण बोला, “इसी कारण हमारा ज्ञान अधूरा है। हम इतिहास पढ़ते हैं पर उससे कुछ सीखते नहीं।”

प्रह्लाद चुप हो गया उसकी आँखों में देखने से जान पड़ता था कि जैसे उसने इतिहास की इस व्याख्या को स्वीकार कर लिया है। नारायण ने किताब खोली कि आगे पढ़े, लेकिन उसे दोबारा बन्द करते हुए कहा—
“इस सम्बन्ध में मैं तुम्हें एक घटना सुनाता हूँ, जो बहुत ही दिलचस्प और शिक्षाप्रद है। एक बार चालीस-पचास ग्लेडी-एटरो ने बगावत कर दी और वे पहाड़ों में जा छिपे। स्पार्टकस उनका सरदार था। वे गुलाम

उनके साथ आ मिले, जो अपने स्वामियों के अत्याचारों से तंग आकर भाग आये थे। पहाड़ी किसानों ने जब देखा कि बागियों की संख्या और शक्ति दिन-दिन बढ़ती जा रही है, तो वे भी उनका साथ देने लगे। वे सब मिलकर अपने दुश्मनों से इन्तकाम ले रहे थे। चारों ओर भय और आतंक छा गया। रोम का शासक वर्ग विद्रोहियों के नाम से घर-घर कांपने लगा। यह विद्रोह दो-चार दिन नहीं लगातार तीन साल तक जारी रहा। आखिर जब विद्रोहियों का नेता स्पार्टेक्स मारा गया, तो इस महान विद्रोह का भी अन्त हो गया।”

प्रह्लाद खुश था। उसे नेता के मर जाने और विद्रोह के यों समाप्त हो जाने की आशा नहीं थी। इसलिए कौतूहल और उत्सुकता में भरा नारायण की ओर देख रहा था, जैसे पूछ रहा हो, “और?” “और आगे दासों ने हर जगह बगावतों की और जाहिर है कि मनुष्य आदिकाल से शोषण और अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह करता आया है और जो विद्रोह एक बार शुरू हो जाता है, वह कभी समाप्त नहीं होता। मनुष्य विद्रोह की यह पताका उस समय तक फहराता रहेगा, जब तक कि दुनिया से सूट-खसोट और अत्याचार का अंत नहीं हो जाता।” नारायण ने उत्तर दिया।

“यह तो ठीक है कि मनुष्य अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह करता है” प्रह्लाद ने तनिक सोचकर कहा, “लेकिन एक बात मैं समझ नहीं पाया?”

“क्या?”

“यही कि अत्याचार भी मनुष्य करता है और विद्रोह भी मनुष्य ही करता है। अगर मनुष्य मनुष्य पर अत्याचार ही न करे, तो?”

“मनुष्य सोच-समझ कर अत्याचार नहीं करता।” नारायण बोला, “विशेष परिस्थिति किसी विशेष बात को रिवाज देती है। वह रिवाज स्थिति के अनुरूप होता है और मनुष्य उसे सहर्ष स्वीकार कर लेता है। लेकिन युग फिर बदलता है, उसके साथ मनुष्य बदलता है। अब बदले हुए युग में नई परिस्थिति, नए रिवाज का तकाजा करती है। लेकिन पुरानी स्थिति और पुराने रिवाज से कुछ लोगों का हित जुड़ जाता है, वे उसी व्यवस्था को कायम रखना चाहते हैं। लेकिन जो लोग नई स्थिति

ओर रिवाज मे अपनी मुक्ति देखते है वे विद्रोह करते हैं और यो सघर्ष का सूनपात होता है ।”

सूर्य ने कोण बदल लिया था । टहनियो से छनकर कुछ बिरणें प्रह्लाद के चेहरे पर भी पड रही थी और वह नारायण की बात ध्यान से सुन रहा था । वह चुप हुआ तो प्रह्लाद भी चुप रहा उसे कोई एतराज नही करना था । तनिक रुककर नारायण फिर बोला— टॉलस्टाय ने लिखा है कि प्रत्येक युग का इतिहास मनुष्य के भीतर विद्यमान रहता है, जिस प्रकार उसे अपना शरीर पूर्वजो से विरासत मे मिलता है उसी प्रकार सदियो की उन्नति भी उसे विरासत मे मिलती है ।’

‘लेकिन हमारे पूर्वजो ने तो कभी मानव रक्त नही बहाया वे तो सदा शांति और प्रेम से रहते थे ।’

‘क्या मतलब ? हमारे पूर्वज दुनिया से भिन्न थे ?’

‘जो हा भिन्न थे ।’ प्रह्लाद ने दृढ विश्वास से कहा ‘बाकी दुनिया ने पतन की अवस्था से उन्नति की और हम उन्नात से पतन की ओर आये हैं ।’

‘अच्छा मन-बहलावा है ।’ नारायण मुस्कराया ‘और मन बहलाने का यह लाभ होता है कि आदमी मूख बना रहे ।’

‘यह मन बहलावा नही, हकीकत है । ऐतिहासिक सत्य है । जब ओर देशो में बहुशत और बर्बरता का युग था, हमारे देश मे सतयुग था ।’

‘सतयुग नारायण फिर मुस्कराया और इस बार उसकी मुस्कराहट मे व्यग पहले से बहुत तोखा था । ‘किस जमाने की बात कह रहे हो तुम ।’

‘यही रामायण से पहले हरिश्चन्द्र के युग की । यह हमारे इतिहास का सुनहला युग था । छल और कपट का नाम तक नही था । लोग जो बात एक बार मुह से कह देते थे पूरी करते थे ।’ प्रह्लाद भावुकता मे बहा जा रहा था और अपनी बात के समर्थन मे उसे अभी और भी बहुत कुछ कहना था लेकिन नारायण बीच ही मे बोल उठा—

‘सुन लिया, अब बस भी करो । मान लिया कि जब सतयुग था तो

यह सभी कुछ होगा। लेकिन जिसे तुम सतयुग कहते हो, वही हमारे यहां दामता का युग था।”

“दासता का युग।” प्रह्लाद चिल्लाया, “हमारे देश भारतवर्ष में दासता का युग कभी रहा ही नहीं।”

“रहा तो है, लेकिन तुम उसे सतयुग कहते हो और उस सतयुग में मनुष्य बाजार में खड़ा होकर—कौड़ियों के भाव बिकता था।”

“तुम यह कहना चाहते हो कि राजा हरिश्चन्द्र और उनकी रानी तारा सरे बाजार बिके थे, इसलिए वह दासता का युग था?”

“जी हाँ, नारायण बोला, “जब राजा और रानी बिक सकते हैं तो सोचो कि जनसाधारण क्यों न बिकते होंगे? तुम कहोगे कि उन्होंने ऋषि को वचन दिया था, लेकिन क्या कोई वचन देने के बावजूद बिक सकता है, अगर बेचने और खरीदने का रिवाज न हो?”

प्रह्लाद से कोई जवाब न बन पड़ा। वह मोचने लगा।

नारायण फिर बोला—“तुम्हें एक लतीफा सुनाऊँ। ताया चेतसिंह को तो तुम जानते हो। उसने जब पहली बार हरिश्चन्द्र की कहानी पढ़ी तो कहने लगा कि यह अच्छा सतयुग था रानी तारा श्मशान का कर चुकाने के लिए दो पैसे को भटकती रही। इसका अर्थ यह हुआ कि या तो उस समय लोगों के पास पैसे न थे या फिर उनके मन में दया न थी।”

प्रह्लाद हंस पड़ा। नारायण भी हंसने लगा।

उसी समय सीढ़ियों से किसी के ऊपर चढ़ने की चाप सुनाई दी। वे दोनों उधर आकर्षित हुए। दूसरे ही क्षण मदन आया। उसने एक उचटती-सी नजर दोनों पर डाली और “क्या हाल है?” कहकर सीधा कमरे के भीतर चला गया। इधर-उधर झाँका, जब कोई दिखाई न दिया तो पलटकर नारायण से पूछा—

“कामरेड अशोक कहां हैं? मुझे उनसे प्राईवेट बात करनी है।”

“बाहर गये हैं दो-चार दिन में लौटेंगे।” नारायण ने उत्तर दिया।

“अच्छा जब आयें, तब सही।” मदन ने कन्धे हिलाते हुए भारी स्वर में कहा, “बातें बहुत हैं और सिर्फ उन्हीं से करने की हैं।”

उसने एक तीखी निगाह नारायण पर डाली, वह कुछ कहना चाहता था, लेकिन कहत कहते रुक गया और सीटी बजाकर पेड़ों की ओर देखने लगा। विक्षिप्त और खिन्न एक चक्कर बरामदे का लगाया और फिर उनके निकट आकर खड़ा हो गया। नारायण की ओर दखा, देखता रहा, चाखिर बोला—

‘तुमने यह शकल क्या बना रखी है? एकदम रीछ दिखाई पड़ते हो। बाल रखे हैं तो उन्हें सवार भी लिया करो और कपड़े तनिक ढग से पहना करो। दफतर में कोई आये तो अच्छा असर पड़े और पता चले कि इस पार्टी में भी योग्य व्यक्ति काम करते हैं।’

मदन ने अपने भारी कर्घे एक बार फिर हिलाये। उसने चंस्टर पहन रखा था, गुदगुदा चेहरा कानों तक लाल था, बाल कुछ इस ढग से बने हुए थे कि माथे पर कुण्डलिया लहरा रही थी और उनमें से चमली के तेल की सुगन्ध आ रही थी।

नारायण ने एक भेद भरी दृष्टि उस पर डाली और चुप हो रहा।

“यह क्या पढ़ रहे हो?” मदन ने पुस्तक की ओर संकेत किया।

“पंडित जवाहरलाल नेहरू का विश्व-इतिहास।”

“जरूर पढ़ो। बहुत अच्छी किताब है। पहले पहल जब यह किताब छपी तो मुनहरी जिल्द थी और 75६० कीमत। धोरुप में हाथो हाथ बित्री। मैंने इसे दम माल हुए तब पढ़ा था।”

मदन की आंखें आत्मगौरव से चमक उठी और छाती उभर आई।

“माफ कीजिएगा इसकी कीमत 75) तो क्या, 15) भी कभी नहीं थी।”

“मैं हिन्दुस्तान की नहीं योक्षप की बात कह रहा हूँ। वहा के लोग बहुत धनी हैं।’

“आप योक्षप भी हो आये हैं?”

“नहीं हो आये तो क्या? पढ़े लिखे होने का मतलब ही यह है कि दुनिया भर की बातों का पना घर चंठे चल आये।”

“और कोई पुस्तक लिखी भी न गई हो, उसे पहले ही पढ़ लिया जाये !”

“क्या मतलब ?”

“मतलब यही कि अब सन् 1937 है। पंडित जी ने यह पुस्तक सन् 30-32 की जेल में लिखी थी और आपने इसे दस साल पहले पढ़ लिया था।”

“वस यही तुम्हारी जानकारी है।” मदन बोला, “उन्होंने पुस्तक नहीं लिखी थी, जेल से अपनी बेटी इन्दिरा के नाम पत्र लिखे थे, बाद में उन्हीं पत्रों को पुस्तक के रूप में छपवा दिया।”

“नहीं जनाव, पत्रों की पुस्तक नहीं छपवाई, बल्कि पुस्तक लिखी थी और स्टार्टल पत्रों का था।”

“मैं भी तो यही बात कह रहा हूँ।” मदन तुनककर बोला, “मैंने यह कब कहा कि उन्होंने पत्र लिखकर डाक में भेजे थे। वही बँठे लिखते रहे। शगल का शगल बना रहा और जेल से बाहर आकर पुस्तक छपवा दी।” उमने पहली बार प्रह्लाद की ओर देखा, लेकिन उस ओर से भी बात की दाद न पाकर आप ही मुस्कराया और फिर बोला, “तुम किसी बात को समझते तो हो नहीं, धर्म एतराज करते हो। मैंने एम० ए० तक शिक्षा पाई है और इस बीच में इतना पढ़ा है कि कोई दूसरा भारतीय नौजवान क्या पढ़ेगा। बकील, इतिहास और अर्थशास्त्र की कौन-सी प्रमाणिक पुस्तक है जिसका मैंने अध्ययन नहीं किया है। मैं जानता हूँ कि मनुष्य परिश्रम से बनता है और मैंने कड़ा परिश्रम किया है।” तनिक रुककर फिर कहा, “मैं यह भी जानता हूँ कि जब तक शिक्षा पूर्ण न हो, मनुष्य जीवन-सघर्ष में सफल नहीं हो सकता.....”

सामने पेठ पर एक कौआ जोर से ‘कांव-कांव’ कर उठा। नारायण और प्रह्लाद दोनों हम पढ़े। मदन हतप्रभ-सा इधर-उधर देखने लगा और चसते हुए बोला—

“अच्छा पढ़ो, पढ़ो। पढ़ना बहुत अच्छी बात है।”

“ग्लेट-एटर” प्रह्लाद ने जोर से कहा। मदन सीढ़िया उतर रहा था और उसके भारी कदम टप-टप पड़ रहे थे।

निमति

गनी के सात आठ वष के राजनीतिक जीवन का अधिकांश भाग जेलों में बीता था। वह इस बीच में दो महीने से अधिक कभी जेल से बाहर नहीं रहा। कैद की अवधि अगरचे छ महीने, अथवा इससे भी थोड़ी होती, मगर जब ज़रा भौका मिलता, वह भूट गिरफ्तार हो जाता था। अब जबकि पार्टी ने उसे अभिनन्दन-पत्र से सम्मानित किया था, वह नवीं बार एक वर्ष का कठोर दंड मुगत कर रिहा हुआ था। वह दीवारा पर एक सुख पोस्टर चस्पा करते हुए गिरफ्तार हुआ था।

गनी के कब्जे से पोस्टर काफी तादाद में बरामद हुए थे। उस डेढ़-दो महीने हिरासत में रखा गया, अदालत से दो बार रिमांड लिया गया, लेकिन पुलिस यह पूछने में सफल न हो सकी कि उस ये पोस्टर कहाँ से मिले, इन्हें कौन लिखता, छापता और बांटता है। पुलिस ने शाम, दाम, दड हर प्रकार की नीति अपनाई, पर गनी उस स मम न हुआ, जैसे उसमें और पुलिस में द्वार जीत की हाड लगी हो। अगर वह हठ का पक्का और सम्म जान था तो पुलिस को भी पत्थर में से पानी तिघोड लेन का दावा था। अगर गनी को पार्टी का नाम और सम्मान प्यारा था, तो पुलिस को भी अग्नेज आकाशो का नमक हलाल करना था। पोस्टरों के अतिरिक्त वह और भी बहुत-सी बातें मालूम करना चाहनी थी, इसलिए पूछ-ताछ करने वाले एक अफसर ने पैतरा बदलकर कहा—

“गनी बडा बहादुर है, हमने साग सिर पटका, मगर उसन एक नी

बात न बताई।”

“तभी तो पार्टी इतना विश्वास करती है उसका; कौनसी ऐसी बात है जो उसे मालूम न हो,” दूसरा बोला।

“जब यह साहस देखता हूँ, तो जी में आती है कि सब कुछ छोड़-छाड़कर इन्हीं के साथ काम करने लगू।”

“करना पड़ेगा साहब। हम क्या आजादी नहीं चाहते। गनी, तिलक, लेखराम बला के आदमी हैं ये लोग।”

“वाकई साहब, इन लोगों पर देश जितना भी गर्व करे थोड़ा है। तिलक को लाख ढूँढा, पर कहीं पता न चला।” तनिक रुककर “मेरा ख्याल है कि पार्टी के लोगों को भी उनके बारे में कुछ मालूम न होगा।”

“नहीं साहब, खास-खास मेम्बरों से कोई बात पोशीदा नहीं रखी जाती। मैं समझता हूँ, गनी को सब मालूम है।”

“मालूम हों तो बताये। हम यह बर्दा उतार कर अभी पार्टी में भर्ती हो जायेंगे।”

“इतनी सी बात बताने में क्या हर्ज है। हा कामरेड, बताओ वह कहाँ रहता है?”

“जहन्नुम में।”

गनी ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया। पुलिस के दानों अफसर एक दूसरे का मुह ताकते रह गये, जैसे आपस में मशविरा कर रहे हों कि अगर तिलक को वाकई गिरफ्तार करना है, तो बताओ वहाँ कौन जाएगा।

पुलिस बड़ी मुस्तैदी से तिलक की खोज कर रही थी। उसकी गिरफ्तारी के लिये बहुत बड़ा इनाम घोषित किया गया था; मगर वह हाथ नहीं लग रहा था। पार्टी का निर्णय यह था कि वह गिरफ्तार होने के बजाये रूपोश होकर रहे और काम करे। वह अब देहात में रहता था और किसानों का संगठन करता था। तिलक और लेखराम अशोक के पुराने साथी थे और आतकवादी दल के सक्रिय सदस्य। साजिश केत में गिरफ्तार होकर जेल गये थे। वहाँ पढ़ने और सोचने का अवसर मिला। अशोक की तरह उनका दृष्टिकोण भी बदल गया। रिहा होकर फिर इकट्ठे काम

करने लगे। छ महीने हुए लेखराम के कमरे की तलाशी हुई और उसे एक पिस्तौल बरामद हुई। लेखराम का कहना था कि पुलिस ने खुद यह पिस्तौल उसके कमरे में रखवाया है ताकि भूटा मुकदमा घनाकर उसे जेल भिजवाया जाये। लेकिन अदालत ने उसके बजाये पुलिस के घयान को सच्चा समझा और उसे शस्त्र मनाही कानून के अन्तर्गत दो साल कैद की सजा देकर जेल भेज दिया।

पार्टी के सगठन की अब सारी जिम्मेदारी असोक के कंधों पर आ पड़ी थी। उसे देखना होता था कि कौन व्यक्ति किस काम क योग्य है, किस महाज पर क्या काम हा रहा है और कहा कौन सी त्रुटि है।

×

×

×

दिसम्बर का महीना, बारिश होने से और भी ठण्डा हो गया था। असोक सुबह सबेरे कमरे से बाहर निकला और होठों से हल्की सी सीटी बजाना हुआ सड़क पर चल दिया। इमारत के बाहरे फूस की एक झोपड़ी बनी हुई थी, जिसमें खुफिया पुलिस के चन्द सिपाही बंठे आग ताप रहे थे। उनके हाथ ठिठरे हुए थे और शरीर काप रहे थे, जैसे भीतर की सारी गर्मी समाप्त हो गई और जाड़े ने खून को जमा दिया हो। उन्होंने असोक को देखा और आँखों ही आँखों में सकेत किया। एक सिपाही अनमना-सा उठा और बड़बड़ाता हुआ असोक के पीछे पीछे चल पडा।

सिपाही अनमना-ना चल रहा था और असोक के अलावा और किसी चीज की भार उसका ध्यान नहीं था। एक कुत्ता 'चाब-चाब' करता हुआ दाईं ओर से निकला और सड़क पर पहुँचते ही सिपाही से टकरा गया। उसका पादजामा रास्ते से भर गया क्योंकि कुत्ता रात भर घोबी की भट्टी में सोता रहा था। सुबह जब घोबी भट्टी गर्म करने उठा, तो ठण्डा मारकर उसे भगा दिया। असोक और सिपाही दोनों ने एक दूसरे की ओर घूरकर देखा।

असोक दोराहे पर पहुँचकर तनिक ठिठक गया, शायद वह सोच रहा था कि दाईं ओर जाय या बाईं ओर, क्योंकि दोनों ही रास्तों से वह अपनी

निर्दिष्ट मंजिल पर पहुंच सकता था। दूसरे ही क्षण वह दाईं ओर धूम गया और लम्बे-लम्बे ढग भरता हुआ ठंडी सड़क तक चला आया। यहाँ पहुंच कर उसका कदम सहसा फिर मुस्त पड़ गया और आंखों में असाधारण चमक उत्पन्न हुई। अतीत की एक जीवनप्रद स्मृति उसके अस्तित्व को गुदगुदा रही थी और सामने डी० ए० बी० कालेज था, जहाँ उसने शिक्षा प्राप्त की थी और सामने लोहे का वह जंगला था, जहाँ खड़े होकर उसके साथियों ने पुलिस अफसर सांडर्स को गोली का निशाना बनाकर अपने राष्ट्रीय अपमान का बदला लिया था। अशोक के कदम अब उस जगह पड़ रहे थे, जहाँ अंग्रेज अफसर का खून बहा था। वह दफतर से निकला ही था और सोचता होगा कि मोटर साईकिल पर सवार होकर पांच मिनट में घर जा पहुंचूंगा लेकिन साईकिल पर सवार होने से पहले ही पिस्तौल की एक गोली ने उसके सुखद स्वप्न को समाप्त कर दिया। वह नहीं रहा, लेकिन दफतर बदस्तूर कायम था। उसके रिक्त स्थान पर दूसरा अफसर आ गया था। सारा काम उसी ढर्रे पर चल रहा था।

स्निग्ध कल्पना ने अशोक के खून को गर्मा दिया और वह फिर तेज-तेज चलने लगा। उसे अपने साथियों पर गर्व था, उनकी कुर्बानियों पर गर्व था और वह देश की महान जनता पर गर्व कर रहा था, जो इन शहीदों की पुण्य-स्मृति को हृदयंगन किए हुए थी, जो स्वाधीनता संग्राम के लिए संगठित हो रही थी। एक लम्बी तबील, शानदार जद्दोजहद एक बहुत बड़ा परिवर्तन, महान क्रान्ति उसकी धमनियों में मचल उठी और वह भावावेश में बहता हुआ-सा आगे बढ़ने लगा। तेज-तेज, प्रसन्न और मन-मगन।

पुलिस का सिपाही भी थोड़े फासले पर उसके पीछे-पीछे चल रहा था। उसे न कहीं जाना अभिप्रीत था और न कोई मंजिल सामने थी। वह निरुद्देश्य एक अद्देश्य शक्ति से हाँका हुआ-सा—धकेला जाता हुआ-गा चल रहा था। वह गर्दों से मुकड़ रहा था, ठिठुर रहा था और चल रहा था। भित्तों धिवश यह शक्ति! मदं हवा से उसकी नाक बजने लगी और वह 'धूँ, सूँ' हवा को सूँघने लगा, जैसे सूँघकर मालूम कर लेना चाहता हो

कि अशोक को अभी कितनी दूर और जाना है।

जब अशोक ने सहसा सड़क छोड़ कर ग्वालमंडी की एक गली में प्रवेश किया तो उसने खुल की सास ली। अशोक एक मकान के करीब जाकर रुका, जिसका दरवाजा हाथ लगाते ही यों खुल गया जैसे उसने 'खुल सिम-सिम' का मन्त्र पढ़ा हो। पहले कमरे को पार करके वह दूसरे कमरे में चला गया। वहाँ मद्धम सी एक लालटेन जल रही थी और उसके प्रकाश में एक देहाती बूढ़ा आदमी रजाई में लिपटा हुआ पढ़ रहा था—

“बई, इ, एस (yes), येस माने हा”

‘ताया बई नहीं बाई कहो।’ अशोक ने कमरे में प्रवेश किया।

“आयो जी, कामरेड ! आयो जी, कामरेड !” ताया ने पुस्तक अलग रखकर अशोक का स्वागत किया और उसे अपने समीप चारपाई पर बिठा लिया।

अशोक ने इधर-उधर निगाह दौड़ाई और बैठते हुए पूछा—

‘बिजली क्यों नहीं जलाई ?’

“रात खराब हो गई।”

‘तारासिंह कहा है ?’

“यही कहो घूमने या चाय के लिए दूध लेने गया होगा।”

इस मकान में बिजान सभा का दफ्तर स्थित था। तारासिंह आफिस सैकटरी था। ताया भी उसके साथ चलता था। नाम चेतसिंह था, लेकिन सभी उसे ताया कहते थे और अधिक इस्तेमाल से यही अब जगदा नाम पड़ गया था। कद ठिगना और शरीर सुगठित, उम्र साठ साल से कम न होगी लेकिन स्वास्थ्य अच्छा था। आँखों में कुछ भी दोष नहीं था जल्दतर पड़े तो निशाना माघ सकता था। दाढ़ी और मूँछों के सफेद बालों में कहीं-कहीं बाले बाल भी दिखाई देते थे। परिचितों में जब बोलता तो बातों में व्यगमय हास्य और आँखों में मनोहर चमक रहती। अपरिचितों में बहुधा चुप रहता था। देखने में सरल, भोला भाला और कम समझ दिखाई देता। लगभग बीस वर्ष मलय में पुलिन की नीकरी भी थी। उसका इषलीतापेटा दादी के आश्रय में दिन बिता रहा था। बाप-दादा की जो जमीन थी, वह

गम्बन्धियों ने हथिया ली। उमने जमीन वापिस लेने की बहुत कोशिश की। वरगो अदालतों की साक छानी और रुपया खर्च किया, मगर जमीन वापिस न मिली। मलय की सारी कमाई इसी दौड़-धूप में नष्ट हो गई। जमीन तो नहीं मिली लेकिन वर्तमान व्यवस्था में दृढ़ अविश्वास पत्ले रह गया। वह उसे बदलने के लिए क्रांतिकारी आन्दोलन में शामिल हो गया।

बेटे की शिक्षा अधूरी रह गई थी। वह भी किसान आंदोलन में काम करता था। उसकी अखड़ निष्ठा, लम्बा और स्वस्थ शरीर देखकर ताया की आंखें प्रमत्नता से चमक उठती और वह सोचा करता कि जब यह व्यवस्था बदल जायगी तो उसका बेटा जन-सेना का धीर सिपाही बनेगा। बेटे की पढ़ने में अधिक रुचि नहीं थी, उसकी इस कमी को ताया खुद पूरी कर देना चाहता था और गत एक वर्ष से अंग्रेजी पढ़ रहा था। लेकिन अभी तक नो (no) को नौ (9) कहता था। उच्चारण को जितना सुधारने का यत्न करता था, उनना ही वह बिगड़ता जा रहा था।

“ताया ! क्यों मुफ्त में सिर खपाते हो। जो जवान लकड़ी बन चुकी है उस पर अब अंग्रेजी नहीं चढ़ेगी।” तारासिंह ने एक दिन परिहास में कहा।

मगर ताया यों हिम्मत हारने वाला व्यक्ति नहीं था। दूसरे लाख हंसा करें, वह अंग्रेजी सीखने का निश्चय कर चुका था और सीख कर दम लेगा। उसकी अभिलाषा थी कि मैं अंग्रेजी सीखूं और इस भाषा में कम्प्युनिज्म की पुस्तकें पढ़ूं।

अशोक ने एक कागज जेब से निकाला, नजर उस पर डाली फिर उसे फाड़ते हुए ताया से कहा—“मैं आज ही बाहर जा रहा हूँ। बैठने के लिये समय नहीं है। तारासिंह से कहना कि वह मनहेडा की किसान कांफ्रेंस में पहुंच जाये, कोई आवश्यक कागज-पत्र हो तो साथ लेता आये।”

ताया दीवार से टेक लगाये बैठा था। उसके सिर पर एक खिड़की थी, अशोक ने उसे खोला और कागज के पुर्जे बाहर फेंककर खिड़की दोबारा बन्द कर दी। वह फिर बोला—“एक बात और सुनो ! पार्टी में

एक नया रंगरूट भर्ती होना चाहता है, शायद तुम उसे जानते हो। दरबार के नीचे किराये के जो छोटे-छोटे कमरे हैं, वहाँ डेढ़-दो साल से रहता है। कभी क्विनी सपासी सरगर्मी में हिस्सा नहीं लिया, राजनीति की बाग पढ़ने समझने में भी इसकी रुचि नहीं। जाने क्रांति का यह प्रेम अब अचानक उससे मन में कैसे पैदा हुआ ?”

“वही तो नहीं जिसके मुँह पर चेचक के दाग हैं और नाथ पपटी है।’ ताया ने तनिक सोचकर कर कहा।

“बिल्कुल ठीक !” अशोक ने मर्मर्यन किया।

‘और उसका नाम” ताया ने दाढ़ी खोजलाते हुए सोचना शुरू किया, “याद नहीं आता, मन में घूम रहा है। है कुछ भिखारी राम सा।”

अशोक हसा और ताया का बन्धा थपथपाते हुए बोला—‘खैराती-राम !’

हा, हा। खैरातीराम !” ताया को भी याद हो गया—“खैरातीराम हुआ या भिखारी राम एक ही बात है। मैं उसे जानता हूँ।’

वस फिर ध्यान रखना।”

अशोक जब मकान से बाहर निकला तो सुफिया सिपाही वागज के पुर्जे बटोरने में व्यस्त था। ताया अशोक को छोड़ने दरवाजे तक साथ आया। जब अशोक ने विदा मागने के लिए हाथ उठाया, तो यह बोला—‘दो मिनट रुको। बेचारे को वागज तो चुन लेने दो।’

सिपाही का ध्यान उनकी ओर आवर्षित हुआ। उसने वागज के पुर्जे भट-पट जेब में टाल लिये और वह खिन्न भाव से मुस्कराया।

पड़ोस के मकान से एक स्त्री बाहर निकली और बहुत गा बूँडा बरफट गली में डेरी करके लौट गई। एक मुर्गा जो गली में घूम रहा था, इस डेरी को पत्रा और चोंच से कुरेद कुरेद कर सुराब तलाश करने लगा।

टी-पार्टी

म्युनिसिपल ग्राउंड में टी-पार्टी का प्रबन्ध किया गया था। नगर कांग्रेस कमेटी के सेक्रेटरी लाला देसराज दरवाजे पर खड़े मेहमानों का स्वागत कर रहे थे। जब कोई बड़ा आदमी आता तो वे हाथ कुहनियों तक जोड़कर दूर ही से नमस्ते करते और उसके साथ-साथ चलकर तकल्लुफ से सजाई गई बड़ी मेज पर बैठा आते। और जब कोई सामान्य व्यक्ति अथवा वालंटियर आता तो बड़ी मेज के इधर-उधर बैठने का संकेत कर देता। मेजों और कुर्सियों की कमी नहीं थी, बहुत बड़े पैमाने पर व्यवस्था की गई थी।

पंडित बदरीनाथ ने असेम्बली की सदस्यता से इस्तीफा दिया था। वे सदस्य तो निर्वाचित हो गए थे; लेकिन हर वक्त परेशान रहते थे। कांग्रेस के रचनात्मक-कार्य के लिए उन्हें तनिक भी अवकाश नहीं मिलता था, वस पार्लमेटरी बखेड़ों में उलझ कर रह गए। वे इस प्रान्त में सबसे बड़े गांधी-भक्त थे, उन्होंने देश-सेवा के लिए जीवन अर्पित कर रखा था। अगर वे साधारण कारोवारी आदमी बनकर सांसारिक घन्धों में उलझ जायें और रचनात्मक-कार्य की ओर कोई ध्यान न दें, तो कांग्रेस का क्या बनेगा? देश का क्या बनेगा? यह प्रश्न उनकी आत्मा को प्रतिक्षण कोसता रहता था। जब अंतर्बेदना असह्य हो उठी, तो उन्होंने गांधी जी को एकसप्रेत तार भेजा और पूछा कि मैं असेम्बली की सदस्यता से त्यागपत्र दे कर पूरा समय रचनात्मक कार्य में लगाना चाहता हूँ, आपकी क्या राय है ?

जब गांधी जी का उत्तर आया तो उससे राय निकाली गई। उन्होंने लिखा था—'मैं कुछ नहीं कह सकता, हर एक आदमी अपनी बाबत आप बेहतर समझ सकता है। हम अन्तरात्मा की बात सुननी चाहिए, जो अन्तरात्मा कहती है, वही दुरुस्त है। मैं आपका मार्ग नहीं रोकूंगा।' पंडित बदरीनाथ की अतरात्मा वही कहती थी, जो गांधी जी ने लिखा था और गांधी जी न ठीक वही लिखा था, जो बदरीनाथ की अतरात्मा कहती थी। अतरात्मा की—अतःकरण की बात कभी टाली नहीं जा सकती, अतएव उन्होंने त्याग पत्र दे दिया।

सेठ रतनचन्द्र ने पंडित बदरीनाथ के इस महान त्याग के उपलक्ष में दो-पार्टी का आयोजन किया था। कांग्रेसियों को तो जाना ही था, उसके अतिरिक्त ब्रेको और इन्डोरेंट्स कम्पनियों के डायरेक्टर, पत्रकार, अहमदाबादी, अकाली और हिन्दूसभाई नेता और शहर भर के भद्र जनो को निमंत्रित किया गया था। शहर में हर रोज पार्टीया होती रहती हैं, लेकिन उनमें सिर्फ खाना पीना ही अभिप्रीत होता है। उनका और कोई उद्देश्य नहीं होता। इस पार्टी में भी खाने-पीने की व्यवस्था अत्युत्तम थी। फल, मिठाई, चाय और आईसक्रीम किसी चीज की कमी नहीं थी। पर यह सब बातें गौण थी, इस समारोह का एकमात्र उद्देश्य कांग्रेस के महान् आदर्शों का प्रचार था। पंडित बदरीनाथ ने इतना महान् त्याग किया था इसकी जितनी अधिक प्रशंसा हो उतनी थोड़ी। उनकी कर्तव्य निष्ठा, देश भक्ति और सत्य पर दृढ़ रहने की तत्परता दूसरों के लिए अनुकरणीय थी। स्वार्थ त्याग और कर्तव्य निष्ठा सिर्फ कांग्रेस तक ही सीमित क्यों रहे, यह सबके लिए अभीष्ट है और सब को साथ लेकर ही देश आगे बढ़ सकता है।

जनमाधारण कुछ पहले आ गए थे। नेता ठीक समय पर पधारे। मोटरो और तागो की भीड़ लग गई। लाला देसराज का काम असामान्य रूप से बढ़ गया। वे फिरकी की तरह घूम रहे थे और घूमन के साथ साथ जा बार-बार कुहनियों तक हाथ जोड़ने पड़ते थे, वह योग की एक कठिन और असाध्य क्रिया थी, पर वे बराबर किए जा रहे थे। विचित्र कौशल

था। अनुपम अभ्यास था !

सहसा सब की आंखें दरवाजे की ओर उठ गईं, स्वयं पंडित बदरीनाथ का शुभागमन हुआ था। सेठ रतनचन्द्र ने दौड़कर उन्हें बाहुपाश में भर लिया और बड़े तपाक से अपनी बगल में ला बिठाया। इसी समय मदन भी आया और लाला देसराज के मूकुटि-संकेतो की परवान करते हुए बड़ी मेज पर जा विराजमान हुआ। लाला जी को यह बात बहुत अखरी; लेकिन नाक भी चढ़ाकर रह गए। बड़ी मेज पर अब सिर्फ यही एक कुर्सी खाली थी, जो उन्होंने अपने लिए सुरक्षित रख छोड़ी थी।

पार्टी शुरू हुई। लाला देसराज बड़ी मेज की बगल में एक छोटी मेज पर आ बैठे। गोपाल उन्हें अपने करीब बिठाते हुए मुस्कराया। इस मुस्कराहट में प्रतिकार, व्यंग और विद्रूप का मिश्रण था। कारण, लाला जी ने गोपाल को बड़ी मेज पर बैठने से मना किया था। अब उन्हें अपने पास बैठते देखकर वह बहुत खुश था।

“लीडर साहब आ गये। खूब मजे रहेंगे। जो चीज मांगेंगे फौरन आयेगी। क्यों न लाला जी ?” गोपाल ने मुस्कराते हुए कहा।

“जरूर” लाला जी ने आते ही सेवा-कार्य सम्भाल लिया था। गोपाल के प्याले में चाय उंडेलते हुए बोले, “कहो, तो तुम्हारे आगे-पीछे चीजों की दीवार चुनवा दें।”

गोपाल ने होंठों पर हाथ रखकर हंसी को बिखरने से रोका। लाला देसराज ने सेवा-कार्य से त्रिपट कर चाय की एक चुस्की ली और फिर कहा— “पंडित जी बम पंडित जी हैं। ऐसे ही लोगो के महान त्याग ने कांग्रेस को महान् बनाया है।”

सब ने गर्दनें हिलाकर लाला जी की बात का समर्थन किया।

“लाला जी, आपने भी तो कुछ कम त्याग नहीं किया।” गोपाल ने गम्भीरता से कहा।

“हम से भी जो बन पड़ता है, कर रहे हैं। पर इन लोगों के पांव की घूस है, आप लोगों के दाम हैं।” लाला जी ने दिनम्रता प्रकट की।

“धब्धा लाला जी।” गोपाल के गामने बैठे एक नौजवान ने पेटरी

की ओर हाथ बढ़ाते हुए कहा—“आपने कांग्रेस में काम करना कब से शुरू किया था ?”

गोपाल ने कनखियो से नौजवान की ओर देखा, उसका नाम बूटासिंह था ।

“वैसे तो जब से होश सभाला, तभी से मन में देश-भक्ति की लगन थी ।” लाला जी ने अपने हाथ का क्रीम-रोलर वापस रख दिया और बात जारी रखी, “जब हम स्कूल में पढ़ते थे, लोकमान्य तिलक, दीनबन्धु सी० आर० दास और पंजाब केसरी लाला लाजपतराय प्रसिद्ध नेता थे । हम उनके नाम सुनते तो बड़े खुश होते, मन में उमंग उठती कि हम भी कुछ करें और उनके पद-चिह्नो पर चलें । अब सोचता हूँ तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचना हूँ कि यह पूर्वजन्म के सुसंस्कारों का प्रभाव और भगवान की कृपा ही थी कि मैं दूसरे नौजवानों की तरह व्यसनों में न पड़कर देश-सवा की ओर प्रेरित हुआ ।” लाला जी ने दार्शनिक भावुकता से कंधे हिलाये और आखें मिचका कर आगे कहा, “फिर देश के इतिहास में वह महान् समय आया जब एक पवित्र आत्मा—महात्मा गांधी का नाम हिमालय से रामकुमारी तक गूँज उठा । असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ । हमने भी कॉलेज छोड़ दिया । उस समय मैं एफ०ए० में पढ़ता था । सब विदेशी वस्त्र जलाकर खहर धारण किया । खहर भी यह नहीं, जो आप लोगो ने पहन रखा है । अब तो यह मशीनी कपड़े की तरह महीन और मुलायम है । उस समय हमने जो खहर पहना था, वह इतना मोटा और खुरदरा था कि उससे शरीर छिलता था ।”

लाला जी ने यो मुँह विचकाया, जैसे बात कहते वृष्ट हो रहा हो, जैसे उस समय खहर पहनने से शरीर पर जो खरानों आई थी, उनमें टीस उठी हो ।

“खहर पहनना देश-भक्ति तो उस समय थी ।” बूटासिंह ने लाला जी की ओर श्रद्धा और आदर से देखा ।

लाला जी की गर्दन गर्ब से एँठ गई; पर पहले से भी अधिक विनम्र स्वर में बोले—

“देशभक्ति अब भी कम नहीं। मेरा मतलब है कि उम समय खट्टर बहुत मोटा होता था और बहुत कम लोग पहनते थे। हमने वह खट्टर रंगा कर पहना था और साधुओं का मा भेस बनाकर कांग्रेस का प्रचार करने घर से निकल पड़े थे..”

“हिन्दुओं से कहीं ज्यादा फज़ मुसलमानों पर आयद होता है कि वह वतन की आजादी के लिए लड़ें।”

लाला जी की बात इस ऊँची आवाज़ में डूबकर रह गई। लोगों ने घूमकर देखा, बड़ी मेज़ पर ख्वाजा नूरुद्दीन देश-भक्ति का प्रचार कर रहे थे। वे एक संक्षिप्त व्यक्ति थे, पतला-डुबला शरीर, छोटा-मा सिर, गाल अन्दर को पिचके हुए, दमे के रोगी। कांग्रेस क्षेत्र में कौन व्यक्ति उनसे परिचित न होगा। वे न सिर्फ़ हर जलसे में भाषण देते थे, बल्कि एक स्थानीय अंग्रेज़ी अखबार में उनके बयान भी प्रायः छपते रहते थे, जिनमें मुसलमानों को कांग्रेस में भर्ती होने की सीख दी जाती थी। कांग्रेस के किसी भी समारोह को सफल बनाने के लिए उनकी उपस्थिति अनिवार्य समझी जाती थी और लोगों को उनकी उपस्थिति का ज्ञान आप ही आप हो जाता था क्योंकि अपनी बात कहने में वह फेफड़ों का सारा जोर लगा देते थे। उनका एक-एक शब्द फिज़ा में गूँज उठता था। इस पार्टी में उन्होंने शायद यह पहली बात कही थी और आस-पास की मेज़ों पर बैठे हुए सभी लोग उनकी ओर आकर्षित हो गये थे।

“ख्वाजा साहब ! कोई और चीज़ आये ?” लाला जी ने टोका।

“मेहरबानी है।” ख्वाजा साहब ने जल्दी से कहा और रसगुल्ला मुंह में रखकर हाथ फिर प्लेट की तरफ बढ़ाया। बात करने में जो हज़ं हुआ था, अब उसकी पूर्ति होने लगी।

“लाला जी, अब यह सीट किसे मिलेगी ?” गोपाल ने पूछा।

“अभी कुछ पता नहीं। पहले दरख्वास्तें ली जायेंगी, फिर बोर्ड फैसला करेगा।” लाला जी ने उत्तर दिया।

“बैसे आप किसे हकदार समझते हैं।”

“हकदार वही है, जिसने कांग्रेस के लिए अधिक त्याग किया है।”

लाला जी ने कहा और आखें झपका कर निष्काम भाव से इधर-उधर देखने लगे ।

‘ मैं समझता हूँ कि अब आप ही सबसे ज्यादा हकदार है । आपकी देश सेवा और आपका त्याग सबसे अधिक है ।’

‘ हम तो सेवक हैं ।’ लाला जी निर्लेप भाव से मुस्कराये, “कांग्रेस जिस सेवा के योग्य समझेगी, हम करने को तैयार हैं ।”

सहसा शोर मचा । परे किमी मेज पर कोई भगड़ा हो गया था । लोग उठ-उठकर उस ओर जाने लगे । गदमी रग और भरे शरीर का एक व्यक्ति, जिसने तग पायजामा और अचकन पहन रखी थी, क्रोध के मारे मुह से झाग उगल रहा था और उसकी पगड़ी जमीन पर जा गिरी थी ।

“कमीना कही का ।” दूसरी ओर एक अग्रज महिला विकरी खड़ी थी ।

वह औरत अपने पति के साथ अभी आई थी और आते ही उस मेज पर पहुँचकर अचकन वाले व्यक्ति से उलझ गई ।

“आप ही का नाम मिस्टर शिवदयाल है ?” महिला ने पूछा ।

“जी हाँ, फरमाइये ।” उत्तर मिला ।

“और मेरा नाम मेरी डोरया है ।”

शिवदयाल ने सुना और घट से एक चपत उसकी बाएँ गाल पर आ पड़ा । वह चौखला गया । सम्हलने से पहले ही एक और चपत दूसरे गाल पर पड़ चुका था ।

वह एक साप्ताहिक पत्र का सम्पादक था । पिछले दो महीने से मेरी डोरया के विरुद्ध लिख रहा था कि वह आवारा और दुराचारिणी है, फला-फला व्यक्तियों से उसका अनैतिक सम्बन्ध है । पति की आजीविका—का कोई साधन नहीं, औरत की कमाई पर गुजर-बसर करता है । जिन कुल्हाड़ों को अपने देश में कोई नहीं पूछना, वे हिन्दुस्तानियों के साथ भाग आती हैं ।”

मेरी डोरया ने आज भरी महफिल में इस अपमान का बदला लिया था । शिवदयाल से कुछ कहते-वरते न बन पड़ा । इज्जत धूल में मिल

गई थी। यह अपमान उस औरत ने किया था, जिसे वह दुराचारिणी, कुल्टा, आवारा और न जाने क्या कुछ लिखता रहा था। उसके तन में आग लगी हुई थी और क्रोध के मारे भाग उगल रहा था।

मेरी डोरथा और उसका पति जिन कदमों आये थे, उन्ही कदमों लौट गये। और लोग फिर अपनी-अपनी जगह पर जा बैठे।

खाने का प्रोग्राम खत्म हो चुका था। दूसरा असल प्रोग्राम शुरू हुआ। बहुत से लोगों ने पंडित बदरीनाथ की सेवाओं की शत-शत कोटि प्रशंसा की और इस महान् त्याग के लिये उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की। बोलने वालों में ख्वाजा नूरुद्दीन प्रमुख थे। उन्होंने पंडित जी को श्रद्धांजलि अर्पित करने के अलावा यह विश्वास भी दिलाया कि मुसलमान कांग्रेस के साथ हैं और रहेगे। मुस्लिम लीग रईसों, नवाबों और जागीरदारों की जमात है, सरकार की पिट्ठू है, उसे कोई नहीं पूछता।

अंत में महाशय बदरीनाथ ने सेठ रतनचन्द और दूसरे लोगों को घन्यवाद देते हुए कहा—“मैं किस योग्य हूँ। मैं तो गांधी का अकिंचित सेवक हूँ और ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि मैं इससे भी अधिक अंधविश्वास के साथ उनका भक्त बना रहूँ। मैंने यह इस्तीफा उन्ही के आदेश से दिया है...”

लाला देसराज ने ताली बजाई और फिर बहुत सी तालियों से वातावरण मुखरित हो उठा।

बुकरात

राजेन्द्र और पद्मा एक ही कालेज में पढते थे, लेकिन वे सहपाठी नहीं थे, राजेन्द्र दो साल आगे था। यो वे एक कालेज में पढते हुए भी शायद एक-दूसरे से अपरिचित रहते, राजनीतिक कार्य ही एक ऐसा माध्यम था, जो उन्हें एक-दूसरे के निकट ले आया। वे स्टूडेंट मूनियन के संगठन में सक्रिय भाग लेते, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था को बदलने के मनसूबे बाँटते और उज्ज्वल भविष्य के स्वप्न देखते थे। इस प्रकार एक ही वातावरण में रहते, एक ही ढंग से सोचते और एक ही प्रकार के स्वप्न देखते देखते उनमें घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित हो गया। लोग जिसे प्रेम कहते हैं, उसका बीजारोपण यही से होता है। जैसे जैसे विचारों में प्रीति आती है, बीज में अकुर फूटता है, कोपलें निकलती हैं—यह सुन्दर पौधा विकसित होता है और उसकी मृदुता और मनोहरता आँखों से भाँकने लगती है।

राजेन्द्र और पद्मा एक-दूसरे को प्रेम करते हैं। यह बात किसी से छिपी न रही।

शीला भी जानती थी और प्रसन्न थी। उसकी यह हार्दिक इच्छा थी कि उनका यह प्रेम फले-फूले। पिता ने अपने पत्र में लिखा था कि पद्मा को हर तरह की स्वच्छन्दता और स्वतन्त्रता प्राप्त हो। वह पढ़ लिख कर सियानी हो और अपना घर आप तलाश करे। स्वाभाविक बात है कि मनुष्य जब अपनी बुद्धि के अनुसार निर्णय करता है तो उसके परिणाम से

हर तरह सन्तुष्ट रहता है, किसी भी कठिन परिस्थिति में उसके माथे पर बल नहीं पड़ता। प्रचलित विवाह-प्रथा समय के अनुकूल नहीं थी। उससे विवाह का उद्देश्य पति-पत्नी का विकास पूरा नहीं होता था।

पिता ने जो कुछ लिखा था, शीला ने उससे कहीं अधिक अपने अनुभव से सीखा था। और अनुभूति सार्थक सत्य है, उसे कोई झुठला नहीं सकता। प्रकाश का उदाहरण उसके सम्मुख था। एक दिन भी ब्याह का सुख नहीं देखा, ब्याही जाने के बावजूद वह कुंवारी थी। अगर पद्मा और राजेन्द्र एक-दूसरे को प्यार करते हैं, तो शीला को कोई आपत्ति नहीं थी, वह प्रसन्न थी। पद्मा को देखकर राजेन्द्र का चित्र आप ही आप उसके कल्पना-पट पर उभर आता, और वे उन्हें दूर—बहुत दूर, एक सुन्दर उपत्य में फूलों से लदे-फुदे मुस्कराते हुए देखती। वह बँठी सोचती रहती, यह चित्र और यह उपत्य निकट आ जाती और वह उल्लास में भर उठती।

उसने अपने ब्याह की ऐसी ही कल्पना की थी—ऐसा ही चित्र बनाया था। उसने एक ऐसे वर की कामना की थी, जो देश-भक्त और वीर हो और अंग्रेज से भाई का बदला लेने में उसका सहयोगी बन सके।

जब कही जाना होता राजेन्द्र और पद्मा साथ-साथ जाते। अगर किसी कारणवश पद्मा कभी अकेली आती, तो नारायण भट पूछता—

“मुनाओ पद्मा, राजेन्द्र को कहां छोड़ आईं?”

पद्मा एक बार लजाई पर धीरे-धीरे लजाने के बजाय मुस्कराने लगी। अब वह नारायण के स्वभाव में भली-भांति परिचित हो चुकी थी। उसका जीवन हमउम्र सखियों में गुजरा था, मजाक करना और सहना उसकी आदत बन गई थी। फिर जब शीला के साथ घर पर रहने लगी तो और भी खुला और स्वच्छंद वातावरण मिला। कालेज में वह लड़कों के साथ पढ़ती और उनके साथ राजनीतिक कार्यों में भाग लेती थी। लड़कियों की तरह लड़के भी जीवन-संगी और हमराही थे। घरों में बन्द अलग-अलग रहने वाली लड़कियों को लड़कों से बात करने में जो संकोच होता है, वह उसे नहीं था। और नारायण तो एक मुंह-बोली सखी के सद्स उसके बहुत

निकट था। दोनों ने हसी मजाक और आत्मीयता थी।

“पद्मा ! यह बताओ कि इतने लडको मे तुम्हें राजेंद्र ही क्यों पसंद आया ?” एक दिन नारायण ने पूछा।

‘ और क्या तुम्हें पसन्द करती ?” पद्मा ने आखें तरेर कर उत्तर दिया।

“कहने का मतलब तो यही था।”

“कभी आईने मे शकल भी देखी है ?”

पद्मा हसने लगी और नारायण भी हस पडा।

‘ शकल की पच तो तुमने योही लगादी। राजेंद्र मे कोई और गुण है जो शायद मुझ मे नही और तुम मुझे इसलिए बताना नही चाहती कि कहीं वह गुण मैं अपने अन्दर पैदा न कर लू।”

“कहे देती हू।” पद्मा चंचल हो उठी, “लाख गुण पैदा कर लो, पर मेरी ओर से मुह धो रखो।”

बडे दिनों की छुट्टिया थी। महिला कांग्रेस के सिलसिले मे शीला दिल्ली गई थी। पद्मा को भी साथ जाना था, लेकिन जुकाम और ड्वर आ जाने के कारण न जा सकी। शीला को लेडी वालटीयरो के संगठन-कार्य से दिल्ली के अतिरिक्त दो चार जगह और भी जाना था, इसलिए छुट्टिया खत्म होने से पहले लौटने की सम्भावना नही थी। पद्मा ने अपनी एक सखी उर्मिला को पास बुला लिया था। दोनों छत पर बेंठी घूप सेंक रही थी कि नीचे दस्तक हुई।

“कामरेड पद्मा !”

पद्मा ने आवाज पहचान ली। वह दौडकर नीचे उतरी और किबाड खोलकर नारायण को ऊपर ले गई। उर्मिला ने नमस्कार कर उसका अभिवादन किया।

“अच्छा तुम भी यही हो, सेहत तो ठीक है ना ?” नारायण ने पूछा।

“मैं तो ठीक हू। पद्मा को तीन-चार दिन से जुकाम था, तुमने खबर तक नही ली।”

“मालूम ही नही हुआ, खबर क्या लेता। और फिर जुकाम भी कोई

बीमारी है।" नारायण पद्मा की ओर देखकर मुस्कराया, वह भी मुस्कराई और नारायण ने फिर उमिला की ओर पलट कर पूछा—

"तुफैल और मक्खनसिंह कैसे हैं?"

"अच्छे हैं।"

उमिला का रंग काला, आँखें छोटी-छोटी और नाक चपटी थी, होंठों की कोमलता और उन पर यदा-कदा प्रकट होने वाली मुस्कान मुखाकृति को मनोहर और आकर्षक बनाती थी। वह पार्टी के गुप्त छापेखाने में, जहाँ क्रांतिकारी साहित्य छपता था, काम करती थी। और वह यह काम इतनी लगन से करती थी कि छापेखाने से बाहर दुनिया में क्या हो रहा है इससे कोई दिलचस्पी नहीं थी। एक बार कुछ आवश्यक सामग्री खरीदने के लिए पार्टी के पास पैसा नहीं था, उसने अपने सब आभूषण उतार कर दे दिये थे, अब सिर्फ सादगी ही उसका गहना थी।

उसके माता-पिता हिन्दुस्तानी ईसाई थे और दक्षिणी भारत के रहने वाले थे। अंग्रेजी राज्य में ईसाई मत में परिणत होने वालों को सरकारी नौकरियाँ मिलती थी। उमिला के दादा ने कुछ आर्थिक कठिनाईयों और कुछ रूढ़िगत सामाजिक बन्धनों से तंग आकर ईसाई मत ग्रहण किया था। अधिक अवस्था तो अवश्य सुधर गई, लेकिन हिन्दू समाज उमरे पहले से भी अधिक घृणा करने लगा। उसने इस समाज से सम्बन्ध विच्छेद करके अपना एक छोटा-सा समाज अलग बसा लिया था। उसका बड़ा लडका एडवर्ड श्यामदास पढ़-लिखकर जवान हुआ और सरकारी नौकरी के मिलमिले में तन्डोल होकर पंजाब आ गया। जिन दिनों राजनीति में वामपंथी विचार-धारा फैल रही थी और वामपंथी दल स्थापित हो रहे थे, उन दिनों श्याम-दाम लाहौर में रहता था। उमिला एडवर्ड श्यामदास की लडकी थी। एक बार उमिला और उसके भाई एडवर्ड रामदास की भेंट अशोक से हुई। उमके सामाजिक विचार इतने स्पष्ट और बात करने का ढंग इतना सीधा और संवेदनापूर्ण था कि दोनों इस सक्षिप्त भेंट में उममे बहुत अधिक प्रभावित हुए। यों अशोक से सम्बन्ध स्थापित हुआ और सम्पर्क जितना बढ़ता गया, उतना ही उनकी भटवती आत्माओं को सांत्वना और शान्ति

प्राप्त होती रही। बाप-दादा ने आर्थिक कठिनाइयों और सामाजिक विडम्बना से मुक्त होने के लिए जो मार्ग अपनाया था, वह उन्हें पसन्द नहीं था। ईसाई सम्प्रदाय में छोटे-बड़े का अन्तर काले-गोरे का जाति-भेद उन्हें बहुत अखरता था। यहाँ भी वही सदियों पुराना वातावरण था। सम्यता की विडम्बना, कृत्रिमता और खोखलेपन के मारे दम घुटा जाता था। वे गोरे बन सके थे और न कालो से कोई सामाजिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध रह गया था। शांति और सहृदयता का अभाव था। ईसा के पवित्र नाम पर हविस परस्ती और धर्म की आड में साम्राज्य का प्रचार होता था। उर्मिला और रामदास की नौजवान रुहें इस वातावरण से भाग जाने के लिए छटपटाया करती थीं। असतोष ने शून्य को जन्म दिया, जो दिन-दिन बढ़ता जा रहा था। अशोक ने उन्हें नव समाज, नव मानव और नव-युग के सुनहले सपने प्रदान किये थे। इन सपनों को सार्थक करने के लिए वे दिन रात राजनीतिक कार्य में रत रहते थे। उन्हें सघर्ष म—आंदोलन को आगे बढ़ाने में अध्यात्मिक आनन्द का आभास होता था। बाप तब्दील होकर यू० पी० चला गया था, मगर बहन भाई का घर से कोई सम्पर्क नहीं रह गया था—उर्मिला लाहौर में और रामदास दिल्ली में पार्टी का काम कर रहा था।

उर्मिला ने प्रेस का सब हाल पूछ लेने के बाद नारायण पद्मा से मुखानिव हुआ—

“मैं तुम्हें यह शुभ समाचार सुनाने आया हूँ कि राजेंद्र का पत्र आया है और उसने ..”

“दो पुस्तकें मगवा भेजी हैं।” पद्मा ने उसके मुँह की बात छीन ली।

“इसका मतलब है कि पत्र तुम्हारे पास भी आया है ?”

“जी हाँ, आया है।” पद्मा ने मेज पर पड़ी हुई एक षापी में स राजेंद्र का पत्र निकालकर दिखाया।

“पुस्तकें मैं तुम्हें दे दूँगी। मगर यह बताओ कि तुम्हारे पत्र में और क्या लिखा है ?”

“क्या घर के काम काज के लिए नौकरानी रख ली है?” उसने फिर पूछा।

“जी हाँ।” पद्मा ने गम्भीर भाव से उत्तर दिया “चीदी मुझे काम में हाथ नहीं लगाने देती, इसलिए सब कुछ उन्हीं ही करनी पड़ती थी। अब इसे रख लिया है ताकि उन्हें कष्ट न हो।”

“बहुत अच्छा किया आपने।” मदन ने भारी कंधे हिलाकर कहना शुरू किया, “आदमी को यह देखना होता है कि वह अपने समय का सर्वोत्तम प्रयोग कैसे कर सकता है। मान लीजिये चाय बनाने में आपका आध घण्टा खर्च होता है अगर आपके बजाय आपसे कम योग्यता का कोई दूसरा व्यक्ति—मेरा मतलब है जिसका काम ही भोजन आदि बनाना है—आपके लिए चाय तैयार कर दे, तो आप उस समय में एक अच्छा भाषण तैयार कर सकती हैं, कोई सुन्दर लेख लिख सकती हैं, पढ सकती हैं अथवा थके हुए दिमाग को आराम दे सकती हैं। चाय बनाने के बजाय इस तरह आप सोसाईटी के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगी।” उसने भारी कंधे एक बार फिर हिलाये और छाती तान कर कहा—“अर्थशास्त्र का यह एक सामान्य नियम है, जो प्रत्येक व्यक्ति को भली प्रकार समझ लेना चाहिये।”

नारायण कुर्सी पर पाव रखे और घुटनों में हाथ दिये चुप बैठ गया। लेकिन पद्मा जो सिर हिला रही थी जैसे कह रही हो कि अर्थशास्त्र के इस सुनहले नियम को और किसी ने चाहे समझा हो या न समझा हो, मैंने अवश्य समझ लिया है।

कुछ क्षण मौन रहा। मदन मेज पर पड़ी बापों को अनमना-गा खोलता और बन्द करता रहा।

“क्या नाम है इसका?” उसने फिर पूछा।

“सुन्दरी।” पद्मा बोली और नारायण ने कनखियों से उसकी ओर झाका।

“वाह, क्या सूब नाम है। मानना पड़ता है कि है वादई सुन्दरी।”

मदन ठहाका मारकर हँसा, उसके फूले हुए गाल और फूल गये, पहले

से कही अधिक लाल हो गये। उमे हंसता देखकर पद्मा केवल मुस्करा दी और उम मुस्कराहट में चंचलता थी। मदन ने इसे अपनी बात की दाद समझा। मगर नारायण उमी तरह चुप बैठा रहा। वह दार्शनिकता से प्रभावित हुआ और न हास्य ने उसे गुदगुदाया। यह उपेक्षा-भाव मदन को अखरा।

“सुनाईये हजरत, आप क्या सोच रहे हैं?” उसने नारायण से पूछा।

“मैं” नारायण ने मानो नींद से जगते हुए शरीर को जुंविश दी, बड़े इत्मीनान से पाव जमीन पर रखे और कुहनियां मेज पर टेक कर कहा—“मैं मोच रहा था कि आप जिस अर्थशास्त्र की बात कर रहे हैं। वह बुर्जुआ अर्थशास्त्र है—मेहनत करने वालों को दात बनाये रखने का सिद्धान्त है।”

मदन हंसा, व्यंग्य और विद्रूप की हंसी, और पलटकर पद्मा से कहा—

“आजकल के नौजवानों में यह एक नया फैशन चल पड़ा है कि जो बात समझ में न आये, उसे भट बुर्जुआ कह दो।”

“मिस्टर मदन!” नारायण ने दृढ़ स्वर में कहा, “वेसमझी की बात मैंने नहीं आपने की है।”

“इराका मतलब है कि मैं वेसमझ हूँ।” मदन ने उत्तेजित होकर पद्मा से शिकायत की, “देखा आपने इन्हें कल्चर्ड मोसाइटी में बात करने का सलीका तक नहीं आता।”

“न आये, मामूली बात है।”

“किसी को वेसमझ कह देना आपके नजदीक मामूली बात है?” मदन ने आश्रय प्रकट किया।

नारायण हंसा। मदन ने अपने आप उमका हाथ अपनी दुखती रग पर रख लिया था और वह उसे जोर से दबा देना चाहता था।

“आप आपसे बाहर क्यों हो रहे हैं? वेसमझ मैंने आपको कहा नहीं, अगर आप समझते हैं, तो ठीक है।”

“वेसमझ न कहा हो, लेकिन जो कुछ कहा उसका अर्थ तो यही था ?”

“यह तो मैं अब भी कहूंगा कि वेसमझी की बात आपने की है।” नारायण ने ‘वेसमझी’ पर खास जोर दिया, “आपने जिस सिद्धान्त की बात की है, वह सदियों पुरानी है। प्लाटो की रिपब्लिक में दर्ज है। पूजावादी लेखक इसे वर्तमान व्यवस्था और वर्ग-विभाजन को उचित ठहराने के लिए इस्तेमाल करते हैं। फिर बताइये यह बुर्जुआ सिद्धान्त हुआ कि नहीं ?”

मदन ने ऐसे मुह बनाया, जैसे कह रहा हो, मुझे तुम्हारी बात ही सुनना पसन्द नहीं है। लेकिन नारायण सुनाना चाहता था, फिर बोला—
“बुर्जुआ कहना नौजवानों का फैशन है, क्या आप नौजवान नहीं ?”

“मैं नौजवान अवश्य हूँ।” मदन ने दायें हाथ की मुट्ठी भीचकर मेज पर पटकते हुए कहा, “मगर मेरे कंधों पर बूढ़ों का गम्भीर और प्रौढ़ सिर है।”

“यह तो वाकई ठीक है।” पद्मा की आँखों में चंचलता मुस्करा उठी।

मदन ने उसकी ओर देखा और खुश होकर बोला—“मैंने सुनात, प्लाटो और अरिस्टोटल सबका दर्शन पढ़ा है। प्लाटो ने एक जगह लिखा है, “सुन्दरता स्वर्ग में रहती है, सुन्दर वस्तुओं में वास करने कुछ देर के लिए इस समार में आती है। जब नन्दर वस्तुओं का विनाश होता है, तो सुन्दरता स्वर्ग में लौट जाती है।”

“प्लाटो ने तो लिखा है, पर इस बारे में आपका क्या मत है ?”

‘विद्वानों के लिखे में मीन-मेख निकालना मूर्खों और सिर-फिरो का काम है।’ वह अपनी बात नारायण के बजाय पद्मा को सुना रहा था।

“इसका यह मतलब हुआ कि जब एक फून मुरझा जाता है तो उसकी सुन्दरता उससे अलग होकर प्लाटो के स्वर्ग में चली जाती है।”

मदन ने होंठों को गोल बना लिया था और वह दूर—मकानों से परे

क्षितिज पर देख रहा था। नारायण ने भी अपनी बात पद्मा को सुनाते हुए कहा—“हमारे मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों में एक जीव बहुतायत से पाया जाता है। अंग्रेजी में इस जीव को फिलिस्टाईन (Philistine) कहते हैं और हम अपनी भाषा में बुफरात कह सकते हैं। सुन्दर वाक्य उसका मन-भाता खाजा है और वह यह खाजा इतनी अधिक मात्रा में खा लेता है कि पचा नहीं पाता और बदहजमी से डकारता रहता है।”

कहने के अन्दाज पर पद्मा हंस पड़ी। मदन चिढ़ गया।

“अच्छा, मैं चलता हूँ, बाई, बाई!” वह जाने के लिए उठ कर बोला।

“बैठिए, चाय आती है, पीकर जाइयेगा।” पद्मा ने उसे रोका।

“बहुत अच्छा, आपकी चाय तो जरूर पियेंगे, चाहे देर ही क्यों न हो जाए।”

मदन फिर बैठ गया और उसने जो ‘देर’ का शब्द प्रयोग किया था उसकी व्याख्या करते हुए बताया कि शाम को तांगा-ड्राइवर यूनियन का जलसा है, हड़ताल की बात चल रही है। जलसे के प्रबन्ध और सलाह-मसविरे का सारा बोझ उसी के कंधों पर है।

पद्मा और नारायण जानते थे कि तांगा-ड्राइवर फ्रंट पर पार्टी ने रजाक को लगा रखा है और वही यूनियन के लिए दिन-रात काम करता है। मगर उन्होंने मदन की बात का प्रतिवाद नहीं किया। चुपचाप सुनते रहे।

इतने में सुन्दरी चाय ले आई और पद्मा ने बनाने में उसका हाथ बंटाय़ा।

कानून

अगले दिन नारायण जब मृत्यु पाया, राजेन्द्र को पुस्तकें भिजवाने की बात एकदम भूल गया। वैसे वह हर छोटी-बड़ी बात का ध्यान रखा था। दफ्तर की डाक के उत्तर देना, प्रेम को खबरें भेजना, कौन-सी चीज कहाँ रखी है, किसे क्या देना है और कहाँ से क्या खाना है—आदि बातों के अलावा पार्टी के गुप्त छापाखाने को मामान पहुँचाने और वहाँ छपने वाले "लाल डबोरा" अखबार के बांटने की व्यवस्था करता था। कभी किसी काम में ढील नहीं होती थी। वह लेनिन के दस निर्देश में विश्वास रखता था—छोटे कामों में कभी कोताही न करो क्योंकि छोटे कामों ही में बड़े कामों का निर्माण होता है।

मगर उस दिन वह बहुत व्यस्त था, पुस्तकें भेजने में बड़ी आवश्यकता काम उसे करना था। हाईकोर्ट में बयान के मुद्दम की अपील पर बहस होनी थी। उसवन्त को एक भाषण के निर्वाचने में छोटी अदालत से पाँच घण्टों का कठोर दंड मिला था, जो बाद में घटकर तीन साल रह गया था और अब हाईकोर्ट में अन्तिम अपील हो रहा था। कल शाम पदमा के घर से लौटते समय वह बर्लीन में स्थित गया था ताकि उसे मुद्दम की फाईन दफ्तर बहस उपाय करने का कदम। मगर उस समय यकीन घर पर नहीं था। उस लौटते देखते ही और वह राजेन्द्र की चीजें न भेज सका।

मुवह सँर म लौटते समय वह बर्लीन में मरगा पर फिर गया। कौन

रामदास चौपड़ा इसलिए पब्लिक में प्रसिद्ध था कि वह राजनीतिक नेताओं और कार्यकर्ताओं के मुकदमे मुफ्त किया करता था। अब उसके पास काम अधिक बढ़ गया था, जिन मुकदमों की फीस नहीं मिलती थी, उन पर विशेष ध्यान नहीं देता था और अक्सर बिना तैयारी ही के अदालत में जा खड़ा होता था। बहस कामयाब नहीं होती थी और कई बार पेश होने की तारीख तक मूल जाता था। इस बार भी वह वाकई मूल गया था, उसे मालूम तक न था कि आज बलवन्त की पेशी है। नारायण के पहुंचने पर उसने फाईल मगवाकर देखी और बहस तैयार की।

नारायण वकील के मकान से लौटा तो नौ बज चुके थे। वह जल्दी-जल्दी नहा-धोकर तैयार हुआ और हाईकोर्ट की ओर चल पड़ा। लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ वह माल रोड पर जा रहा था कि पीछे से किसी ने पुकारा—“कामरेड नारायण।”

धूमकर देखा तो लोगों की भीड़ में खड़ा प्रह्लाद उसे बुला रहा था। पटरी पर पीपल के पेड़ तले एक बूढ़ा भिखारी बंठा था। टांगें जरा फँली हुई थी, सिर नंगा था और उसने पांव से कंधों तक एक मंली-सी चाहर पहन रखी थी, जिसमें से वह दायां हाथ बाहर फँला-फँलाकर भीख मांग रहा था। हाथ कछुए की गर्दन की तरह कभी चादर से बाहर आता और कभी भीतर चला जाता।

एक आर्टिस्ट इस बूढ़े भिखारी का चित्र बना रहा था। इतने ही में वहां लोगों की भीड़ लग गई। उनके नजदीक भीख मांगना और उसका चित्र बनते देखना एक तमाशा था। भिखारी जब हाथ चादर के भीतर खींचकर सिर घुटनों पर रख लेता था, चित्रकार को उस समय अपना काम बन्द कर देना पड़ता था।

“इसे कहो न, जरा हाथ फँलाये बंठा रहे।” भीड़ में से किसी ने कहा।

“हिना ! हिना !!” चित्रकार ने मना किया। उसकी त्योरियां पड़ गईं।

उसे जिदगी को भीख मांगते दिसाना था, उसका यथार्थ चित्र उरेहना

था, बूढ़े की भावनाओं को तूलिका और रंगो द्वारा व्यक्त करना था। उसे हाथ फँलाने को कह दिया जाये तो चित्र में स्वाभाविकता नहीं रहेगी, यथार्थ विकृत हो जायेगा।

नारायण और प्रह्लाद आगे बढ़े तो एक और आदमी मुह से धुआँ उगलता हुआ, भीड़ से निकलकर उसके साथ हो लिया। वह पराशर था। बलवन्त से उसकी घनिष्ठ मित्रता थी। वह शुरू ही से मुकदमे में दिलचस्पी ले रहा था और अब हाईकोर्ट में बहस सुनने जा रहा था।

“आइये, आइये।” नारायण और प्रह्लाद उसे देखकर बहुत खुश हुए।

माल रोड के दोनों तरफ बड़ी बड़ी फर्में थीं, जिनमें लाखों रुपये का माल भरा पड़ा था और बैंकों की भव्य इमारतें थीं। लोग शॉपिंग करने, बैंकों में रुपये निकलवाने और जमा कराने आ-जा रहे थे। खूब चहल-पहल थी और भीड़-भाड़ थी। कारोबारी लोगों से कहीं अधिक सख्या भिखारियों की थी। मर्द औरतें, बच्चे, बूढ़े, पुराने और गलीबूझ सीपड़े पहने अथवा नग-धडग भीख माग रहे थे। न मिलने पर साथ साथ चलते, तांगो और मोटरो के पीछे दौड़ते, गिड़गिड़ाते, मिन्नतें करते और दुआएँ देते थे। दाया हाथ सबंदा फँला रहता, जैसे फँले रहना उसका स्वभाव बन चुका हो।

आओ आर्टिस्ट, बना लो इनके चित्र यह हाथ फँले ही रहेगे और मागने वालों के चेहरे कभी ठोस और भावरिक्त नहीं होंगे।

क्या बनेगा इन चित्रों से? जब लाग जिंदगी को नहीं देखते—जिंदगी के इस चित्र को—अधूरे प्रतिबिम्ब का क्या देखते हैं? उनकी दिलचस्पी जिंदगी को भीख मागते दिखाने ही में क्यों है?

“बाबूजी पैसा! भगवान के लिए एक पैसा!”

“हटो, हटो। कुछ नहीं मिलेगा। खुद हमारे पास पैसा नहीं है।” पराशर ने पीछे लगे हुए तीन-चार भिखमणों को हुत्कारा—“सरमायेदारी से मागो। इन बैंकों को लूट लो।”

“दो साल हुए” नारायण बोला, “केन्द्रीय धारा सभा में प्रस्ताव पेश हुआ था कि भीख मागना कानूनन बन्द किया जाये। अगर यह प्रस्ताव

पास हो जाता तो मैं समझता हूँ हमारी आजादी कुछ निकट आ जाती, लेकिन सरकार ने प्रस्ताव पास नहीं होने दिया।”

“सरकार !” पराशर मुस्कराया। फिर बीड़ी का तबील कश लगाकर और धुआं ऊपर छोड़कर बोला, “सरकार किसी की किस्मत त...तो नहीं बदल सकती। भगवान ने इन लोगों की किस्मत में भीख मांगना लि... लिखा है और वे भीख मांगते मरेंगे। भगवान का कानून सरकार के कानून से बड़ा है, वह इस कानून में द...दखल नहीं द...देना चाहती।”

जब वे हाईकोर्ट के फाटक में घुसे, पांच-सात भिखमंगे इधर-उधर से एक साथ लपके। एक भिखारिन अपने मँले-कुचँले बच्चे को बाजू से पकड़े सबसे आगे थी।

“बाबूजी मेरे बच्चे को पैसा दो, भगवान तुम्हें मुकदमा जितायेगा।” और बच्चा भी दांत निकालकर और हाथ फँलाकर कह रहा था—“पैसा ! पैसा ! !”

फिर बहुत-सी सदायें एक साथ आईं और एक-दूसरे में गड़मड़ हो गईं।

धार-रूम के दरवाजे पर उन्हें गोपाल और बलवन्त का बड़ा लड़का राज खड़े मिले और उनसे मालूम हुआ कि इस समय एक मुकदमा पेश है, उसके बाद हमारी अपील पर बहस होगी।

वे एक तरफ बेंच पर बैठ गए। गोपाल के हाथ में अखबार था, नारायण लेकर पढ़ने लगा।

पहली खबर चीन-जापान युद्ध के बारे में थी। नारायण पढ़ रहा था और उसके चेहरे से चिंता का भाव व्यक्त हो रहा था। खबर पढ़ लेने के उपरान्त बोला—“चीन से इलाका छिनता जा रहा है। जापान युद्ध के लिए पहले से तैयार था। उसके पास टैंक हैं, हवाई जहाज हैं और सभी आधुनिक अस्त्र-शस्त्र हैं। वह चीन को रौंदता, कुचलता आगे बढ़ रहा है। शहरों और देहातों पर बमबारी करते तनिक नहीं झिझकता। फिर कहता है कि मैं चीन से लड़ नहीं रहा, उसे पश्चिमी साम्राज्य के चंगुल से मुक्त करा रहा हूँ। झूठा, मक्कार !”

“कामरेड ! आप साह-मसाह न...नाराज होते हैं।” पराशर ने ठोड़ी पर उगे बानों पर हाथ फेरते हुए कहा, “जापान के कथन में सदह की तनिय भी गुजाइश नहीं है। यह बहुत ही पवित्र काम कर रहा है। अगर उसने आज तक सडाई का ऐलान नहीं किया तो यह सधमुच स सडाई न...नहीं है। एक घटना है। जापान चीन की उसी प्रकार मन्थ और सिद्धित बना देना चाहता है, जिन प्रकार अंग्रेज ने हिन्दुस्तान को बनाया है। हिन्दुस्तान में अंग्रेजी मन्थता के द दर्शन तो हम सबक पर कर आए हैं। अब जापान चीन को मन्थ बना रहा है, न...तो यह त... तमाशा भी देखिए। बेचारा बम फेंकता है, आग बरसाता है, शहरो और देशतों को नष्ट करता है ता... ताकि चीन की जनता रूप-मण्डक न बनी रहे, उसकी भलाई से पूरा-पूरा लाभ उठाए। यह अपने लिए नहीं, एशिया, एशिया वालों के लिए सिद्धान्त ल...सेकर लड रहा है।” पराशर ने बीड़ी का बश लगाया और फिर बोला—“बह जानता है कि दु... दुनिया में बुद्ध मल बधाऊमल बसते हैं जो हर बान पर विश्वास कर ल...लेने को त... तैयार रहते हैं।”

अन्तिम वाक्य किसी ने नहीं सुना। “बुद्धमल बधाऊमल” पर कहकहा पड चुका था। गोपाल, राज और प्रह्लाद अधिक हस रहे थे। पराशर चुप हो गया और इत्मीनान में बीड़ी पीने लगा।

“पराशर जी ठीक ही कह रहे हैं।” कुछ देर मौन रहने के बाद नारायण बोला, “अगर जापान का यह दावा गलत होता तो राष्ट्रसंध उसके विरुद्ध जरूर बारंबाई करता।”

“सन्देह की गुजाइश ही नहीं।” पराशर ने नई बीड़ी सुलगाना स्पगित करते हुए कहा, “राष्ट्रसंध बना ही इसलिए है कि शाति भंग न... न हो। उसमें बड़ी-बड़ी त... ताकतो के प्रतिनिधि मौजूद हैं। वे प्रतिनिधि बुद्धमल बधाऊमल न...नहीं हैं। राजनीति के ऊच न...नीच और द... दाव-पेच सब समझते हैं। अगर वे चीन में खून बहते दे...देख रहे हैं त...तो समझ तो इसमें चीन की भलाई है।”

पराशर बीड़ी सुलगाने लगा। लेकिन नारायण बोला, “एक बात

और भी है। राष्ट्रसंघ का सबसे बड़ा सदस्य अंग्रेज है और वह लड़ना नहीं चाहता।”

“अंग्रेज क्यों ल...लड़े ?” पराशर ने विचित्र ढंग से गदगद हिलाई, “वह ईसा का भक्त है। वह हर हालत में शान्त रहेगा। उसका काम जाहिलों और वहशियों को त...तहजीब सिखाना है। अगर कोई दू... दूसरा द...देश भी तहजीब सिखाने का काम करता है तो अंग्रेज खुदा होता है, द...दखल नहीं देता। अतालवी त...तोपों ने अवेसीनिया के हर्षियों को तहजीब सिखाई, वह चुप रहा। अब जापान के वम चीन के युद्धमल बघाऊमल अफीमियों को त...तहजीब सिखा रहे हैं तो वह चुप है और चुप रहेगा क्योंकि उमका काम त...तहजीब फैलाना है। धरना उमके पास ल...लड़ने का साहस भी है और शक्ति भी। वमों और हवाई जहाजों की कमी नहीं। वह उनसे काम भी ल...लेता है। फल की बात है कि फिलस्तीन के अरबों ने त...तनिक मिर उठाया तो अंग्रेजों ने वह वम-बारी की कि होश ठि...ठिकाने आ गए। बोले तो सही हिन्दुस्तानी, अभी पता चल जायेगा अंग्रेज के साहस का।”

थोड़ी देर मौन रहकर गोपाल ने गम्भीरता से कहा, “मज्जाक की बात अलग है। मैं समझता हूँ कि जापान शीघ्र ही सारे चीन पर छा जायेगा। यह चीन के हित की बान है और हमारे अपने हित की भी, क्योंकि अंग्रेज तो वहाँ से निकलेगा।”

पराशर नारायण की ओर देखकर मुस्कराया। वह चुप रहा और अखबार देखने लगा, लेकिन पराशर से न रहा गया, बोला—

“जापान जिदाबाद ! एशिया, एशिया वालों के लिए का सिद्धान्त जिदाबाद !”

“तनिक सुनिये।” नारायण ने सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया, “प्रधान रूजवेल्ट ने एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में कहा है कि अमरीका की आबादी दुनिया की आबादी का चालीसवां भाग है, और उसका धन दुनिया के धन का छठा भाग, फिर भी अमरीका की एक-तिहाई जनता निर्धन है, हम इस निर्धनता को दूर करना चाहते हैं।”

“मैंने भी इस बयान को पढा है और इसका कटिंग रखूंगा।” गोपाल बोला।

इसी समय वकील ने आकर बताया कि पहले मुकदमे की बहस लम्बी हो गई है। बलवन्त का मुकदमा अब लच के बाद ही पेश हो सकेगा।

नारायण, पराशर और प्रह्लाद चले कि किसी तदूर पर खाना खा आये। दरवाजे पर भिखमगो ने फिर उन्हें आ घेरा—“बाबू तुम्हारी मुरादे पूरी हो।”

चौक से छकडा की एक पात गुजर रही थी इसलिए तागे और मोटरें रुक गई थी। भीड अधिक थी, उहे भी रुकना पडा।

“यह अमरीका की नही, हिन्दुस्तान की तस्वीर है। लेकिन अमरीका मे भी जो दुनिया का सबसे धनी देश है एक तिहाई जनता निर्धन है।”

“गाधी जी के रामराज्य मे न मोटरें होगी न * न अमीर। छकडे होंगे और गरीब।” पराशर बोला।

लच के बाद अपील सुनी गई। बलवन्त की उपस्थिति आवश्यक नही थी और न ही उसे बुलाया गया था। कोई कठिन समस्या नही थी। इती-गिनी बातें थी। दो ढाई घटे की बहस के बाद सुयोग्य जज ने फैसला सुनाया—

‘इस बात का सबूत मिलता है कि मुलजिम ने अपने भाषण द्वारा जनता को सरकार के विरुद्ध विद्रोह और हिंसा के लिए उकसाया इसलिए अपील रद्द की जाती है।’

अपील रद्द हो गई। बलवन्त तीन साल के लिए जेल मे रहेगा। वकील, नारायण, पराशर और दूसरे साथी अदालत के कमरे से बाहर निकले और एक-दूसरे का मुहं ताकते हुए चुप चाप चलने लगे। पराशर ने बीडी सुलगाई और दो तीन कश लगाकर बोला—

‘यह होना ही था और ठी ठीक ही हुआ। बलवन्त को कोई हक हासिल नही कि उस सरकार के विरुद्ध जिसका काम शांति स्थापित रखना है, जिसके पास सेना है, कानून है और जेलें हैं नि निहत्थी जनता को हिंसा और विद्रोह के लिए उकसाये * * ।’

जब दूसरे लोग अपने-अपने ठिकानों की ओर चले, राज ने नारायण से कहा—“मुझे आपसे बात करनी है।”

“कहो।”

“मामी हर वक्त मां से लड़ती-झगड़ती रहती है। हमारा वहां रहना कठिन है।” उसने आर्द्र स्वर में कहा।

वे सब मामा के घर में रहते थे। बलवन्त पहले भी एक साल कैंद काट आया था, उस समय भी वह मामा के घर चले गये थे। मामी का स्वभाव कठोर था। साल भर घड़ी मुश्किल से व्यतीत हुआ था। इस बार निचली अदालत का फैसला सुनते ही उसने ताने देना शुरू कर दिया था—“हम से दूसरों का परिवार नहीं पाला जाता।” उसके साथ तीन साल बिताना असम्भव था। नारायण ने राज से कहा, “तुम सब लोग हमारे पास चले आओ।”

उसने राज से तो कह दिया लेकिन रास्ता भर मोचता रहा, रहने की व्यवस्था कैसे होगी? खर्च क्योंकर चलेगा?

कथनी और करनी

रामदास दिन-रात यूनियन के कामों में व्यस्त रहता था, कभी जुलूस निकालता और कभी जत्ने करता। धीरे-धीरे वह भाषण भी करने लगा। उमरी बातें सीधी-सीधी होती। वह मजदूरों की उन निजी तकलीफों का उल्लेख करता जो उन्हें अपने काम के सम्बन्ध में सहन करनी पड़ती थी। मैनेजर, बाबू और जाबर जो दुर्व्यवहार, अपमान और जुमनि करते थे, नियत समय से अधिक काम लेते थे, उसकी ओर वह विशेष रूप से ध्यान दिलाता था। यह मजदूरों का अनुभूत सत्य था। रामदास की बातों में उनका अपना सुख-दुख निहित रहता था; इसलिए वे दिल में उतर जाती थीं। जलसे और जलूमों में दिन-दिन मजदूरों की तादाद बढ़ने लगी और यूनियन के कामों में वे अधिक दिलचस्पी लेने लगे। यूनियन की यह सफलता देखकर नौजवानों का जोश बढ़ रहा था, रामदास और उसके साथी बंभी और करमा हर एक काम बड़े उत्साह से करते थे। साल भंडे ने पहली बार मजदूरों के जीवन में प्रवेश किया था, वे उसे बड़े शौक से इधर-उधर उठाये फिरते थे। नौजवानों ने छोटे-छोटे भंडे अपनी छातियों पर लगा लिये थे। लड़के जब स्कूल में पढ़ने जाते तो वहाँ से घाक उठा लाते और घर लौटकर हंसिया और हथौड़े के चित्र बनाते। बस्ती के हर एक दरवाजे पर अब हंसिया और हथौड़े बने हुए दिखाई देते थे।

मजदूरों में यूनियन का आन्दोलन जितना खोर पकड़ रहा था, राजेंद्र और इखलाक का काम भी उतना ही बढ़ रहा था। वे दिन-रात व्यस्त

रहते थे। उनका काम शिक्षा और संगठन था। जलसे और जुलूमों के प्रबन्ध को जिम्मेदारी रामदास और उसके साथियों पर थी, वे सिर्फ उनकी सहायता करते थे और इस बात का ध्यान रखते थे कि कोई अनुचित बात न हो, किमी प्रकार की उद्दण्डता न खाने पाये जिससे मजदूरों में भ्रांति फैले और आपस का विरोध बढ़े, और आन्दोलन के गलत दिशा अपनाने की सम्भावना हो। इस प्रकार खुद मजदूरों में से उनके अपने नेता पैदा हो रहे थे और उनमें कार्य-कुशलता और धर्म-चेतना की मात्रा बढ रही थी, और अपनी कठिनाइयों और कष्टों की भावना राजग हो रही थी। जब वे वहाँ से जायेंगे तो मूनिषन अपने पांव पर सड़ी होगी। उन्होंने जो पीषा लगाया है, वह पेट बन घुका होगा और उसकी जड़ें धरती में इतनी गहरी बैठ जायेंगी कि कोई आंधी, कोई सूफान उसे उखाड नहीं सकेगा।

रामदास, करमा और बंसी जो गमभरार और जोशीले नौजवान थे, उन्हें ये मजदूर-आन्दोलन की कहानियां सुनाने, पूंजीवाद के विकास और अतिरिक्त विरोध की बात समझाने, मजदूर-आन्दोलन के ऐतिहासिक महत्व और उसके उग्ररत भविष्य पर प्रबान डालते थे। इसके अतिरिक्त यह देगने कि मूनिषन के जमने, जुलूमों और प्रदर्शनों का मूनिषन से दूर रहने वाले मजदूरों, धातुओं और जाचरों पर बण अमर पड रहा है; किन सोगों को मूनिषन में लाया जा सकता है, कता विरोध अधिक है और इन विरोध के अमर को किस प्रकार कम किया जा सकता है।

योग्यता और सहृदयता उसके अपने चिंतन को दिशा प्रदान करती ।

सदीक का पिता एक समृद्ध किसान था । समाज और विरादरी में उसका बड़ा नाम था । किसी भी समारोह और उत्सव पर वह खूब दिल खोलकर रुपया खर्च करना था । रस्मों-रिवाज और ठाठ-त्राठ को बड़ा महत्त्व देता था । जब सदीक की दो बड़ी बहनों का ब्याह हुआ, तो पैसा पानी की तरह बहाया गया । सारे गांव को दावत दी, शरीकों में खैरात वटी, मस्जिदों और खानकाहों में दोशाले चढ़े । इतना रुपया खर्च हुआ कि जमीन रहन रखकर कर्ज उठाना पड़ा । उसने कर्ज चुकाने की हरचद कोशिश की; लेकिन जितना चुकाता था, उससे कहीं अधिक ब्याज बढ़ जाता था । परिणाम यह निकला कि जितना रुपया बर्ज लिया था, उससे कहीं अधिक ब्याज की शक्ल में देना पड़ा और मूल चुकाने के लिए जमीन जमींदार के हाथ बेचनी पड़ी । बाप इसी चिंता में घुलकर मर गया । जो थोड़ी-बहुत जमीन बच गई थी, सदीक कई साल तक उसी पर मेहनत करके गुजर-बसर करता रहा । लेकिन जब मदवाडा आया, अनाज भूसे के भाव बिकने लगा, जिदगी की जरूरतें पूरी करना तो दरकिनार उसके लिए लगान चुकाना दूभर हो गया । जो जमीन बची थी, वह भी हाथ से निकल गई । सदीक जो पीड़ियों से किसान कहलाता चला आ रहा था और जिसके पिता की विरादरी में बड़ी इज्जत थी, खेत मजदूर बन गया । उसे जमींदार की कटुता और कार्रदों की भिडकिया सहन करनी पड़ती थी । जमींदार उसका सहधर्मी था, लेकिन उसकी जमीन औने-पौने हथियाते और उस पर अत्याचार करते समय उसका ध्यान कभी धर्म की ओर नहीं गया । इसलामी समता का सिद्धांत सदीक के किसी काम नहीं आया । जमींदार के जुल्म और शोषण से सभी किसान तग आये हुए थे । वह बटाई नहीं करता था । सारा अनाज अपने जखीरों में भरवा लेता था । किसानों को उसका चौधई भाग भी नहीं मिलता था । वे जाधे पेट जीते थे और जमींदार ऐश करता था ।

आखिर घटाई का आन्दोलन चला । किसानों ने मांग की कि खेत में जितना अनाज हो, उसे आधा-आधा बाटा जाये । यह क्या कि ज

सारा अनाज उठाकर अपने अन्दर भर ले और उन्हें कोई हिसाब-किताब न दे। सदीक इस आन्दोलन का अगुवा था। जमींदार ने अपनी सहायता के लिए पुलिस बुलवाई और आंदोलन असफल रहा। सदीक को बेदखल करके जमीन से निकाल दिया गया। उसने मजबूर होकर गांव छोड़ा और शहर में आ बसा।

“पैसे वाला हिन्दू हो या मुसलमान, अपने ही फायदे की बात सोचता है।” सदीक ने आपबीती सुनाने के बाद कहा था।

एक कर्ण-कहानी उसकी सुन्दर आंखों में अंकित थी। उसकी आंखें शायद इसीलिए सुन्दर थी। जो चाहता था कि आदमी उन्हें देखता ही रहे, उनमें समुद्र की गहराई थी। सदीक का रंग गोरा और चेहरा गोल था। उसने काले रंग का साफा बांध रखा था, सादा मफेद कमीज और नीले रंग का तहमद। इस वेप में वह बहुत ही भला मालूम होता था। कहानी सुनाने के बाद आंखों में जो अवसाद, दुःख और वेदना उभर आई थी, वह मानवता की कर्ण पुकार थी—उस मानवता की जो सदियों से शोषित और पीड़ित है।

“और फिर कहा यह जाता है कि अमीर और गरीब सब खुदा ने बनाये।” राजेन्द्र बोला।

“यह सब वहाना है। झूठी बात है।” सदीक ने विदवात के साथ कहा। उसका स्वर स्थिर और दृढ़ था और सिर्फ अनुभूति ही मनुष्य की आवाज को दृढ़ बनाती है।

जैसे-जैसे यूनिफन का प्रभाव बढ़ रहा था, वे लोग भी चौकन्ने हो रहे थे, जिनके लिए यूनिफन का अस्तित्व भय का कारण था, जो पूंजीवादी हितों से बंधे हुए थे, जिनकी भलाई इस बात में निहित थी कि मजदूर असंगठित रहें और मजदूर-मालिक को मनमानी करने की खुली छूट हो। इनमें मुगली जैसे आवारा और निक्ममे लोग भी शामिल थे, जो खाते अधिक थे और उत्पन्न कुछ नहीं करते थे। उनका गुरु मुरारीलाल मनचदा था, जो गत सविनय भंग आन्दोलन में छः महीने कैद काट आया था और कांग्रेसी नेता पंडित बदरीनाथ की सिफारिश से यहां लेबर वेलफेयर

आफ़ीसर नियुक्त हुआ था। मिल में मुलाजिम होने के बावजूद वह मशीनी कपड़े का विरोध करता और शुद्ध खद्दर पहनता था। हर रोज सन्ध्या-प्रार्थना के उपरान्त घटा-पौन-घटा चर्खा कातता और ऐसा युग शीघ्र आने की वान कहता था। जब मशीन का वजूद ही खत्म हो जाएगा, मनुष्य सब काम अपने हाथ से किया करेगा और प्रसन्नता से जीवन बितायेगा।

लेकिन जब तक मशीन मौजूद थी, मिल-मालिक और मजदूर मौजूद थे, उनमें प्रेम सम्बन्ध स्थापित करना जरूरी था। आपस की खीचातानी से घृणा का जन्म होता है और घृणा संसार में समस्त दोषों की जड़ है। मनचन्दा को घृणा से घृणा थी और वह प्रत्येक मनुष्य से प्यार करता था। वह मिल-मालिक का अर्कचित दास था और मजदूरों के साथ भी विनम्रता का व्यवहार करता और मीठा बोलता था। वह सेबर बेलफेयर आफिसर था और अपने उत्तरदायित्व को भली प्रकार समझता था। इसलिए मजदूरों की भलाई का ध्यान रखता था, उनमें सन्म्यता और शिष्टता का प्रचार करता था। और उनके हित की कोई बात मालिक से कह सुनकर ही सके, तो करवा देता था। मिल-मालिक भी बहुधा मनचन्दा की कोई बात टालता नहीं था क्योंकि वह धन का ट्रस्टी माना था, अपने लिए नहीं मजदूरों के लिए कमाता था। जब मालिक इतना सज्जन और उदार हो तो मजदूरों का फर्ज है कि वे उसके हित को अपना हित समझें। एक आदमी लाखों रुपये खर्च करके कारखाना लगाता है, हजारों बेकारों के लिए रोजगार का साधन जुटाता है तो वे उसके कृतज्ञ क्यों न हों? क्यों न मन लगा कर काम करें? मनचन्दा गीता के श्लोक पढ़कर मजदूरों को बताया करता था कि किसी से ईर्ष्या करना अथवा साधारण बातों के लिए झगड़ना व्यर्थ है, मनुष्य निष्काम भावना से काम करता रहे, फल भगवान के हाथ है।

यूनियन-यूनियन की वान उसे कुछ अच्छी नहीं लगी। उसका विश्वास था कि इससे मजदूरों और मिल-मालिकों में वैमनस्य बढ़ेगा, घृणा फैलेगी और घृणा संसार में सब बुराईयों की जड़ है। इसलिए मनचन्दा ने रहमा, नन्दू और उनके दो-चार अन्य प्रमुख साधियों को

बुलाकर कहा—

“सुना है कि कुछ यूनियन बूनियन बन रही है, यह क्या चक्कर है?”

“कुछ नहीं। दो-चार जोशीले छोकरे हैं, हम उन्हें समझा देंगे।”

“खुद मजदूर जो चाहें करें, हमें कुछ एतराज नहीं। लेकिन इस बहाने बाहर के बेकार और शरारती लोग मजदूरों में घुस आते हैं। उन्हें भगड़े के लिए उकसा कर आप अलग जा खड़े होते हैं, मुसीबत मजदूरों के सिर पड़ती है। जब मालिक सारी तकलीफें आप ही दूर कर देते हैं, फिर यूनियन की क्या जरूरत है?”

यूनियन की जरूरत शायद थी क्योंकि नन्दू और रहमा का रसूख भी किसी काम नहीं आया। वे अपने घड़े के नौजवानों को भी यूनियन में शामिल होने से नहीं रोक सके। जब जुलूस निकलने और जलसे होने लगे तो मनचन्दा की चिन्ता और बढ़ी। उसने एक दिन रामदास को अपने पास बुलाया। डेढ़-दो घण्टे उसके साथ मीठी-मीठी बातें करता रहा, सरमायेदारों और मजदूरों के एक-दूसरे पर निर्भर होने का दर्शन बयान करता और जिन्दगी का ऊच-नीच और हानि-लाभ उसे समझाता रहा। रामदास ने उसकी बातें बड़े ध्यान से सुनीं और उसके हर एक नुबता को सराहा और स्वीकार किया। उसके व्यवहार से मनचन्दा को विश्वास हो गया कि रामदास चतुर और बुद्धिमान है, उसे सिर्फ गुमराह किया गया है, आगे को वह इन ऋगड़ों में नहीं पड़ेगा। उसने अपनी कमीज पर जो लाल भण्डा लगा रखा था, मनचन्दा ने उसकी ओर देखते हुए मूढ़ स्वर में कहा—

“लाओ अपना यह भंडा मुझे दे दो।”

“नहीं साहब, रहने दीजिए। यह तो हमें ही अच्छा लगता है। आप तो इसे टोपी में छिपा लेंगे।”

रामदास की आंखों में चंचलता की आशा नहीं थी, वह मन-ही-मन अपने बाहरी रूप में कोई अन्तर गई थी, उसे स्वर में व्यक्त नहीं थी और खुद रामदास

। मनचन्द
रह गया,
मन में

जब रामदास उठकर चला गया, मनचन्दा ने एक लम्बी सास छोड़ी। चातो मे कुछ अधिक समय और शक्ति लग गई थी, इसलिए अब वह थक गया था और आराम करना चाहता था। उसने टोपी उतार कर एक ओर रख दी, कुर्ते के बटन खोल दिए, बाह पीछे को फैला दी और उन पर शरीर का बोझ डाल दिया। आँखो मे चिन्ता और व्यग्रता भरी थी, पाच-सात मिनट इसी प्रकार बँठा सोचता रहा, फिर सहसा उठ खड़ा हुआ और होठो पर एक फीकी सी मुस्कराहट लाकर स्वत बोला—

“जो होना है, वह होकर रहेगा, भगवान की इच्छा को कौन टाल सकता है।”

उसने खूटी पर से मृगछाला उतार कर बिछाई और चर्खा कातने बँठ गया। जिस दिन वह बूछ परेशान होता था, चर्खा नियम से कुछ अधिक कातता था और उसकी आत्मा को इससे वाकई शांति प्राप्त होती थी।

जिस समय वह चर्खा कात रहा था, मुगली उधर आ निकला और प्रणाम करके एक तरफ बँठ गया।

“सुनाओ मुगली भक्त किस तरह आना हुआ?” मनचन्दा ने एक लम्बा तार खींच कर पूछा।

“आपके दर्शन करने चला आया।” मुगली मुस्कराया और फिर बोला, “नशे-पानी को पैसे नहीं थे, सोचा आप ही कुछ कृपा करेंगे।”

‘ देखो मुरली भक्त तुमसे कह रखा है, पैसे जब जरूरत हो, ले जाया करो। पर नशे-पानी की बात हमसे न कहा करो।”

“आप धर्मात्मा पुरुष हैं, आपके सामने झूठ नहीं बोला जाता। इसलिए सारी बात कहता हूँ। आदत बुरी है, मैं खुद मानता हूँ और छोड़ने की कोशिश कर रहा हूँ। आप देख रहे हैं, पहले से बहुत कम बर दी है। एक दम छोड़ी भी तो नहीं जानी।”

मुगली के सत्य-भाषण से मनचन्दा गद्गद हो उठा, मुस्करा कर बोला—

“मुश्किल-मुश्किल कुछ नहीं है। अच्छी सगति से वात्मीकि ने ढाने डालना छोड़ दिया और इतना बड़ा ऋषि बना।”

मनचन्दा ने जेब से दस रुपये का नोट निकालकर मुगली को दिया जो उसने प्रसन्न होकर ले लिया और वह प्रणाम करके जाने को उठा। मगर मनचन्दा ने उसे रुकने का संकेत किया। उसने पूछा।

“सुना है कि रामदास से कुछ झगड़ा-वगड़ा हो गया ?”

“हा, चीटी के पर निकल आये हैं और पर निकलना ही उसकी मौत है।”

“देखो तुम फिर क्रोध की बात करते हो। हमने तुम्हें कितनी बार समझाया है कि आपस का दंगा-फिसाद अच्छा नहीं होता।” मनचन्दा ने सदुपदेश दिया और पहलू बदल कर अर्थपूर्ण ढंग से कहा, “यह रामदास नहीं, उसमें कोई और बोलता है।”

“क्या मतलब ? गंवार आदमी हूँ, समझाकर कहिये। कौन बोलता है उसमें ?”

“इतने भोले न बनो।” मनचन्दा कौतूहल से मुस्कराया, और बोला, उसमें यूनियन बोलती है और यूनियन बनाने वाले बोलते हैं।”

मुगली ने अपने हाथ में दस रुपये के नोट पर निगाह डाली, फिर मनचन्दा की ओर देखा और मुस्कराते हुए चल पड़ा।

ज्योतिषी

नारायण किसान सभा के दफ्तर में पहुँचा तो ताया अपनी रज़ाई में लिपटा हुआ था और जगदीश पास बैठा अंग्रेजी पढ़ा रहा था।

“सुनाओ ताया खूब पढ़ाई हो रही है ?” नारायण ने प्रणाम करने के बाद पूछा और चारपाई पर बैठ गया।

“इनकी कृपा है कि सुबह-सुबह आकर पढ़ा जाते हैं।” चेतसिंह ने जगदीश के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा, ‘एक बार दो-तीन किताब आँखों से निकलवा दें, आगे मैं आप ही मेहनत करता रहूँगा।’

उसकी आँखों में सीखने का उल्लास भरा था।

“देखो तुम्हें इनकी पढ़ाई का तरीका बताऊँ।” जगदीश ने एक कापी के पन्ने उलटते हुए कहा, “कल इन्हें कहा था कि पजाबी के ऐसे शब्द लिख छोड़ना जो आम इस्तेमाल में आते हैं, मैं तुम्हें उनकी अंग्रेजी लिखवा दूँगा। अब जरा वे शब्द सुनिये।”

और जगदीश ने कापी में से शब्द पढ़ने शुरू किये—

“कट्टा, कट्टे, कट्टिया। बच्छा, बच्छे, बच्छिया। किल्ला, किल्ले, किल्लियां। सारा पृष्ठ योही भरा हुआ है।”

“ठीक है।” नारायण बोला, “जब कट्टे-कट्टिया हैं तो उनको बाघने के लिये छूटे भी तो चाहिए।”

जगदीश ठठाका मारकर हँस पड़ा, नारायण और चेतसिंह भी हँसने लगे, जगदीश की हँसी स्वच्छ और निर्मल थी। नारायण ने उसे घर पर

अपने बच्चों को भी पढ़ाते देखा। वह उनके साथ बच्चों के सदृश हिल-मिल जाता था, उनकी छोटी-छोटी बातों से प्रसन्न होता और गणित के प्रश्न की लतीफों की तरह दिलचस्प बना देता था।

जो पाठ पढ़ाया जा रहा था, थोड़ी देर में समाप्त हो गया। जगदीश ने नारायण से हाथ मिलाया और चला गया।

“मुनाओ ताया ! देहात से कोई खबर आई ?” नारायण ने पूछा।

“खबर तो कोई नहीं।” ताया ने उत्तर दिया और अपने सिरहाने से एक लिफाफा निकालकर नारायण के हाथ में थमाते हुए कहा, “कृपाल का खत आया है।”

नारायण पत्र पढ़ने लगा। वह मोटे-मोटे अक्षरों और अधूरे वाक्यों में लिखा हुआ था, लेकिन मतलब यह था कि कान्फ़ेस का प्रभाव इलाके पर बहुत अच्छा पड़ा। कान्फ़ेस की सफलता किसान आन्दोलन की बढ़ती हुई शक्ति का प्रमाण है। अन्त में इस बात पर खेद प्रकट किया था कि प्रीतम-सिंह ने उनके साथ काम करना छोड़ दिया है।

“हूँ !” नारायण ने पत्र ताया को लौटा दिया और सोचने लगा।

“बस ऐसा ही लिखता है। पढ़ा भी कुछ ज्यादा नहीं। आहिस्ता-आहिस्ता सीख जायेगा।”

इन शब्दों ने नारायण को चौंका दिया। ताया की मूर्छों के नीचे एक मृदु मुस्कान थी और वह बेटे के पत्र को बड़ी उत्सुकता से देख रहा था, जैसे उसे सीने में रख लेना चाहता हो, जैसे वह कोई अद्वितीय महाकाव्य हो उसके एक शब्द में माधुर्य और नवीनता भरी हो। ताया कवि की इस अमर कृति की दाद देना चाहता हो; मगर उसके पास समुचित शब्द नहीं हैं।

“बहुत अच्छा लिखता है कृपालसिंह।” नारायण ने ताया के मनोभाव को समझकर कहा।

पिता का हृदय गद्गद् हो उठा। जो मुस्कराहट होंठों तक सीमित थी वह अब पूरे चेहरे पर फैल गई। नारायण मौन बैठा ताया की ओर देखता रहा और पितृ-स्नेह का रसास्वादन करता रहा। ताया की अंगुलिमां पत्र

को टटोल रही थी और आखिरी शब्दों पर घूम रही थी, जब वह जी भर कर देख चुका तो पत्र को सिरहाने तले रख लिया।

‘कुछ मालूम है, प्रीतमसिंह ने काम क्यों छोड़ दिया?’

‘मालूम तो बस यही है।’ ताया ने सरल मगर दार्शनिक भाव से कहना शुरू किया, ‘नौजवान था, जोश में काम शुरू कर दिया। जोश ठंडा पड़ गया फिर घर में जा बैठा।’

‘उसमें बहुत से गुण थे।’ नारायण बोला, ‘काम करते कभी थकता नहीं था, लेकिन भावुक बहुत था।’

‘उसकी इच्छा थी’ ताया बोला, ‘हर वक्त आगे-आगे रहे। हर एक बात में उसकी पूछ हो, चौधरी कहलाये। कान्फ्रेंस का प्रधान या सक्तर बने तो खुश रहता था।’

ताया थोड़ी देर चुप रहा। रजाई के एक धागे को अंगुलियों में घटते हुए फिर बोला—‘आदमी जब आदर्श के लिए काम करता है, ऐसी बातें नहीं सोचता। उसे अपने आपको मिट्टी में मिला दना होता है। अगर कोई साथी बुरा भी कहे तो चुपचाप सहना पड़ता है।’

ताया जो कुछ कह रहा था, वही भाव उसकी आंखों और उसके चेहरे से भी व्यक्त हो रहा था। नारायण सोच रहा था—यही वे सुनहले सिद्धांत हैं, जो वह पुस्तकों में पढ़ता आया है। ज्ञान जिन्दगी की कोख से जन्म लेता है। माक्स और लेनिन ने मजदूरों और किसानों के चेहरे पढ़कर ही तो पुस्तकें लिखी हैं।

‘दाना जब मिट्टी में मिल जाता है, तभी उसमें अंकुर फूटता है, फूल खिलते हैं फल लगते हैं। विस्तृत अनुभव ने ताया की आत्मा में दर्शन और वाक्य के सर्वोत्तम तत्त्वों का समावेश कर दिया था। उसके शब्दों में जगली फूल की सुगंध और सुपमा थी।

‘कामरेड, सचच कहता हूँ। मुझे कई बार ख्याल आता है कि जब तक पार्टी में काम करना शुरू नहीं किया था, तब तक जीवन व्यर्थ खोया। और जब से काम करने लगा हूँ ऐसा लगता है, जैसे जून सुघर गई है।’ वह कह रहा था और मुस्करा रहा था। मुस्कराहटें शब्दों में हल हो रही

थीं। वह रुका और आंखें दूर किसी शै पर गड़ाकर फिर बोला, “मुझे एक सीधा मार्ग दिखाई दे रहा है। जीते जी इस मार्ग से मुंह नहीं मोड़ूंगा।”

वह एकटक देखता रहा, मुस्कराता रहा। उसकी आंखों में एक दृढ़ संकल्प था। लगता था कि वह सृष्टि के आरम्भ से इसी मार्ग पर चलता आया है, चल रहा है और चलता रहेगा। रुकेगा नहीं; धकेगा नहीं।

“ताया, तुम कहां जाओगे? यह सीधा मार्ग किधर जाता है?” नारायण ने पूछा।

वह सोचने लगा। प्रश्न अप्रत्याशित था। तनिक रुककर बोला—

“मेरी बुद्धि इतनी तेज नहीं कि ठीक-ठीक बता सकूं। पर इतना जानता हू कि यह मार्ग ऐसी जगह जाता है, जहां अनाज के पके हुए खेत हैं, मोठे और रसदार फलों के पेड़ हैं, घी-दूध है और सतयुग बीत रहा है।”

उसके चेहरे से सुख और शान्ति झलक रही थी। वह अतीत के कथित सतयुग को भविष्य में मूर्तिमान हुआ देख रहा था।

“ताया, पर लोग कहते हैं कि सतयुग पहले बीत गया। अब कलियुग है और दुनिया विनाश की ओर जा रही है। फिर तुम्हारा सतयुग कैसे आयेगा?”

“आयेगा, आयेगा, जरूर आयेगा” चेतसिंह ने एक-एक शब्द पर जोर दिया और मुट्ठी भीचकर बोला, “हमारी हिम्मत से, किसानों, मजदूरों के संगठन से। झूठा सतयुग बीत गया, सच्चा सतयुग आयेगा।”

नारायण को ताया की बातों में मज्जा आता था। इसीलिए कुरेद-कुरेद-कर प्रश्न पूछता और जान-बूझकर उसे छेड़ता था।

“यह सच और झूठ की बात समझ में नहीं आई, ताया।”

“झूठ मैं इसलिए कहता हूँ” ताया बोला, “बीते हुए सतयुग की जितनी कहानियां मैंने सुन रखी हैं, उनमें कहीं भी सतयुग दिखाई नहीं देता, सब दिल बहलाने की बातें हैं। सारा सतयुग देवताओं और राजसों

के युद्धों से भरा पड़ा है। मैं समझता हूँ यह अमीरो गरीबों के युद्ध थे। अमीर देवता बन गये और गरीबों को राक्षस कह दिया 'ताया के स्वर में आवेश था बनावट नहीं थी, वह सहज स्वर में कह रहा था, "पिछले जमाने में गरीबों के दो बड़े जर्नल कुम्भ और सुम्भ हुए हैं। उन्होंने सब राजे महाराजों को हरा दिया था। आखिर राजा इन्द्र की सात लड़कियों ने उनसे युद्ध किया। वे जीत गईं, लेकिन मुकाबिले में मारी गईं। जहाँ-जहाँ वे मरी राजाओं और अमीरों ने उनके मन्दिर बनवा दिये और पूजा शुरू कर दी। हम गरीब लोग भी अब तक उन्हें पूज रहे हैं।"

नारायण का बचपन गाँव में बीता था। एक बूढ़ा ब्राह्मण कथा करते समय कहानियाँ सुनाया करता था। उसकी जबानी यह कहानी नारायण ने भी सुनी थी, लेकिन इस ढंग से सोचा नहीं था। उसे आश्चर्य हुआ कि ताया ने इन कहानियों में वर्गसघर्ष का पहलू ढूँढ निकाला है। उसके अपन मस्तिष्क में भी एक कहानी उभर आई। जब वह स्कूल में पढ़ता था, सातवीं श्रेणी की अंग्रेजी की पुस्तक में यह कहानी दर्ज थी।

एक धनी व्यक्ति ने भूखों में रोटियाँ बाँटीं। भूखे एक-दूसरे पर टूट पड़ते थे। लेकिन एक लड़की सबसे पीछे मौन और शांत खड़ी थी। उसे अन्तिम रोटी मिली। घर जाकर रोटी तोड़ी तो उसमें से दो अक्षरियाँ निकलीं। ईमानदार लड़की उन्हें लौटाने आईं लेकिन दानी सेठ ने कहा—
"यह तुम्हारे सतोप का फल है।"

रोटियाँ बाँटने वाला सेठ नारायण को वाकई देवता जान पड़ा था और वह लड़की के सदृश सतोपी और ईमानदार बनने की कामना करता रहा था। लेकिन अब—अब कहानी के याद आते ही भवें मुकड़ गईं, मन अवज्ञा से भर गया और वह सोचने लगा—'शब्दों में तीर, तलवार और तोप से भी अधिक शक्ति है। शोषकों ने सब शक्तियों की तरह इस शक्ति पर भी अपना अधिकार जमा रखा है। वे कहानियों द्वारा अपनी उदारता और दानशीलता का प्रचार करते हैं और अपनी शोषण-वृत्ति को भिड़के ढक की तरह छिपा रखते हैं।

"ताया कोई और बात?" उसने पूछा।

चेतसिंह को और बात कहने का अवसर नहीं मिला क्योंकि तारामिह ने कमरे में प्रवेश किया और उसके पीछे-पीछे जो दूसरा व्यक्ति, था रहा था उसकी ओर संकेत करके बोला—

“ताया हाथ दिखा लो, ज्योतिषी आया है। अच्छा आप भी यही हैं ?” उसका ध्यान नारायण की धोर आकर्षित हुआ।

तारामिह लपककर दूसरे कमरे से कुर्सी उठा लाया। ज्योतिषी जो उम्र पर विराजमान हुए और वह खुद नारायण के पास बैठ गया।

“इस बेचारे को कहां से पकड़ लाए। गलियों में जाने देते, औरतों के हाथ देखता और पेट का हीला करता। यहां इसे क्या मिलेगा ?”

“बड़ा विद्वान् ज्योतिषी है, काशीजी से पढ़कर आया है। ऐसा प्रश्न लगाता है कि अगला-पिछला सब हाल बता देता है।”

“बाजार से दो पैसे की पत्तरी लेकर बगल में दवा ली और वन गये ज्योतिषी और दावा यह काशी से पढ़कर आए हैं। सब भ्रूठ है। निरा पाखंड है।”

“न बाबा ऐसा न कहो”, ज्योतिषी ने मूंछों पर ताव दिया और कृत्रिम स्वर में कहा, “जब तक भगवान् का नाम है, संसार से सत्य भी नष्ट नहीं हो सकता। सभी ज्योतिषी भ्रूठे नहीं होते। और शास्त्र का कहना है कि अपना मन भ्रूठ न हो तो कोई भी भ्रूठ नहीं। तनिक हाथ दिखाओ, फिर देखना कि हमारे मुख से जो बात निकलती है, बावन तोले ठीक है।”

ज्योतिषी का कद ठिगना, चेहरा किताबी और उम्र चौतीस-पैंतीस साल के लगभग थी। माथे पर चन्दन का लेप, सिर पर भारी पगड़, जिसने गर्दन और माथे का काफी भाग और दोनों कान ढंक लिये थे। हर एक ज्योतिषी का साफा इसी ढंग से बंधा हुआ होता है। कान ढांपने का कारण शायद यह हो कि दूसरों की बात सुनने के बजाय अपनी बात उन्हें सुनानी होती है।

ज्योतिषी ने ताया के हाथ की रेखाओं को बड़े ध्यान से देखा और फिर कहा—“सरदार जी, सच-भ्रूठ तो परमात्मा जानता है और या फिर आपका मन ! हमारी विद्या और बुद्धि में जो बात आती है, वह हम

बताते हैं। रेखाओं से प्रकट होता है कि यह आत्मा धूमने में प्रसन्न रहती है। समुद्र पार की यात्रा कर आए हो और कितने ही वर्ष परदेश में बिताये हैं।”

“ज्योतिषीजी, आप बिलकुल ठीक कहते हैं, वृद्ध ने बीस साल मलय में बिताये हैं।” तारासिंह ने समर्थन किया और पलटकर कहा, “अब बताओ ताया तुम कहते थे सब झूठ है, निरा पाखंड है।”

ताया भ्रम गया; लेकिन दूसरे ही क्षण सम्भल कर बोला, “मालूम होता है कि तुम सब कुछ सिखा लाए हो।”

“वाह ! मुझे क्या पड़ी थी कि सिखाकर लाता। तुम खुद कोई प्रश्न पूछो, अगर ठीक बता दिया, फिर तो मानोगे।”

“सरदारजी, आपकी आत्मा को बहुत कष्ट सहन करने पड़े हैं। इसी से भगवान पर और सत्विद्या पर आपका विश्वास नहीं रहा।” ज्योतिषी बोला।

“विश्वास, फिस्वास जाने दो, यह बताओ कि मुझे अब किस बात की घुन है ?” ताया ने प्रश्न किया।

ज्योतिषी ने ताया के हाथ को दो-तीन बार उलट-पलटकर देखा। अपनी अध-खुली आंखों को झपकाया और फिर आवाज को महीन बनाकर यों बोलना शुरू किया जैसे शब्द आत्मा की अथाह गहराइयों से निकल रहे हों, “मन बड़ा चंचल है। उसमें नाना प्रकार के सकल्प-विकल्प भरे रहते हैं। अब आपके मन में यह घुन समाई है कि कुछ भी हो फिरगी की भाषा सीखनी है।”

नारायण हसा। तारासिंह ने उसका हाथ दबाकर चुप रहने को कहा; लेकिन वह खुद मुस्करा दिया।

“यह सब तुम्हारी शरारत है।” ताया ने उसे मुस्कराते देखकर कहा।

“शरारत !” उसने आश्चर्य प्रकट किया, “मैं और ताया से शरारत करूंगा, शर्म नहीं आएगी मुझे। ज्योतिषीजी, इन्हें कोई आगे की बात बताइये। बात ऐसी हो जो शीघ्र सच होने वाली हो।”

“आगे की बात बताना तो हमारी विद्या का सबसे बड़ा गुण है। यही न बतायें तो हमारी बात कौन सुनेगा?” ज्योतिपी ने बगल से पत्रा निकाला और उसे एक विशेष पृष्ठ पर खोलकर ताया के सामने रख दिया। “तो, सरदार जी। इस पर सोने या चांदी का सिक्का रखो। हम तुम्हें प्रश्न लगाकर आगे की बात बतायेंगे।”

सिक्के की बात सुनकर ताया सकपकाया। तारासिंह ने उसे कन्धों से पकड़कर कहा—

“सोने का नहीं तो चांदी ही का निकालो। जब तक मुफ्त बताया, मजे से सुनते रहे। दखना मांगी तो लगे बगलें भांकेने।”

“तुम जानते हो।” ताया बोला, “सोने का सिक्का देश में होता नहीं। दधन्नी-चवन्नी चांदी की थी, अंग्रेज ने वे भी नहीं रहने दी। फिर बताओ क्या निकालें? क्या रखें?”

“सरदारजी, सरदारजी! सोना-चांदी न सही, गिल्ट, जिस्त, तांबा—कुछ तो निकालो। हमें देश के सिक्के से मतलब है। आम खाने हैं, पेट नहीं गिनते।”

ज्योतिपी की आवाज बदल गई थी, ताया ने चौंककर उसकी ओर देखा और हठात मुंह से निकला—“तिलक !”

नारायण, तिलक और तारासिंह—तीनों एक साथ हंस पड़े। कमरा कहकहो से गूंज उठा।

तिलक भेस बदलने में पटु था। उसके साथ रहने वाले साथियों को भी धोखा हो जाता था। सबसे बड़ी पहचान कान पर चोट का निशान था और वह उसने पगड़ी से ढंक रखा था। एक बार पुलिस के मुकाबिले में पिस्तौल की गोली कान को छेदती हुई निकल गई थी। साफे को कान पर अच्छी तरह बंधा देखकर और तारासिंह की बातों से नारायण समझ गया था कि तिलक ने पुलिस की नजरों से बचने के लिए ज्योतिपी का भेस बनाया है।

“देखा ताया, बड़े चालाक बने फिरते हो।” तारासिंह ने कहा,

“इतनी बातें होने पर भी तिलक को नहीं पहचाना।”

“घोसा तो जरूर हुआ है।” ताया ने स्वीकार किया, “मैं तो समझा था कि सी० आई० टी० का कोई आदमी हमारा भेद लेने आया है।”

ताया ने अपनी बात विनोद-भाव से बही थी। कमरे में फिर ठहाका पड़ा।

साम्राज्य

खुफिया पुलिस के सिपाही ने अशोक के फँके हुए पुर्जों को जब घर
आकर जोड़ा, तो वह एक छोटा-सा पत्र बन गया—

तिलक भाई,

मैं 24 दिसम्बर को ललानी आ रहा हूँ। आशा है कि तुम मुझे वहीं
मिलोगे।

तुम्हारा

अशोक

पत्र संक्षिप्त था; लेकिन सिपाही प्रसन्न था, जैसे उसे असीम धन मिल
गया हो। पुलिस एक अर्सा से तिलक को खोज रही थी; मगर उसका कुछ
पता नहीं चलता था। अब इस सिपाही को सुराग मिला था और उसने
सोचा कि वह तिलक को गिरफ्तार करके पुरस्कार पायेगा और कोई ऊँचा
पद पाने का अधिकारी अलग बनेगा।

उस दिन 24 दिसम्बर था। अशोक को जाने के लिए तैयार देखकर
सिपाही ने अनुमान लगाया कि वह शायद रात नहीं भेज सका अथवा यह
उसकी नकल है, जो फाड़कर फेंक दी है। निस्मन्देह अब वह ललानी जा
रहा है, तिलक भी वही होगा। इन्हीं विचारों में मगन उमने दो सहायक
सिपाहियों को साथ लिया और ललानी को घेत पड़ा। वह चार-पाँच दिन
बराबर इधर-उधर भटकते रहे, न अशोक की कुछ तोज-खबर मिली और
न तिलक गिरफ्तार हुआ। वह अपना-मा मुँह लेकर अमकन सौट आए।

आशा उन्नति की लगा रखी थी उल्टा वारगुजारी पर खराब का निशान मिल गया। इन्चार्ज अफसर न डाट अलग बताई और एक सख्त ड्यूटी पर तब्दील कर दिया। अशोक की निगरानी पर कोई दूसरा सिपाही नियुक्त कर दिया गया।

जब नारायण तिलक से मिलकर लौट रहा था, तो यह नया सिपाही चौक के मोड़ पर खड़ा खैरातीराम से घुसकर पुसकर बातें कर रहा था। सिपाही ने कोई सवाल पूछा था कि खैराती की नजर नारायण पर पड़ी और वह सहसा लाल-पीला होकर बोला—‘मुझे क्या मालूम? कुत्त की तरह दूसरो के पीछे लगे रहते हो तुम भी कोई इन्सान हो।’

नारायण खैरातीराम को लडकपन से जानता था। वे दोनों एक ही स्कूल में पढते थे। नारायण उससे सिर्फ एक दर्जा आगे था। मैट्रिक पास करने के तीन चार साल बाद जब खैराती जीविका तलाश में लाहौर आया तो रहने के लिए मकान की आवश्यकता थी और वह अधिक किराया भी नहीं दे सकता था। नारायण ने दफ्तर के नीचे उसे यह सस्ता कमरा ले दिया था। लेकिन दरवाजे पर खुशिया पुलिस का स्थायी पहरा देखकर उसकी रूह काप जाती थी, वही उसके विरुद्ध रपट न हो जाए, किसी मुकदम में फास न लिया जाये। लेकिन दो चार महीने रहने के बाद जब मालूम हुआ कि जो लोग राजनीतिक कार्यों में भाग नहीं लेते, सिर्फ किरायादार की हैसियत से यहाँ रहते हैं उन्हें पुलिस कुछ नहीं कहती, तब उसकी जान में जान आई।

कोई सिपाही उससे कुछ पूछता तो वह बड़ी नम्रता और शिष्टता से अपनी अभिज्ञता प्रकट करता। शिष्टता और नम्रता का कारण यह नहीं था कि वह स्वभाव से ही नम्र था बल्कि रपट का भय उसे नम्र बना देता था। आज वह इतना उद्ब और मुह फट बन गया और पुलिस के सिपाही को—सरकार को—आखें दिखाने लगा तो उसका यह आचरण आश्चर्यजनक अवश्य था।

नारायण उसके बारे में उमी दिन में सशक और सदिग्ध था जब पार्टी का सदस्य बनने की इच्छा प्रकट की थी। भाई ने उसे

रखा था, घर पर बूढ़ी मां, पत्नी और दो बच्चे थे, थोड़ी-सी तनखाह में खर्च मुश्किल से चलता था।

लेकिन खैरातीराम ने उस दिन बड़ा दिल निकाला और गनी को डेढ़ रुपया मक्खन और टोस्ट के लिए दे दिया। उसे दो-तीन साल वहां रहते ही गए, पहले कभी पैसे की गुजाइश न निवाला सका, राजनीतिक कार्यों में कभी कोई दिलचस्पी नहीं ली, अपने कमरे में पड़ा विलों में बन्द कीड़े-मकोड़ों के सदृश जीवन व्यतीत करता रहा। फिर सहसा यह उदारता कहां से आ गई? और पार्टी में भर्ती होने की सनक क्यों सिर पर सवार हो गई?

नारायण स्कूल की जो बातें मूल चुका था, हठात् स्मरण हो आईं। बहुत-सी छोटी-छोटी ऐसी घटनाएँ थी, जिनके कारण स्कूल के तमाम लड़के खैरातीराम को घूँस और डोंगी समझते थे। एक घटना स्वयं नारायण से सम्बन्धित थी।

नारायण आठवें दर्जे में पढता था। उसने कुछ साधियों के सहयोग से एक सभा स्थापित की थी, जिनका उद्देश्य लड़कों में संगठन-शक्ति और भाषण-कला को उन्नत करना था। धीरे-धीरे सभी कक्षाओं के लड़के इसमें भाग लेने लगे। किसी बात पर भगड़ा हो जाने के कारण बड़ी कक्षाओं—नवी और दसवी के विद्यार्थियों ने अपनी सभा अलग बना ली। दोनों सभाओं में मुकाबिला होने लगा, आपस की भालोचना और व्यंग-प्रहार भी।

एक वार दसवी कक्षा के एक विद्यार्थी ने अपनी सभा में दूसरी सभा पर कुछ चोटें कीं। दूसरी ओर से उसका उत्तर आना आवश्यक था। खैरातीराम नारायण के पास आया कि मुझे एक करारा-सा मुंह-तोड़ उत्तर लिख दो, मैं सभा की बैठक में पढूँगा। बहुत आग्रह करने पर नारायण ने उत्तर लिख दिया। लेकिन जब मभा हो रही थी, उसके विवशता प्रकट करने पर नारायण ने खुद वह उत्तर पढ़ा। विरोधी पक्ष के एक लड़के ने उसी बैठक में प्रत्युत्तर भी पढ़कर सुना दिया, जिसमें नारायण पढ़ और उसकी सभा पर तीक्ष्ण कटाक्ष थे और खूब खिल्ली उड़ाई थी।

कहना नहीं होगा कि खैरातीराम ने नारायण का लेख पहले ही से विरोधी पक्ष को पढा दिया था और उसी के आधार पर यह प्रत्युत्तर लिखा गया था।

बात छोटी थी, लेकिन छोटी बातों का बड़ी बातों पर असर पड़ता है। छोटे आईने में मनुष्य की जो शक्ति दिखाई देती है, बड़े में वह बदल नहीं जाती।

खैरातीराम ने जिस दिन सेपार्टी का सदस्य बनने की इच्छा प्रकट की थी, नारायण को वह घटना सैकड़ों बार स्मरण हो आई थी और हर बार खैरातीराम का जो चेहरा उसने देखा वह चेचक के दागों से भरा हुआ, भद्दा और कुरूप था। उस दिन वह गनी से बड़ा धूल मिलाकर बातें कर रहा था, लेकिन नारायण के आते ही छिपकली की भाँति कमरे से निकल गया। आज भी अगर वह नारायण को न देखता तो सिपाही को कभी इस प्रकार का उत्तर न देता। माना कि उसे यही उत्तर देना था, फिर भी नारायण की ओर देख एक विशेष मुख मुद्रा बनाने की क्या जरूरत थी ?

इन बातों के आधार पर नारायण को विश्वास था कि खैरातीराम पुलिस वानों से मिल गया है। अशोक से बात हुई तो उसे भी यह तक ज्ञान हुआ और वे खैराती से सावधान और सतक रहने लगे।

नारायण चाहता था कि वह खैरातीराम को स्कूल के साथी के नाते समझाये कि मेहनत मजदूरी से जो कमा लेते हो, उसी पर सन्तोष करो, इस नीचता से धन कमाओगे तो पचेगा नहीं। मगर वह जानता था कि खैरातीराम धूर्त है, मानेगा नहीं, बल्कि कहेगा कि नारायण उस पर झूठा आरोप लगा रहा है। अतएव ठोस प्रमाण की जरूरत थी।

नारायण यह सोचता हुआ आ रहा था कि एक नन्ही लड़की दौड़ती हुई आई और उसकी टांगों से लिपट गई। नारायण ने चौंकर उसे देखा और प्यार करके पूछा — 'ऊपा, तुम कब आई ?'

'माताजी, राज, महेन्द्र और पूशी—सब आये हैं। अब हम यही रहा करेंगे।'

ऊपा बलवन्त की बेटा थी, उम्र सात-आठ साल होगी। राज उमसे

बड़ा था, दूसरा लड़का महेन्द्र ऊपा से तीन साल छोटा था और सबसे छोटी पुष्पा डेढ़-दो साल की होगी। सब उसे पूशी कहते थे।

राज ने जब घर जाकर अपील रद्द हो जाने की बात सुनाई तो मामी ने सहानुभूति प्रकट करने के बजाय बडबडाना शुरू कर दिया, शाम तक ननद-भावज में अच्छी खासी झपट हो गई। भाभी ने ननद को जी भरकर कोसा और साफ कह दिया कि जहां पति गया है, तुम भी जाओ, हमसे यह बोझ नहीं उठाया जाता। बलवन्त की पत्नी पार्वती भी सगर्वा और स्वाभिमानिनी थी, उसने सुबह उठकर सामान बांधा और यहां चली आई।

नारायण ने अदालत से लौटते ही नीचे का कमरा साफ करवा दिया था। गनी और बूटासिंह ने सामान भीतर रखवा दिया, जो इधर-उधर बिखरा पड़ा था। बच्चे सुबह से भूखे थे। पार्वती सामान योंही छोड़कर खाना तैयार करने लगी, उन्हें खिला-पिलाकर इत्मीनान से सामान जोड़ेगी। बरामदे में इंटें रखकर चूल्हा बना लिया था, उस पर सब्जी पक रही थी, पार्वती आटा गूंध रही थी और गनी चारपाई पर बैठा बच्चों से खेल रहा था।

“देखो न गनी! अब तो हमारा घर भी बच्चों का घर हो गया। खूब रोनाक रहेगी।” नारायण ने पार्वती को नमस्ते कहने और खैर-खबर पूछने के बाद कहा।

“पूशी महेंदी को मिट्टी कहती है।” गनी प्यार से पूशी की ठुड्डी पकड़कर बोला।

“मैं भी पूशी को फूशी कहता हूँ।” महेंदी ने होंठों को गोल बनाकर उत्तर दिया। फिर उसने अपना मुंह पूशी के नंगे पेट पर रखा और उसे प्यार से गुदगुदाने लगा। वह मुस्कराई और उसके सिर को अपने मन्हें हाथों से पकड़कर दूर हटाने लगी। लेकिन महेंदी के प्यार में अधिक जोश आ गया और वह उसे पूरे वेग से गुदगुदाने लगा। पूशी ने मुंह बिसोर लिया और करीब था कि वह रोने लगती। इस स्नेह-सबट से उसका उद्धार करने के लिए गनी ने महेंदी को बांह पकड़कर अलग करते हुए कहा—

“यह बड़ा शरारती है।”

महेदी ने भी अपने शरारती होने का भट्ट प्रमाण दिया। वह होठ विचकावर मुह चिढ़ाने लगा। नारायण और गनी हस पड़े, लेकिन पार्वती ने उसे डाटा।

“पगले ! अपने से बड़ो का मुह नही चिढ़ाया करते।”

महेदी खिलखिलाकर हसने लगा। उसने मा की सीख को भी हसी मे उडा दिया।

पार्वती ने आटा गूधकर सब्जी मे कडछी फेरी और परेधान वालो को ठीक करते हुए नारायण की ओर देखा। वह कुछ कहना चाहती थी; लेकिन कहते हुए भिभक रही थी। आखिर उसने आचल के एक सिरे को अगुली पर लपेटते हुए कहा—

“वयो नारायण, अब कही और अपील नही हो सकती ?”

“नही ! अपील अब कहा होगी ? हिन्दुस्तान मे हाईकोर्ट से बडी अदालत और नही।”

“राज कहता है कि गवर्नर और वायसराय के पास भी दरखास्तें जाती हैं। तुम मेरी ओर से एक दरखास्त लिख दो कि वे उन्हे रिहा कर दें।”

नारायण ने पार्वती की ओर देखा। वह एक मा थी, उसे अपने बच्चो की चिंता थी। वह एक पत्नी थी और उसे पति का जेल मे बन्द रहना सहन नही था। उसकी आखो मे अबसाद था। वह किसी-न-किसी आशा पर जीना चाहती थी, अनहोनी-से-अनहोनी बात का सहारा लेना चाहती थी।

“दरखास्त देने से रिहाई थोडी हो जायेगी। शायद वे दरखास्त को पढ़ें भी न।” नारायण ने गम्भीरता से कहा।

“अगर वे दरखास्तें नही पढते, तो किस लिए बंटे है ? क्या काम करते हैं ?”

पार्वती ने एक-एक शब्द पर जोर दिया। जैसे वह इन शब्दो मे अपने भीतर का सारा आक्रोश उडेल देना चाहती हो।

“गवर्नर और वायसराय का काम है, हिन्दुस्तान मे अंग्रेजी राज्य की

रक्षा करना, अगर कोई कानून तोड़े तो पुलिस और फौज की सहायता से उसे गिरफ्तार करना। सजा अदालत देती है, लेकिन सिफारिश उनकी पुलिस करती है। अदालत जो फैसला कर दे, उसमें वे दखल नहीं देते?"

"दखल दे तो सकते हैं?" पार्वती ने सहज बुद्धि से कहा।

"दखल दे सकते हैं।" नारायण बोला, "मगर क्या जरूरत पड़ी है उन्हें दखल देने की। कानून उन्होंने बनाये, अदालतें उन्होंने बनाईं। सब काम उनकी इच्छा के अनुसार ही रहा है।"

"पर सारे जज अंग्रेज तो नहीं होते?"

"जज अंग्रेज न हों, कानून तो अंग्रेज का है। वह हमारे देसी जजों को भी मानना पड़ता है और वे उसे अंग्रेज जजों से भी अधिक मानते हैं क्योंकि उन्हें अंग्रेजी सरकार ने जज बनाया है।"

"क्या उनके आस-औलाद नहीं?" पार्वती ने आविष्ट स्वर में कहा, "क्या उन्हें अपने भाइयों पर तनिक भी तरस नहीं आता?"

"ध्यान आता है उन्हें अपनी तनख्वाह का, अपने पद का, अगर वे देश का ध्यान करने लगे तो क्षण-भर भी इस पद पर न रह सकें।"

"हाय, हाय! कितने निर्दय होते हैं यह लोग। हार्डिकोट का वह जज मुझे मिल जाय तो पूछूं कि अगर तुम्हें कोई जेल भेज दे, तुम्हारे बच्चों का क्या बनेगा? मैं कहूँ ले जाऊँ इन बच्चों को? अब सम्भालो तुम्हीं, मुझसे नहीं पाले जाते।" पार्वती का कोमल चेहरा कठोर पड़ गया। कुछ क्षण मौन के बीते। सब्जी को कड़छी से देखकर वह फिर बोली—

"अगर कोई अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध सच्ची बात कहता है, तो सांप क्यों सूंध जाता है इन्हें? अपने भाइयों को सजा देते दामं नहीं आती?"

पार्वती पुराने ढंग की अपढ़ स्त्री थी। उसने जीवन की उस अवस्था में पग रसा पा जब जवानी ढलने लगती है, बच्चे जनते-जनते न सिर्फ उसका रूप ढल गया था, बल्कि शरीर भी कुछ ढीला-ढाला और तनिक स्पृस हो घसा था। उसके जीवन का सबसे बड़ा गृहस्थी बसाना और पति को प्रसन्न रखना था। ऐसा ही गया था। पति बंक में भौंकर था, डेढ़ सौ रुपये महीने।

उन्नति करके मैनेजर बन जाने की आशा थी। लेकिन जब देश में असहयोग आन्दोलन चला तो वह नौकरी छोड़कर जेल चला गया। पार्वती को इस बात से बड़ा आघात पहुँचा। उसके विचार घर की चारदीवारी तक सीमित थे, वह देश की बात कैसे सोचती? उसे मालूम नहीं था कि अंग्रेज का राज्य अदालतों और जेलों तक ही सीमित नहीं है, बड़ा लम्बा-चौड़ा जाल फैला हुआ है। लोग गरीब हैं, पेट के लिए आत्मा तक बेच देते हैं, अंग्रेज से घृणा करते हुए भी उसकी ज़ालिम सरकार के कल-पुर्जे बने हुए हैं।

पार्वती को इन लोगों से और देश से कोई सरोकार नहीं था। उसे सिर्फ अपना, अपने पति और बच्चों का खयाल था। उसे पति का जेल जाना कभी अच्छा नहीं लगा और उसके राजनीतिक कार्य के महत्त्व को भी उसने नहीं पहचाना। जब वह जेल से बाहर आता, लोग हार पहनाते, आदर-सम्मान करते, उसकी देश भक्ति और वीरता को सराहते, तो वह प्रसन्न होती। पर जब देश भक्ति के अपराध में उसे जेल भेज दिया जाता, तो उसकी प्रसन्नता ऐसे उड़ जाती, जैसे तनिक धूप लगने से कच्चा रंग उड़ जाता है। पहले जब बलबन्त जेल गया था, तो कैंद की अवधि लम्बी नहीं थी और इतने झुंझ नहीं थे, वह मँके घर रद्द आई थी।

लेकिन अब यह चार साल कैसे व्यतीत होंगे? अपील रद्द होने के बाद गवर्नर और वायसराय को दरवास्त भेजने की बात सोची थी, नारायण का उत्तर सुनकर यह आशा भी न रही। वह थोड़ी देर झुंझलाती और बड़बड़ाती रही, फिर चुप हो गई। य चुप्पी आक्रोश और विवशता की सूचक थी।

“देखो चाचा जी मैं पूगी का स्वेटर बुन रही हूँ।” ऊपा बिखरे हुए सामान में से ऊन और सलाइया ढूँढ लाई।

अच्छा तुम भी बुन लेती हो! बड़ी अच्छी लडकी हो, एक स्वेटर मुझे भी बुन देना।”

“हाँ, आपका भी बुनूँगी।” ऊपा ने कहा। वह उसके समीप ही चारपाई पर बैठ गई और स्वेटर बुनने लगी। वह सलाइयों को जल्दी जल्दी चलते

रक्षा करना, अगर कोई कानून तोड़े तो पुलिस और फौज की सहायता से उसे गिरफ्तार करना। सजा अदालत देती है, लेकिन सिफारिश उनकी पुलिस करती है। अदालत जो फैसला कर दे, उसमें वे दखल नहीं देते ?”

“दखल दे तो सकते हैं ?” पार्वती ने सहज बुद्धि से कहा।

“दखल दे सकते हैं।” नारायण बोला, “मगर क्या जरूरत पड़ी है उन्हें दखल देने की। कानून उन्होंने बनाये, अदालतें उन्होंने बनाईं। सब काम उनकी इच्छा के अनुसार हो रहा है।”

“पर सारे जज अंग्रेज तो नहीं होते ?”

“जज अंग्रेज न हों, कानून तो अंग्रेज का है। वह हमारे देसी जजों को भी मागना पड़ता है और वे उसे अंग्रेज जजों से भी अधिक मानते हैं क्योंकि उन्हें अंग्रेजी सरकार ने जज बनाया है।”

“क्या उनके आस-ओलाद नहीं ?” पार्वती ने आविष्ट स्वर में कहा, “क्या उन्हें अपने भाइयों पर तनिक भी तरस नहीं आता ?”

“ध्यान आता है उन्हें अपनी तनख्वाह का, अपने पद का, अगर वे देश का ध्यान करने लगे तो क्षण-भर भी इस पद पर न रह सकें।”

“हाय, हाय ! कितने निर्दय होते हैं यह लोग। हाईकोर्ट का वह जज मुझे मिल जाय तो पूछूं कि अगर तुम्हें कोई जेल भेज दे, तुम्हारे बच्चों का क्या बनेगा ? मैं कहाँ ले जाऊँ इन बच्चों को ? अब सम्भालो तुम्हीं, मुझसे नहीं पाले जाने।” पार्वती का कोमल चेहरा कठोर पड़ गया। कुछ क्षण मौन के बीते। सब्जी को कड़छी से देखकर वह फिर बोली—

“अगर कोई अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध सच्ची बात कहता है, तो सांप क्यों सूंघ जाता है इन्हें ? अपने भाइयों को सजा देते शर्म नहीं आती ?”

पार्वती पुराने ढंग की अपढ़ स्त्री थी। उसने जीवन की उस अवस्था में पग रखा था जब जवानी ढलने लगती है, बच्चे जनते-जनते न सिर्फ उसका रूप ढल गया था, बल्कि शरीर भी कुछ ढीला-ढाला और तनिक स्थूल हो चला था। उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न समृद्ध गृहस्थी बसाना और पति को प्रसन्न रखना था। ऐसा ही गृहस्थ उसे मिल गया था। पति बैंक में नौकर था, डेढ़ सौ रुपये महीना तनख्वाह मिलती थी,

उन्नति करके मंजेजर बन जाने की आशा थी। लेकिन जब देश में असहयोग आन्दोलन चला तो वह नौकरी छोड़कर जेल चला गया। पार्वती को इस बात से बड़ा आघात पहुँचा। उसके विचार घर की चारदीवारी तक सीमित थे, वह देश की बात कैसे सोचती? उसे मालूम नहीं था कि अंग्रेज का राज्य अदालतों और जेलों तक ही सीमित नहीं है, बड़ा लम्बा चौड़ा जाल फैला हुआ है। लोग गरीब हैं, पेट के लिए आत्मा तक बेच देते हैं, अंग्रेज से घृणा करते हुए भी उसकी जालिम सरकार के कल पुर्जे बने हुए हैं।

पार्वती को इन लोगों से और देश से कोई सरोकार नहीं था। उसे सिर्फ अपना, अपने पति और बच्चों का खयाल था। उसे पति का जेल जाना कभी अच्छा नहीं लगा और उसके राजनीतिक कार्य के महत्त्व को भी उसने नहीं पहचाना। जब वह जेल से बाहर आता, लोग हार पहनाते, आदर सम्मान करते उसकी देश भक्ति और वीरता को सराहते, तो वह प्रसन्न होती। पर जब देश भक्ति के अपराध में उसे जेल भेज दिया जाता, तो उसकी प्रसन्नता ऐसे उड़ जाती जैसे तनिक धूप लगने से कच्चा रंग उड़ जाता है। पहले जब बलवन्त जेल गया था, तो कैद की अवधि लम्बी नहीं थी और इतने झुंझ नहीं थे, वह मंजे घर रद्द आई थी।

लेकिन अब यह चार साल कैसे व्यतीत होंगे? अपील रद्द होने के बाद गवर्नर और वायसराय को दरवास्त भेजने की बात सोची थी नारायण का उत्तर सुनकर यह आशा भी न रही। वह थोड़ी देर झुंझलाती और बड़बड़ाती रही, फिर चुप हो गई। ये चुप्पी आक्रोश और विवशता की सूचक थी।

'देखो चाचा जी मैं पूंगी का स्वेटर बुन रही हूँ।' ऊपा बिखरे हुए सामान में से ऊन और सलाइया ढूँढ लाई।

अच्छा तुम भी बुन लेती हो! बड़ी अच्छी लडकी हो एक स्वेटर मुझे भी बुन देना।'

"हाँ, आपका भी बुनूंगी।" ऊपा ने कहा। वह उसक समीप ही चारपाई पर बैठ गई और स्वेटर बुनने लगी। वह सलाइयों को जल्दी जल्दी चलते

देख खुश हो रही थी। लेकिन नारायण का ध्यान उस ओर नहीं था, वह पार्वती को विपाद की मूर्ति बने देख रहा था।

पांच चिड़ियां चुग रही थी

एक चिड़िया उड़ गई; रह गई चार

चिड़िया, चिड़िया उड़ती जा !

उड़ती जा ! उड़ती जा !!

चार चिड़ियां चुग रही थी

एक चिड़िया उड़ गई, रह गई तीन

चिड़िया, चिड़िया उड़ती जा !

उड़ती जा ! उड़ती जा !!

ऊपा गाती और सलाइयां चलाती हुई बहुत ही भली लगती थी— बिलकुल मन्हीं चिड़िया-सी। उसे देखकर महेंदी भी प्रसन्न हो रहा था। लेकिन पार्वती अपने विपाद में डूबी हुई थी। वृक्षों की प्रसन्नता भी उसे गुद्गुदा न सकी। वह जेल में बन्द पति की बात सोच रही थी।

स्वही

प्रातः काल का समय था। हठी अपने पढ़ने के कमरे में बैठी कुछ सोच रही थी। वह एक शाल में लिपटी हुई थी। सिर्फ सुन्दर चेहरा दिखाई दे रहा था जिस पर चिन्ता अंकित थी। सामने मज पर एक पुस्तक खुली रखी थी। लेकिन जिस पृष्ठ पर खोली गई थी उसी पर खुली रह गई थी। वह पुस्तक कैसे पढ़े? मन कहीं और घूम रहा था। कोई मधुर स्मृति उसकी कल्पना को गुदगुदा रही थी और स्मृति का हल्का हल्का आलोक आँखों से निकलकर कमरे में फैल रहा था। सहसा उसने शाल पर फेंक दिया और उठकर अलमारी खोली। उसमें से एक चित्र निकालकर देखने लगी।

ड्रेसिंग टबल पर कद्रदादम आईना रखा था और आईने के सामने खिड़की थी, जो सर्दी के बावजूद खुली हुई थी। थोड़ी देर पहले वह इस खिड़की में खड़ी साथ वाले बाग का मनोरम दृश्य देख रही थी और खिड़की को उसी तरह खुला छोड़ दिया था ताकि शीतल समीर सुगंध में भरा हुआ भीतर आये। शीतल समीर के भोके भीतर आ रहे थे और वह उस चित्र को देख देखकर मुग्ध हो रही थी। चित्र का पौरुषत्व कितना आकर्षक था वह जितना उसे देखती थी उसकी आँखों में प्रेम और स्नेह की भावना गहरी होती जा रही थी। वह चित्र को देखते देखते आईने के सामने खड़ी हुई। शायद वह देखना चाहती थी कि इस प्रेम उद्गार ने उसे बलोपीटरा से अधिक सुन्दर बना दिया है कि नहीं। आईने में अपने

आपको देखा और वह मुस्कराई और चेहरे पर बिखरी हुई एक आवारा लट को संवारा ।

ठीक उसी समय अपने प्रतिबिम्ब के पहलू में एक दूसरा प्रतिबिम्ब दिखाई दिया । वह चौकी और मुड़कर पीछे की ओर देखा । खिड़की खुली पड़ी थी—दूर तक पेड़-पौधे और फूल थे, कोई व्यक्ति दिखाई नहीं देता था । रूही ने सोचा मुझे घोसा हुआ है; दूसरा प्रतिबिम्ब भ्रांति मात्र है, अथवा उसकी अपनी कल्पना की परछाई है । लेकिन इस भ्रांति में भी आकर्षण था ।

उसने अपनी आकृति फिर आईने में देखी, फिर वही प्रतिबिम्ब दिखाई दिया । वह फिर मुस्कराई । प्रतिबिम्ब भी मुस्कराया । यह मुस्कराहट जानी-पहचानी थी । रूही की कल्पना ने ठोस यथार्थ का रूप धारण किया । लेकिन जब पीछे मुड़कर देखा तो खिड़की खाली थी; वहां कोई नहीं था । जिसका प्रतिबिम्ब था, वह फिर छिप गया था; रूही से आंख-मिचोनी खेल रहा था । वह लपक कर कमरे से बाहर आई । खिड़की के निकट जाकर देखा; लेकिन उसकी निगाहें जिसे ढूँढ रही थी वह कहीं दिखाई नहीं दिया । वह चकित और अवाक् देखती रह गई । जी चाहता था कि जोर से आवाज दे । लेकिन उसके होठों पर भोर के मौन की छाप थी, बोलना चाहती थी, पर बोल नहीं सकी ।

“मी आऊ ! मी आऊ !” वृक्षों के झुंड में से मोर की मधुर ध्वनि गूँज उठी । मौन टूटा । रूही झूम उठी । उसने उल्लास में भरकर लम्बे-सयाह बालों पर हाथ फेरा और उसके समस्त शरीर में स्पंदन दौड़ गया । वह उन्मत्त-सी वृक्षों के झुंड की ओर बढ़ी, जैसे यह उसके पालतू मोर की आवाज हो और लपककर उसे गोद में भर लेना चाहती हो । आवाज स्नेह-सन्देश का मधुर आवाहन थी ।

मगर जब वह झुंड में पहुंची, वहां कोई नहीं था और “मी आऊ” की आवाज तनिक परे से आ रही थी । वह आगे बढ़ी तो आवाज और आगे चली गई । आखिर वह बाग के ऐसे भाग में पहुंच गई, जहां सर्वदा एकांत था और मुन्दर फूल खिले हुए थे ।

इखलाक सामने खड़ा मुस्करा रहा था। वे दोनों यही मिला करते थे।

रूही जिस आवाज के पीछे भाग रही थी, वह मोर की आवाज नहीं थी, बल्कि इखलाक खुद मोर की भाँति बोल रहा था। वह पक्षियों के बोलने की नकल इस उत्तम रीति से करता था कि असल और नकल में भेद करना कठिन था। रूही और वह बचपन से इकट्ठे खेले थे और वह उसके सामने पक्षियों की बोलियाँ बोलने का अभ्यास किया करता था। इसलिए वह उसके स्वर से भली भाँति परिचित थी और यह जानने में उसे तनिक भी कठिनाई नहीं होती थी कि इखलाक नकल कर रहा है, अथवा पक्षी बोल रहा है। बाग के सुन्दर वातावरण में फूलों और पक्षियों के बीच खेलते हुए, उनके हृदयों में एक दूसरे के प्रति प्रेम का स्वाभाविक विकास हुआ था और अब यह प्रेम इतना गहरा और गूढ़ था कि वे एक दूसरे को देखकर आध्यात्मिक सुख अनुभव करते थे।

राजनीतिक मतभेद के कारण जब इखलाक को घर छोड़ना पड़ा, तो वह रूही से छिप छिपकर मिला करता और उसे सदा मोर की आवाज से बुलाया करता था।

इखलाक आज बहुत दिनों के बाद आया था। उसे देख रूही खिल उठी। इखलाक की निगाहें उसकी आत्मा के कण कण को गर्मा रही थी, उसके भीतर आलोक भर रही थी। सूर्य की किरणों से प्रत्येक फूल-पत्ता चमक उठा था खिल उठा था। उसे अपनी बाँहें फैलती हुई मालूम हुईं, जैसे प्रेम उन्माद से लम्बी बाँहे और लम्बी हो गई हो और वह उन्हें इखलाक के गले में डाल देने के लिए विह्वल हो उठी हो। लेकिन सिर्फ बाँहें ही क्यों उसका सारा शरीर इखलाक के बाहुपाश में बंध जाने के लिए तड़प रहा था मचल रहा था। वह अपने सुन्दर, कोमल और अस्फुटित शरीर को मनोहर ढंग से सम्भाले इखलाक के सम्मुख खड़ी उसकी ओर ताकती रही। सिर्फ होठ खुले—

“मैं कितनी देर से बैठे तुम्हें याद कर रही थी और तुम्हारी तस्वीर देख रही थी।”

इखलाक ने एकटक उसकी ओर देखा और मुस्कराया—“तभी तो कहा है कि दिल को दिल से राह होती है।”

“इतने सच्चे न बनो।” रुही ने पहलू बदल कर कहा, “अगर अम्मी खत न लिखती, क्या तुम फिर भी आते?”

“खत तो महज बहाना था रुही।” इखलाक की आंखें उसके सुन्दर चेहरे पर गढ़ी हुई थी और बिना आंख ऋपकाये उसे देख रहा था, तुम्हारी मुहुब्बत में इतनी कनिश है कि मुझे कही से भी खींच ला सकती है। फिर खत भी तो तुम्हीं ने लिखवाया था, अम्मी को तो मेरा पता ही मालूम नहीं था।”

वे कितनी ही देर खडे एक-दूसरे की ओर देखते रहे और फिर हरी-हरी घास पर बैठ गये। रुही देख इखलाक की ओर रही थी और हाथ घास पर फेर रही थी, जैसे उसकी सूक्ष्मता और कोमलता को आत्मा में भर लेना चाहती हो। उसकी सुन्दर आंखों में जन्नत नाच उठी।

इखलाक ने जब से घर छोड़ा था अम्मी ने उसे पहली बार पत्र लिखा था और आग्रह किया था कि वह उसे मिलने आये। रुही ने बताया कि अम्मी याद करके तड़पा करती थी। नाराज वे इसलिए थी कि नाराजगी में बेटे की भलाई समझती थी। वे चाहती थी कि बेटा अपने नास्तिक विचारों को छोड़ दे और धर्म की राह पर चले और जैसे मा-बाप कहते हैं वंसा ही करे। लेकिन इखलाक ने घर छोड़ दिया, विचार नहीं छोड़े। कालेज का खर्च चलाने के लिए एक मित्र से सहायता लेता रहा और उसे जो मार्ग ठीक दिखाई दिया, उससे एक इंच भी इधर-उधर हटना गवारा नहीं किया। अम्मी तीन साल तक दिल कड़ा करके उसकी परीक्षा लेती रही। अब जब उन्हें विश्वास हो गया कि बेटा धुन का पक्का है, तो उसे अपने आप पर गर्व महसूस हुआ फैसला किया कि कुछ भी हो, वह मेरा बेटा है अगर वह अपने निश्चय पर दृढ़ है और उसके लिए दरबार छोड़ सकता है, माता-पिता का त्याग कर सकता है। तो मैं उसकी राह में रोड़ा नहीं बनूंगी।

तीन-चार दिन पहले वह रुही के कमरे में आई और उसके सुन्दर

कोमल बालो मे हाथ फेरते हुए बोली—“रूही बेटी ! मैंने इखलाक पर और तुम पर बड़ा जुल्म किया है। मा के लिए इस कदर सख्त रवैया मुनासिब नही था।” उसने बड़े समय से आसुओ को रोक रखा था। वह अधिक बात न कर सकी। सक्षेप मे कहा, “मुझे बताओ, वह कहा है, मैं उसे बुलाना चाहती हू।”

इखलाक रूही का फूफेरा भाई था। रूही उससे प्यार करती थी जब से उसने घर छोड़ा था, वह परेशान रहती थी। इखलाक तो अक्सर आकर मिल जाता था, लेकिन भविष्य घुघला दिखाई देता था और इस घुघलेपन मे फूफी के यह शब्द आशा की किरण बनकर आये। घोड़ी देर पहले वह फूफी के कठोर रवैया के बारे मे सोच रही थी। उसका ख्याल था कि यह रवैया कभी न बदलेगा। अब बदला देखकर उसे आश्चर्य भी हुआ और प्रगन्नता भी। श्रद्धा और स्नेह से उसने फूफी की ओर देखा, फिर बिना कुछ कहे वह हुमककर और सिमटकर उसकी गोद मे जा बैठी।

सरकार परस्ती उनके घराने की पुरानी रीति थी। सन् 1857 मे जब देशवासियों ने पहला स्वतन्त्रता-संग्राम लड़ा था तो उनके एक बुजुर्ग ने किसी बड़े अप्रेज अफसर के प्राण बचाये थे और लड़खड़ाती हथभूत को सहारा दिया था। अप्रेज ने इस 'वफादारी' के एवज मे उसे जागीर दी थी और नवाब की उपाधि से सुशोभित किया था। उसकी सतान को ब्रिटिश सरकार मे सदा उच्च पद मिलते आये थे। इस कुल का हर एक नौजवान फौज मे भर्ती होकर किसी-न-किसी बड़े पद पर पहुच जाता था और फिर सिविल एडमिनिस्ट्रेशन मे भी ले लिया जाता था। इस समय रूही का पिता प्रात न करता-धरता बना हुआ था। उसे अप्रेज का विश्वास प्राप्त था, सरकारी हल्को मे बड़ा सम्मान था। उसका ख्याल था कि उसने जो उन्नति की है, इस विदेशी सरकार मे पहले किसी ने नही की और न आगे करने की आशा है।

इखलाक का पिता—रूही का फूफा भी बहुत ही बड़ा अफसर था और उनके साथ एक ही कोठी मे रहता था। चूकि सरकार द्वारा उनका इतना सम्मान होता था, इसलिए ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति वफादारी

उनका ईमान बन चुका था। इखलाक की क्रांतिकारी प्रवृत्ति ऐसा अपवाद थी जिसे वे किसी तरह भी सहन नहीं कर सकते थे। उसके बागी रुझान का ज्ञान होने पर घर में बड़ा तूफान उठा था। वे जिस पेड़ की छाया में बैठे जिदगी के मजे लूट रहे थे, वह उसी को जड़ से काट देना चाहता था। यह अक्षम्य कृतघ्नता थी। अगर वह उनका अपना खून न होता, तो एक क्षुद्र कीड़े के सदृश्य पांव तले कुचल दिया जाता। राष्ट्रवादियों के नारों से चिढ़कर इस कुल के एक बुजुर्ग ने कहा था—“अगर हमारी अंग्रेजी सरकार मेरे हाथ में बंदूक थमाकर मुझे खुली छुट्टी दे दे तो मैं इन सबको पागल कुत्तों की तरह गोलियों से मून दूँ।”

इस कुल के किसी नौजवान के क्रांतिकारी बनने का अर्थ बर्फ से आग उत्पन्न होना था। घर वालों का विरोध सहन करना अत्यन्त साहस का काम था, और इखलाक ने इस साहस का परिचय दिया था। मां के नर्म व्यवहार से उसे प्रसन्नता हुई। वह उसे मिलने के लिए तरस रहा था, पत्र मिलते ही दौड़ा आया। रूही और इखलाक दोनों की राय थी कि अम्मी का विरोध खत्म हो जाने से सारे घराने का पचास प्रतिशत विरोध खत्म समझा जाये। वह दृढ़ संकल्प की स्त्री थी और उसे घर में बड़ा महत्व प्राप्त था। अब जो पचास प्रतिशत विरोध शेष रह गया था वह रूही के पिता के कारण था। बेटे की मुहब्बत ने मां को तो पिघला दिया; लेकिन बेटे की मुहब्बत शायद बाप को न पिघला सके। उसका सरकार से सीधा सम्बन्ध था; और ‘वफ़ादारी’ उसे घुट्टी में मिली थी।

रूही ने खुद इखलाक के विचारों का कभी विरोध नहीं किया था। वह जानती थी कि इखलाक मां के सदृश दृढ़ है और कोई प्रलोभन उसे अपने विश्वास में डिगा नहीं सकता। मगर आज उस यात्री की भांति जो आधा मार्ग चलने के बाद थक गया हो और चाहता हो कि मंजिल शेष आधा मार्ग चले बिना ही उसके समीप आ जाये, रूही ने इखलाक से कहा—

“अगर अब्बाजान नाराज ही रहें तो क्या होगा ?”

“तुम्हीं बताओ।”

“मैं क्या बताऊँ ?” रूही की पलकें झुक गईं, ^{उन्होंने तो कुछ कह} नहीं सकती, तुम्हीं अपनी जिद छोड़ दो” और फिर आंखों में आँसू भरते और पुतलिया घुमाकर कहा, “देखो इखलाक मेरी खातिरिये ही !”

इखलाक ने एक नजर रूही पर डाली। उसे देखा और देखता ही रहा। फिर गम्भीर और दृढ़ आवाज में कहा—“अगर यह महज जिद है, तो मैं कहूँगा कि तुम ने मुझे खाक भी नहीं समझा।”

फिर वह सहसा चुप और निश्चल हो गया। मुख-मुद्रा कठोर पड़ गई। आंखों के बदले हुए भाव से पता चलता था कि उसे रूही की बात से दुख पहुंचा है। जिस मनसूर ने दूसरों के इंट-पत्यरों की तनिक परवा नहीं की, वह अपने दोस्त शिबली के फूल भाग्य से तिलमिला उठा था। इखलाक को रूही के प्रेम पर गर्व था और वह समझता था कि यह प्रेम उसे नवशक्ति और साहस प्रदान करता है और आदर्श की ओर बढ़ने में समर्थ बनाता है।

उसने कई बार अपने त्रिदवास की व्याख्या रूही से की थी और उसे बताया था कि हम एक नया युग लाने और नया ससार निर्माण करने के लिए प्रयत्नशील हैं। यह ससार तुम्हारी आंखों में आवाद जन्म की तरह सुन्दर और समृद्ध होगा। इस संसार में मानव शोषण और शोषित नहीं होगा और उन्नति और आत्म-विकास के अवसर और माधन से वंचित नहीं रहेगा।

रूही यह बातें सुनती तो आनन्द से झूम जाती और इखलाक की आंखों में आंखें डाल देती। कितना सुख और वितना आह्लाद भरा हुआ था उन आंखों में, जो नए ससार के सपने देखती थी। वह उन आंखों में देखती रहती, उनके द्वारा अन्तःकरण में भाँककर देखती और दूसरे ही क्षण उमका सिर इखलाक के सीने पर टिक जाता, जैसे वह उमके हृदय की विस्तृता में खो जाना चाहती हो, इन आंखों में समा जाना चाहती हो।

रूही का यह प्यार इखलाक के सपनों को सुन्दर में सुन्दरतर बना देता था, उनमें मिठास भरता था और उसे आगे बढ़ने में सहायना देता था।

लेकिन आज स्वयं रूही कह रही थी—“तुम्हीं अपनी जिद छोड़ दो !”

क्या उसके सपने महज जिद थे ?

उसने मां को नाराज किया, घर छोड़ा । कष्ट सहन किए और अब भी कर रहा था । एक रूही थी, जिसने सबके छोड़ देने पर भी उसे नहीं छोड़ा था । लेकिन आज उसी के मुख से वह यह क्या सुन रहा था ।

“देखो इखलाक मेरी खातिर !”

वह जितना सोचता था, उतना ही उसका चेहरा भाव-रिक्त और कठोर होता जा रहा था । देखने को वह चुप और निश्चल था, परन्तु उसका मन चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था—“रूही तुम मेरा मार्ग नहीं रोक सकती । जब मैंने मां की मुहब्बत की खातिर इन सपनों को नहीं छोड़ा तो तुम्हारी खातिर भी नहीं छोड़ूंगा । मेरे यह सपने तुम्हारी आंखों से कही ज्यादा हसीन हैं ।”

उसने एक दृष्टि रूही पर डाली और गर्दन दूसरी ओर घुमा ली । सामने फूल खिले थे, पक्षी चहचहा रहे थे, लेकिन इखलाक की दृष्टि फूलों पर नहीं पड़ रही थी । वह शून्य में झांक रहा था । पक्षियों के गीत उसे सुनाई नहीं पड़ते थे ।

इखलाक की वह दृष्टि रूही के हृदय में कांटे की तरह चुभ गई । उसमें कितनी चुभन और शिकायत थी । रूही चुप और निस्तब्ध बैठी इस चुभन और इस शिकायत को महसूस करती रही । इखलाक की मनःस्थिति को समझने का प्रयास करती रही । लेकिन उसके अपने भीतर हलचल मची थी, उमसे यह चुभन सहन नहीं होती थी ।

“इखलाक !” गहसा रूही की आवाज वातावरण की निस्तब्धता में गूँज उठी जैसे उमने बहुत दूर से पुकारा हो ।

“इखलाक ने उमकी ओर देखा । रूही की निगाहें मिनीं और झुक गईं और उसने अपने बायें हाथ की गुनहली चूड़ी को दायें हाथ से घुमाते हुए कहा—“नाराज हो गये मुझ से !”

“नाराज !” इखलाक ने रूही की टोड़ी पकड़ कर उमका मुँह ऊपर उठाया । कितनी निरीहता थी रूही की आंखों में ।

“नहीं, मैं तुम से नाराज नहीं हो सकता रूही।”

“फिर खामोश बैठे क्या सोच रहे हो ?” रूही के स्वर में मृदुता लौट आई।

“मैं सोच रहा था,” इखलाक बोला “अगर हम माजी और हान के बजाये मुस्नकबिल की बात मोचें और तमाम बनी नो इसान के फायदे की बात सोचें तो हमारे सपने कितने मीठे और हमारे इरादे कितने अजीम हो।”

इखलाक का यह रूप कितना प्यारा था। रूही उल्लाम से भ्रूम उठी। वह इसी इखलाक से प्रेम करती थी, उस पर गर्व भरती थी। वह उसका मार्ग रोकने के बजाय उसकी सहायक बनना चाहती थी और उसक साथ कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ना चाहती थी।

“इखलाक! मुझे अपना नहीं अम्मी का ख्याल था। व हमारी खातिर कितनी दु खी रहती हैं।”

“मुझे भी उनका ख्याल है, रूही।” इखलाक बोला, ‘वह मा है, बेटे से मुहब्बत करती है। लेकिन जितना तुम मुझे समझ सकती हो, वह नहीं समझ सकती, वह मेरे ख्यालात को जिद कह सकती हैं, तुम नहीं कह सकती।’ इखलाक ने दृढ़ स्वर में कहा। एक क्षण मौन रहा और फिर बोला, ‘वह मजहब को मानती हैं, पर उसकी हकीकत को नहीं समझती।’ इखलाक चुप हो गया और अपनी भावनाओं को सयत करके फिर कहा—

“मुझे इस्लाम के उम इनकलाबी दौर पर नाज है जब हजरत मुहम्मद ने अरबों की वुतपरस्ती और घोमीदा समाज के खिलाफ आवाज उठाई थी। कुरेशी ताजरो और वुतपरस्तों ने उस आवाज को दबाने की लाख कोशिश की। लेकिन वह आवाज दब न सकी क्योंकि वह किसी शक्ति की नहीं, माहौल, हालात और वक्त की आवाज थी, हक की आवाज थी। गरीब और पसमादा अवाम ने उस आवाज को लदेव कहा और इस्लाम के भडे तले जमा हो गये। फिर इस आवाज ने जो तारीखी कारन में सरअजाम दिये, वे किसी पोशीदा नहीं हैं। जो लोग महज फौजी कमियाबियों को देखते हैं और कहते हैं कि इस्लाम तलवार के जोर से फैला है, वे उसके

इनकलाबी पहलू (को भूल जाते हैं। असल चीज को नजर अंदाज कर देते हैं। इस्लाम ने दुनिया को नया ख्याल और नया फलसफा अता किया है। इस फलसफे को लेकर इंसान आगे बढ़ा है, दुनिया आगे बढ़ी है और उसकी तहजीब आगे बढ़ी है।”

इखलाक चुप हो गया। उसका चेहरा गम्भीर और शांत था। उसकी आंखों में असाधारण चमक थी। उन विचारों की झलक थी, जिनके बल पर सैंटडो साल पहले इस्लाम फैला था, जिन्होंने दुनिया को बदल दिया था। रूही इस असाधारण चमक को देखती रही, प्रांति की अमर अभिलाषा को अपनी आत्मा में भरती रही।

“इस्लाम सिर्फ अबादत ही का मजहब नहीं था,” इखलाक ने फिर कहा, उसका मुखमण्डल चमक उठा था, “इस्लाम ने वक्त की जरूरतों को समझा था, जागीरदारी समाज के मसलों का हल पेश किया था। जब ईसाइयत बीमारियों को खुदाई कहकर बताकर तयहम्मात का प्रचार कर रही थी, दवाई इस्तेमाल करने वालों को दहरिया बताकर जिन्दा जला दिया जाता था, इस्लाम ने इन्नसीना को पैदा किया, जिसने जराहत और तबाबत पर मुस्निद किताबें लिखीं। इस्लाम ने इब्न अरशद ऐसे फिलानफर को पैदा किया, उमने अपने फनसफे की बुनियाद साइम पर रखी और उस वक्त ईनाई पादरी माइंस को मजहब का दुश्मन करार दे रहे थे।”

इखलाक ने एक निगाह रूही पर डाली। यह ध्यान से सुन रही थी और उसकी बानों में प्रभावित जान पड़ती थी। इखलाक फिर बोला —

“यह इस्लाम की आजाद ख्याली का करिश्मा है। लेकिन हमने इस्लाम की इस आजाद ख्याली को, इनकलाबी पहलू को भुला दिया है; हमारे लिए यह सिर्फ अबादत का मजहब बनकर रह गया है। और अबादत भी महज दिवावा है। हम इस्लामी ममावात का डिडोरा पीटते हैं और बड़े पशु से कहते हैं कि हम सब मुसलमान एक ही दम्तरख्वात पर खाना खा सकते हैं। लेकिन जाननी हैं कि आज हमारे इन देग में सार्लों-बरोड़ों मुसलमान ऐसे भी हैं जिनके पाम खाना ही नहीं है, दम्तरख्वात का तवात

ही पैदा नहीं होता। जो भीख मागकर खाते हैं, जो आधे पेट और नगे बदन सोते हैं, हम उन्हें रोद कर खुश हैं, अपनी इमारत पर नाज करते हैं। मगर इस इमारत की हकीकत क्या है? फिरगी की गुलामी। हम फिरगी के हाथ के मुहरे बनते आये हैं और बने हुए हैं।” रूही इखलाक के नजदीक खिच आई, इखलाक ने उसे अपनी बाहों में धामते हुए कहा “मुझे यह मुहरा बनना पसन्द नहीं रूही। इस्लाम ने इनकलाब की जो शमअ रोशन की थी, जो आजाद ख्याली दी थी, हमें उस रवायत को जिंदा रखना है।

रूही ने उसके सीने पर सिर रख दिया। इखलाक चुप हो गया। दोनों चुप थे, फिजा के विस्तार में भाक रहे थे। गुलाब के पौधों पर फूल खिले हुए थे, पक्षी चहचहा रहे थे और आकाश स्वच्छ और नीला था।

दवठनी

दो दिन से तांगे वालों की हड़ताल थी। शहर का कारोबार, आमद-रफ्त और चहल-पहल मध्यम पड़ गई थी। जिन सड़कों और बाजारों में “बची माई” और “देखी ज्यून जोगिया” का शोर रहता था सूने-सूने पड़े थे। बहुत दिनों से मवाद पक रहा था, क्षोभ भीतर ही भीतर बढ़ रहा था और अन्त में उसने हड़ताल का रूप धारण कर लिया।

म्यूनिसिपल कमेटी का अफसर तांगा पास करते समय हजार हुज्रतें करता, सौ नुकस निकालता; जब तक जेब गर्म न हो जाती, तांगा पास न होता। और कोचवान को जो वर्दी पहननी पड़ती थी, उसे पहनकर अच्छा-भला मनुष्य बंदर दिखाई देता था, उसका अब तक का ऐतिहासिक विकास इन तानाशाही कानून से एकदम रद्द हो जाता था। फिर पीतल का पास पगड़ी में लगा लेने से तो शकल और भी बिगड जाती थी। म्यूनिसिपैल्टी ने किराये के जो दर नियत किये थे, वे भी थोड़े थे और उसमें से भी ट्रैफिक के सिपाहियों को हिस्सा देना पड़ता था, वरना तांगा चलाना असम्भव था। चौक में देर तक रुके रहना पड़ता; स्टेशन पर नम्बर न आता; कोड़े की जरबें अकारण ही शरीर पर उभर आती और फिर चालान होने से जो आर्थिक चोट पड़ती, वह कोड़े की जरबों से कहीं अधिक कठोर और असह्य थी। कोचवानों की हालत खराब थी, वे किराया तनिक अधिक वसूल करने के लिए मुसाफिरों के आगे गिड़गिड़ाते, मिवाही की खुशामद करते, उसकी अनुचित गाली-गलौच और डांट-डपट सहते थे। उनके मन में

कटुता भर रही थी और घाव बढ रहे थे ।

इन घावों पर नमक छिड़कने के लिए म्यूनिसिपल कमेटी ने नया कानून पास किया कि पहली अप्रैल से तागे वाले चार के बजाय सिर्फ तीन सवारिया बिठा सकेंगे क्योंकि चार सवारिया बिठाने से कोचवान के लिए जगह नहीं रहती, बैठने वाली को कष्ट होता है और प्राय घटनायें भी इसी कारण होती हैं ।

तागे वाले भडक उठे । सवारिया कम होने से उनकी आमदनी भी कम हो गई थी । उन्हें यह छूट दी गई थी कि वे चार सवारियों का किराया तीन से वसूल कर सकते थे । लेकिन लोगों के पास पैसा कहा था ? बेकारी और बेरोजगारी का युग था । देश आर्थिक सकट में से गुजर रहा था । अक्सर निचले और मध्यवर्ग के लोग ही तागो पर चढते थे, वे अधिक किराया दे नहीं सकते थे । इसलिए वे तीन सवारियों का कानून मनसूख करवाने पर तुले हुए थे । इसके साथ ही उन्होंने वर्दी और अफसरों तथा पुलिस के रवैया के बारे में भी अपनी शिकायतें कमेटी और सरकार के सम्मुख रख दी थी ।

हडताल मुकम्मिल थी । कहीं एक तागा भी चलता नजर न आता था । अपनी इस एकता पर तागे वाले को प्रसन्नता से कहीं अधिक आश्चर्य हो रहा था । उन्होंने पहली बार हडताल की थी और पहली ही बार अप्रत्याशित सफलता प्राप्त हुई थी । दिन में तीन-तीन, चार-चार बार जलगे होते थे जिनमें रजाक अपने भाषणों में उन्हें बताया करता था कि हिन्दू, मुसलमान और सिख सब कोचवान एक हैं और उनके हिन एक हैं । इसके विपरीत शासकवर्ग और उन्हें लूटने वालों का दूसरा धडा है, उनमें हिन्दू, मुसलमान और सिख का कोई भेद-भाव नहीं, जैसे खाते समय पाचो अगुलियां एक होती हैं, वे खाने और लूटने में एक हैं ।

जो ड्राईवर सपाने थे, जिन्हें बोलना आता था वे खुद दिल के फफोले तोड़ते थे । जब वे अफसरों की ज्यादतियों और पुलिस के जुल्मों का जिक्र करते, तो उनके दावों में घावों की टीस ध्वनित हो उठती । कोचवान जब यह भाषण सुनते अपनी दाम्नि और सगठन देखते, तो उन्हें जमाना

बदलता हुआ जान पड़ता और वे महसूस करते कि दुःखों के अन्त होने का समय आ गया है, अब हम जुल्म और दमन से नहीं झुकेंगे। जब खून-पसीना एक करके रोजी कमाते हैं, तो किसी के दबाव में रहने का क्या मतलब ? हमें भी शान से रहना आता है और रहना हमारा अधिकार है।

जब से हड़ताल शुरू हुई थी, गनी का काम बहुत बढ़ गया था। उसे एक क्षण भी फुसंत नहीं मिलती थी। वह नियत समय से पहले जलसे के स्थान पर पहुंच जाता, दरियां बिछवाता, स्टेज बनवाता और फिर उस पर खड़े होकर विगुल बजा-बजाकर लोगों को जमा करता। भाषण शुरू होने से पहले वह अपने गीत सुनाता और लोग उसकी प्रसिद्ध कविता "एन्हा टोडियां ने केहड़े पत्तन, मल्ले" सुन-सुनकर लोट-पोट हो जाते।

जब जुलूस निकलता, गनी जन सैनिक की बर्दी पहने, विगुल बजाता हुआ उसके आगे-आगे चलता। उसकी छाती तन जाती और विगुल के स्वर को ऊंचा उठाने के लिए वह फेफड़ों की समस्त शक्ति खर्च कर देता, लाल भंडे को हवा में लहराते देख खुश होता, उमका कदम फौजी ढंग से उठता और बहुत से लोगों को अपने पीछे कदम उठाते देखकर गर्व से फूल जाता, जैसे कोई अजित सेना किसी बड़ी मुहिम को मर करने बड़ी चली जा रही हो। जुलूस नारे लगाता—“तांगा यूनियन जिदावाद !” “हड़ताली कोचवान जिदावाद !” वातावरण मुखरित हो उठता, जीवन की चंचल और विद्रोही तरंगें इधर-उधर फैल जाती।

जुलूस के लीडर भी जुलूस के साथ-साथ चलते। मदन आगे-पीछे दौड़ता-फिरता; कोचवानों को एक-दूसरे के पीछे पंक्तियों में चलने की सीख देता और नारे लगाने के लिए जोश बढ़ाता। एक नारा उसने खुद बनाया था—“म्यूनिमिपैलटी गर न झुकेगी, हड़ताल हमारी नहीं खुलेगी।” वह यह नारा बार-बार लगवाता और जब लोग इसे दोहराते तो उसका मन गर्व से भर जाता, अपनी इस उपज पर वह फूला न समाता और बड़ी शान से कहता—

“रजाक ! हमारी तनजीम बहुत अच्छी है। आदमी को काम करने

का आता हो तो कोई भी हड़ताल नाकामयाब नहीं हो सकती। मैं शर्तें बदता हूँ कि हमारी यह हड़ताल कामयाब होगी और मैं इसे कामयाब बनाने के लिए अपनी जान तक लडा दूंगा।”

लेकिन मदन को जान लडाने का सौभाग्य प्राप्त न हो सका। तीसरे दिन दोपहर के बाद हड़ताल यकायक खुल गई। हड़तालियों का सगठन अचानक टूट गया। वे चकित रह गये, जब उन्हें कुछ तागे सड़को पर चलते दिखाई दिये। जब सेना की पकितयो मे दरार पड जाती है तो शत्रु का साहस बढ जाता है, साहमी सैनिक भी निराग होकर मोर्चा छोडने लगते है। अब भी ऐसा ही हुआ। किसी के करते कुछ न बन पडा। न सीन सवारियो का कानून रद्द हुआ। और न कोई माग पूरी हुई। हड़ताल अपने आप टूट गई। जो लोग कल तक अपने सगठन और शक्ति पर फूले नहीं समाते थे, सहमा झुक गए। दोपको की जीत हुई और शोषित हार गये।

नारायण दफतर में बँठा खबरें लिख रहा था कि प्रेस की भेज दी जायें, इतने मे गनी बहा आ गया।

“क्यो गनी! कोई खास बात तो नहीं हुई?” नारायण ने पूछा।

“हड़ताल टूट गई।” गनी ने उत्तर दिया।

“टूट गई!” नारायण चौंका, “वह कैसे?”

‘यस टूट गई।’ कहकर गनी मुस्कराया जिसका अर्थ था कि इससे अधिक वह कुछ नहीं जानता। उसने अलमारी खोलकर बिगुल ऊपर के खाने में रख दिया और वर्दी उतार सादे कपडे पहन लिए। उसके हीठ मौन थे और मुखमुद्रा शात। सिपाही रणक्षेत्र से लौटा था। वह साहस स लडता रहा था, मुहिम को सफल बनाने के लिए उसने कोई कसर उठा नहीं रखी थी। मगर वह सफल न हो सकी, इसमे सिपाही का कोई दोष नहीं था। गनी बीनियो बार ऐसी मुहिमों पर जा चुका था, कई बार हार-जीत के खेल देख चुका था। एक ही मुहिम पर तो सफलता-असफलता निर्भर नहीं होती। उम मजिन पर पहुचने के लिए ऐसी कितनी ही मुहिमों का मामना करना पडेगा, वही हारेगा और कही जीतेगा। इसलिए वह

हताश और निराश नहीं था।

“नमस्ते।”

“नमस्ते।”

“ओहो महेंदी ! सुनाओ छोटे जर्नेल खुश तो हो।”

गनी कपड़े बदलते-बदलते चीक उठा और नीचे झकककर खुशी से चिल्लाया - “अशोक भैया !”

अशोक देहात से लौट कर आया था और महेंदी को गोद में लिए पार्वती से बातें कर रहा था। गनी और नारायण झट नीचे आये और अशोक से देहात की और किसान सभा की बातें सुनते दिन बीत गया।

दूसरे दिन पराशर को जब अशोक के लौटने की सूचना मिली तो वह उससे मिलने दफ्तर में आया; लेकिन अशोक वहाँ मौजूद नहीं था। उसने नारायण से बातें शुरू की।

“सुना है, अब सोशलिज्म की मु...मुस्तलिफ शाखें निकल रही हैं— ब्राह्मण-सोशलिज्म, खत्री-सोशलिज्म, मु...मुसलिम-सोशलिज्म, शैया-सोशलिज्म, और सुन्नी-सोशलिज्म—हर एक बुद्धमल बघाऊमल अपना-अपना सोशलिज्म अलग बनायेगा।”

“पराशरजी ! यह तीरअन्दाजी कहां हो रही है ?” नारायण ने मुस्करा कर दरियापत किया।

“कामरेड न...नारायण यह तीरअन्दाजी नहीं हकीकत है। जब हमने फैसला कर लिया है कि बुद्धमल बघाऊमल बने रहना है, दु...दु... दुनिया की कोई ताकत कोई फलसफा हमें नहीं बदल सकता। हमने कसम खाई है कि हर एक चीज को मजहब के कांटे में त...तोलना है। अगर सोशलिज्म को भी इस कांटे में न तो...तोला गया त...तो हिन्दुस्तान किया हुआ।”

“जहां तक सोशलिज्म को धार्मिक रंग देने की बात है।” नारायण ने गम्भीरता से कहा, “वह हिन्दुस्तान ही में नहीं, दूसरे देशों में भी दिया गया है। जिम तरह यहां वेदों और शास्त्रों में वैदिक सोशलिज्म की खोज हो रही है और इसलामी किताबों के हवाले से इसलामी सोशलिज्म के षर्

हो रहे हैं, उसी तरह योरुप मे ईसाइयो ने ईसाई सोशलिज्म पहले ही से ईजाद कर रखा है। मगर उनका यह सोशलिज्म हवा मे बाते करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वे न वर्ग-सघर्ष को मानते हैं और न यह समझते हैं कि पूजीवाद के उपरांत साम्यवादी व्यवस्था अनिवार्य है.....”

“मजहबी लोगो की बात छोडिये, वे त तो अपनी रट लगाते ही रहते हैं।” पराशर ने बीच ही मे टोका, “अब हमारे अपने अन्दर न .. नये सोशलिस्ट पैदा हुए हैं।”

“वे कौन से सोशलिस्ट हैं ? यही मैं सुनना चाहता हू।” नारायण बोला, “मैंने तो पहले ही कह दिया था कि हजरत यह तीरअन्दाजी कहा हो रही है ?

“कामरेड ! मजाक की बात नहीं। मैं आपको सजीदगी से बताना चाहता हू कि तागेवालो की हडताल को असफल बनाने मे रजाक का हाथ है।”

“वह कैसे ?”

“म्यूनिसिपैलटी के मुसलमान एग्जीक्यूटिव आफीसर ने रजाक को बुलाकर कहा कि तुम मुसलमान होकर भी यह ध्यान न .. नहीं रखते कि एक मुसलमान भाई से ट टक्कर ले रहे हो। फिर मेरी ही बात नहीं, तागो के ड्राईवर और मालिक अक्सर मुसलमान हैं, तुम उन्हें नु... नुकसान पहुचा रहे हो। तागे बन्द होने से जहा मुसलमानो का रोजगार बन्द हुआ है वहा असो के मालिक हिन्दू सरमायेदारो को फ .. फायदा पहुच रहा है। इसलिए हडताल जल्दी ख .. खत्म करो— जल्दी।”

और पराशर जल्दी-जल्दी बीडी के कश लगाने लगा।

‘ माफ कीजिएगा। अगर आप इस बात को सच मानते है, तो आप यकीनन इस मामले मे बुद्धमल बघाळमल बने हैं” नारायण मुस्कराया और फिर गम्भीर होकर बोला, “रजाक एग्जीक्यूटिव आफीसर से मिला तक नहीं। हडताल असफल रही तो इसके दूसरे कारण हैं। तागेवालो को

बाल-बच्चों का पेट पालना होता है, वे ज्यादा दिन बेकार नहीं रह सकते। उन्हें महारा देने के लिए यूनिजन के पास काफी पैसा नहीं था और न इस बारे में हम लोग उनकी कुछ सहायता कर सके। दूसरे हड़ताली कमरे में ड्राइवरों के अलावा तांगों के मालिक भी शामिल थे। एक मालिक के पास पंद्रह-पंद्रह, बीस-बीस तांगे हैं। वे घोड़ों और कोचवानों का खर्च बरदाश्त करने को तैयार नहीं थे। तीन सवारियां होंगी तो नफा पाच की जगह चार हो जाएगा। अब रकम जेब से जाती है। रजाक नहीं चाहता था कि हड़ताली कमरे में मालिकों को भी लिया जाये, लेकिन मदन ने आप्रह किया।”

“और म...मदन ही ने मुझे यह बात बताई है कि ह...हड़ताल की असफलता में रजाक का हाथ है।”

“और आपने विश्वास कर लिया जिसका मतलब है कि आप बुद्धमल बघाऊमल बने। . . .”

“यह त...तो वाकई गलती हुई।” पराशर ने मुस्कराते हुए स्वीकार किया। “इसका म...मतलब है कि मदन...”

उसकी बात अघूरी रह गई। ऊपा ने कमरे में प्रवेश किया और आते ही बोली—“देखो, बीबीजी मेरे लिए गुड़िया लाई हैं” और वह उचककर नारायण की गोद में जा बैठी।

“अच्छा, मुझे नहीं दि...दिखाओगी गुड़िया” पराशर ने कहा और ऊपा को पकड़कर अपनी गोद में बिठा लिया। वह पराशर को जानती तो थी; लेकिन नारायण की तरह उससे खुली नहीं थी। वह लजाती हुई उसकी गोद में चुप बैठी रही। पराशर बच्चों से प्यार करता था। उमने किम्क दूर करने के लिए एक दुबन्नी जेब से निकाली और ऊपा को देते हुए कहा—“लो, एक गुड़िया और मंगवा लेना। इस बेचारी का अकेले जी नहीं लगेगा। दोनों सखियां मिलकर खेला करेंगी।”

ऊपा उल्लास में भरकर नीचे दौड़ गई। लेकिन दूमरे ही क्षण लौट आई बिना कुछ कहे दुबन्नी पराशर को लौटाने लगी।

“क्यों ऊपा, क्या बात है?” नारायण बोला।

‘बीबीजी मना करती हूँ।’

पराशर ने दुवन्नी नहीं ली, वह नारायण का मुह देखने लगा।

‘चलो मैं कहता हू बीबीजी से। नारायण ऊपा को लेकर नीचे आया पार्वती से कहा—“भाभी, तुमने मना क्या कर दिया ? पराशर ने प्यार से दी है।”

‘उनके प्यार का अपमान मैं नहीं करती।’ पावती बोली, पर इस तरह बच्चों की आदतें बिगड़ जाती हैं। यहाँ बीसियों आदमी आते हैं हर एक से भिलारियों की तरह मागते फिरेंगे ?’

नारायण ने पार्वती की ओर खा। एक मिनट मौन रहा और फिर धीरे से बोला—

‘अच्छा, अब रहने दो। आगे को हम ध्यान रखेंगे।’

कुम्हार का गधा

सर्दी का यौवन ढल चुका था। खट्टो और सहस्रतों पर नई-नई कोम्पलें फूट रही थी और बसन्त के आगमन की सूचना दे रही थी, इतवार का दिन और मार्च का महोना था। पार्टी की जनरल बॉडी की मीटिंग बुलाई गई थी, जिसमें लगभग सभी मेम्बर सम्मिलित हुए थे। खैरातीराम को भी दफ्तर से छुट्टी थी और वह चाहता था कि उसे मीटिंग में बैठने की आज्ञा दी जाये। मगर उसे अभी तक मेम्बर नहीं बनाया गया था, इसलिए आज्ञा न मिल सकी। बैसे उसके मन में आजादी की अभिलाषा और समाजवाद के उच्च आदर्शों के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया था। वह पार्टी के कामों में दिलचस्पी लेने लगा था और कुछ लोगों से निजी सम्बन्ध भी स्थापित कर लिया था। वह उनके साथ मिलता-जुलता था, उनके राजनीतिक विचार सुनकर मुग्ध हो उठता था और आजादी के नाम पर उल्लास और गर्व से कहता था—

“मुझे तो अब मालूम हुआ कि मैं अंधेरे में भटक रहा था; बलकीं करके, कीड़े-मकोड़ों की तरह रेंग-रेंगकर उग्र बरवाद कर रहा था। जीना तो आजादी के लिए संघर्ष करना और मृत्यु से आँखें लड़ाना है।”

हीरे में आभा न हो तो वह चमकता हुआ पत्थर है। नारायण ने खैरातीराम के मुह से यह शब्द सुने, तो भट उसकी वह आकृति मस्तिष्क में उभर आई, जब उसने पुलिस के सिपाही को मुंह बनाकर उत्तर दिया था; शायद उसने मृत्यु को आँखें दिखाई थीं। यह शब्द सुनकर नारायण

का मदेह और भी दृढ़ हो गया। वह जानता था कि खैरातीराम म मृत्यु को आखें दिखाने का जीवट नहीं है। अगर शब्दों के पीछे सत्य न हो, चरित्र की पुष्टि न हो, तो वे व्यर्थ हैं, महज बकवाद हैं। शब्द मनुष्य को महान् नहीं बनाते मनुष्य शब्दों को महान् बनाता है।

खैरातीराम को जब मीटिंग में जाने की आज्ञा न मिली तो वह बड के नीचे बेंच पर बैठ गया और नमं-नमं कोम्पलो को—उन कोम्पलो का देखने लगा, जिनकी रगों वसत का सुखें खून मचल रहा था—देखने लगा, देखता रहा। उसकी दृष्टि बार-बार पार्टी के दफ्तर की ओर भी उठ जाती थी। बरामदे के आगे साईनबोर्ड लटक रहा था। साईनबोर्ड पर लिखे हुए मोटे-मोटे अक्षर उसने कई बार पढ़े थे। पढ़ने से प्रयोजन क्या था, यह वह खुद नहीं समझता था। शायद उसे समय बिताना था, शायद उसे इन अक्षरों से लगाव हो गया था। अचानक एक कोम्पल टूटकर उसकी झोली में आ गिरी। उसने बोर्ड पढ़ना छोड़ दिया और कोम्पल को चुटकी में लेकर मसलने लगा। वह मन म बुछ सोचता और कोम्पल को बिना देखे ही मसलता रहा—इतना मसला कि वह एक वेढव गोली सी बन गई। उसे देख अनुमान लगाना असम्भव था कि एक मिनट पहले वह बे-रग और भद्दी गोली, जिसे खैरातीराम अनमना-सा मसल रहा था, नवजात कोम्पल थी—वसन्त का मुन्दर प्रतीक थी। उसकी अगुलिया तर थी। वे उस रक्त से भीग गई थीं, जो कोम्पल के हृदय से निकला था।

पूर्व से वायु का एक भोका आया, टहनिया हिली और उनस एक सगीत फूटा। वायु का वेग बढ़ता गया, जुबिश तेज होती गई और सगीत फैलता गया। वातावरण मुखरित हो उठा, जैसे तेज पत्ते और कोम्पलें मिलकर गा रही हों समस्त प्रकृति घोपणा कर रही हो, 'एक कोम्पल के मसल देने से वसन्त का आगमन नहीं रुक सकता। वसन्त आ रहा है।' भोका गुजर जाने के बाद फिर सब निस्सन्ध हो गया। पत्ते और टहनिया अचल थी वृक्ष शान और गम्भीर थे। उन्हें वसन्त के आगमन पर दृढ़ विश्वास था।

प्यारह बजे के लगभग मीटिंग खत्म हुई। लोग नीचे उतरे और अपने-

अपने घरों को जाने लगे। खैरातीराम भी उठा और परिचित सदस्यों से बातें करने लगा, काफी दूर तक उनके साथ-साथ गया और जब लौटकर कमरे में आया तो किवाड बन्द करके किसी आवश्यक कार्य में व्यस्त हो गया।

एक बजे के करीब वह शाहआलमी दरवाजे के बाहर एक होटल पर आया। यह एक सस्ता होटल था, जहां वह खाना खाया करता था। आज वह वहां से सीधा घर लौटने के बजाय शहर की ओर चला और दरवाजा पार करके बाजार में चलने लगा। वह बड़े ध्यान से इधर-उधर झांक रहा था और कभी-कभी मुड़कर पीछे भी देख लेता था। थोड़ी दूर चलने के बाद वह एक पंसारी की दूकान पर रुका, दो पैसे की छोटी इलायची खरीदी और मुंह में रखकर बाजार में आगे-पीछे दोनों ओर दूर तक देखा, खूब गहरी नजर डाली और फिर इत्मीनान से चलने लगा।

शहर की विभिन्न गलियों, बाजारों और मुहल्लों को पार करता हुआ वह हीरा मण्डी मे से गुजर कर रावी रोड पर पहुंचा। उसने कोई चीज देखी नहीं, कही रुका नहीं, इस चिलचिलाती धूप में यों निरुद्देश्य धूमने से प्रयोजन? अगर कोई परिचित मिल जाता और पूछता कि किधर से आए हो और कहां जा रहे हो? तो शायद वह कोई उत्तर न दे पाता, आर्ये-बार्ये-सायें देखने लगता। वह जिस मार्ग से आया था, उसी मार्ग से लौट सकता था, सदा लौटता था और आज भी लौट सकता था। फिर इतना लम्बा चक्कर काटने से मतलब? अब भी वह सड़क पर चलने के बजाय मुदंघाट के निकट से मोहनी रोड को जो रास्ता जाता है, उस पर चलने लगा। थोड़ी दूर चलकर फिर एक मोड़ आया, वहां से वह दाईं ओर धूमकर बस्ती में घुस गया और गलियों में चलने लगा, जैसे कोई सौदाई हो, जैसे धूमना मात्र ही उसका काम हो।

वह सहसा एक गली की नुबकड़ पर रुक गया। दाईं ओर के ऊंचे-ऊंचे मकानों पर नजर डाली। लाल रंग के एक मकान की ओर उसने खास नजर से देखा। जाने क्या सोचकर उसने अपने सदैव कोट की जेब से एक कागज निकाला, जो लिखा हुआ था; लेकिन लिखते समय शायद कोई

आवश्यक बात छूट गई थी। उसने कागज को दीवार पर टिका कर भूसी हुई आवश्यक बात पेंसिल से लिख दी।

लिखने के बाद उसने गर्दन पीछे की ओर घुमाई और कागज को दीवारजेब में रखने के लिए तह किया। अचानक उसकी नजर ताया चेतसिंह पर पड़ी। वह जिस गली से खुद आया था, चेतसिंह उसी की नुक्कड़ पर खड़ा था। उसने ताया को पहले क्यों नहीं देखा? क्या आँखें मीच रखी थी? लेकिन शायद ताया ने उसे नहीं देखा क्योंकि वह उस कुम्हार से बातें कर रहा था, जो मिट्टी से लदा हुआ गधा लिए इधर आ निबला था। औरतें लीपने-पोतने के लिए मिट्टी गिरवा लेती थी। कुम्हार इसी मतलब के लिए मिट्टी बेचने आया था। अधिक पैसे पा लेने की नियत से गधे पर इतनी मिट्टी लाद रखी थी कि बोझ के भारे उसकी टाँगें लडखड़ा रही थी।

“मिया! गरीब जानवर पर भी कुछ रहम किया करो। इतनी मिट्टी इस पर लाद रखी है कि बेचारे में चला तब नहीं जाता।” चेतसिंह ने कुम्हार से कहा।

“सरदारजी, रहम-वहम सब कहने की बातें हैं। आपने इस पर लादी हुई मिट्टी तो देख ली, लेकिन इसे खाते नहीं देखा। अगर मैं मिट्टी सादते वक्त यह खयाल रखूँ कि बेचारा कमजोर है, उठा नहीं सकेगा, तो खाने के वक्त भी यह खयाल रखना पड़ेगा कि ज्यादा न दूँ, बेचारा कमजोर है, कहीं बदनहजमी न हो जाये। मैं जितना पेट भरने को देता हूँ, उतना धाम भी लेता हूँ।”

कुम्हार मुस्कराया और गधे को हँकता हुआ आगे चल दिा और ताया निरुत्तर उसकी ओर देखता रह गया।

ताया जब कुम्हार से बातें कर रहा था, खैरातीराम तेज-तेज दग भरता हुआ, गली में घुस गया। उतावली में कागज जेब में रखा तो वह घबराहट के कारण जेब में न पड़कर कोट और बमीज के दरमियाँ बाहर ही रह गया और दो बंदम चलने के बाद जमीन पर गिर पड़ा।

खैरातीराम का यह खयाल गलत था कि चेतसिंह ने उसे देखा

वह मीटिंग शुरू होते ही, उसे देखने लगा था और अब तक बराबर देख रहा था। खैरातीराम ने इतना लम्बा चक्कर इसीलिए काटा था कि कोई उसे इधर आते देख न ले, लेकिन ताया परछाईं की भांति उसके पीछे लगा रहा और अपने आपको उसकी दृष्टि से छिपाये रखा। यहां उसके सहसा रुक जाने के कारण वह सामने आ पड़ा। इधर-उधर छिपने का कोई स्थान नहीं था, अगर कोशिश करता तो नाहक संदेह होता। ताया वहां खड़ा रहा और कुम्हार से बातें करने लगा। खैरातीराम जब घबराकर गली में घुसा, उस वक्त भी वह उसे देख रहा था। ताया ने उसे कागज निकालते और उस पर कुछ लिखते भी देखा था और फिर कागज जमीन पर गिरते भी देखा था.....

लाल रंग के मकान में मी० आई० डी० इन्स्पेक्टर निरंजनदास रहता था। खैरातीराम उसे मीटिंग की रिपोर्टें देने आया था। वह घर पर उपस्थित था। उसकी उम्र चालीसेक साल थी, कद पांच फीट पांच इंच था और सिर पर घुटा हुआ साफा बांध रखा था। देखने में सरल, निरीह और शिष्ट जान पड़ता था। खैरातीराम जब कभी सुबह-शाम आया तो उसे पूजा-पाठ में व्यस्त पाया। अब उसने बड़े आदर और सत्कार से खैरातीराम को अपने पास बिठाया और पूछा—

“कहो, क्या हाल है?”

“आज पार्टी की मीटिंग थी। मैं आपको रिपोर्टें देने आया हूँ।”

“मीटिंग की इतला मुझे मिल गई थी और मैं जानता था कि तुम जरूर आओगे, इसीलिए मैं घर पर मौजूद रहा, दफ्तर नहीं गया।”

इन्स्पेक्टर बड़ा कायां था। दिन-रात रिपोर्टों से काम पड़ता था और वह उनसे काम लेने का ढंग खूब जानता था। इसी कारण उसकी पद-वृद्धि हो रही थी।

खैरातीराम ने जेब में हाथ डाला तो उसका रंग फक हो गया, जैसे बिच्छू ने डंक मारा हो। इन्स्पेक्टर को रिपोर्टें कहाँ से दे? कागज तो जेब में मौजूद नहीं था। गिर पड़ा, यह कहना भी उचित नहीं था। अनएव उसने बात बनाई।

“लेकिन मैंने रिपोर्ट लिखी नहीं, आपको जबानी सुना देता हूँ।”

“जबानी।” इन्स्पेक्टर के स्वर में कटुता और व्यंग का सम्मिश्रण था। उसने खैरातीराम के चेहरे का बदलना हुआ रंग देखकर भाप लिया था कि वह कोई बात छिपा रहा है—“रिपोर्ट जबानी देने का दस्तूर नहीं है और मैंने तुम्हें कह रखा है कि हमेशा लिखकर लाया करो। जो बात जिस समय सुनो, जो घटना जैसी देखो, वैसी लिख डालो, न कुछ मिलाओ, न घटाओ। जो कुछ लिखो, अक्षर-अक्षर ठीक हो। कोई बात गलत सिद्ध हो जाने में हमारे पेशे की बदनामी होती है। हमारे ऊपर यह जिम्मेदारी आती है कि हमारे हाथों किसी निरपराध को तकलीफ न पहुँचे। अगर हम अपने फज्र को पहचानें तो जो लोग हमारे पेशे को नफरत और हिंकारत से देखते हैं, इज्जत करने लगें। इसलिए मैं कहता हूँ कि रिपोर्ट लिखकर लाओ और हर एक बात ठीक-ठीक लिखो।”

खैरातीराम चुप और निस्तब्ध निरजनदास के मुँह की ओर देखने लगा। उसका भोला-भाला चेहरा एकदम भयानक और हिंसक बन गया वह यह मारी बातें बड़े रीब से कह रहा था। धीरे-धीरे रीब का यह भाव लुप्त हो गया, मुख-मृदा फिर निरीह बन गई और आँखों में घामिष पवित्रता लौट आई। खैरातीराम ने सुख की सास ली और भरपूर हुए स्वर में कहा—

“इस बार गलती हुई, भाग को ध्यान रखूंगा।”

“यह रिपोर्ट भी लिखकर देनी होगी।”

“बहुत अच्छा, कल या आज शाम तक द जाऊंगा।”

“हा, कल तक जरूर दे जाना” इन्स्पेक्टर ने खैरातीराम की ओर देखा और कुर्मी की पुश्त से टेक लगाकर इत्मीनान से कहा, “खैर आये हैं तो जरा सुनाओ कि क्या-कुछ हुआ।”

खैरातीराम ने भीटिंग के समय जो कुछ देखा था और बाद में जो सुना था, इन्स्पेक्टर से कह सुनाया। लेकिन सुनाते समय वह दो-तीन बार रुक-रुक कर कुछ भिन्नका और अपनी बात ढब से नहीं कह पाया। इन्स्पेक्टर ने उससे इस दोष की ओर संकेत करते हुए कहा—

“देखा तुमने, सुनाने के बजाये लिखना कितना आसान है। इसलिए हमारे यहां, हर एक बात लिखकर देने का रिवाज है। लिखने में कोताही नहीं होनी चाहिए।”

“जी हां।”

ताया ने अगर यह “जी हां” सुनी होती तो उसे लगता जैसे खैराती-राम पर मनो मिट्टी लाद दी गई है और वह उसका बोझ चुपचाप सहन कर रहा है।

खैरातीराम जाने के लिए उठ खड़ा हुआ। उसे डर था कि कागज गली में पड़ा रहने से कहीं गुम न हो जाये, लेकिन इन्स्पेक्टर ने उसे रोककर पूछा—

“तुम मेम्बर तो बन गये होंगे ?”

खैरातीराम के मन में आई कि कह दे—“जी, हां। बन गया हूं।” मगर झूठ-पर-झूठ बोलने का अभी उसे अभ्यास नहीं था। अप्रतिभ-सा होकर बोला—

“जी नहीं, अभी तो नहीं बना। आशा है कि जल्द बन जाऊंगा। मेम्बर बनने के लिए दो आदिमियों की सिफारिश जरूरी है। मैं चाहूँ तो दस से करवा लूँ; लेकिन जल्दी इसलिए नहीं कर रहा कि कहीं उन्हें शक न हो जाये।”

“यह ठीक है। शक बिल्कुल न हो। इतना विश्वास पैदा करो कि वह तुम से कोई भी भेद छिपा कर न रखें। इसका सहज ढंग यही है कि अपने अन्दर जोश पैदा करो, सरकार को खूब गालियां दो, आजादी और इनकलाब की बात हर वक्त जवान पर रहे। तुम्हारे आचरण और तुम्हारी बातों से लोग यह समझें कि तुम देश पर मर-मिटने को तैयार हो। समझें ?”

“जी हां।”

“अच्छा, अब तुम जा सकते हो। लेकिन एहतियात से जाना। कोई आदमी तुम्हें मेरे मकान से निकलते न देख ले। समझें ?”

“जी हां।”

खैरातीराम ने दरवाजे पर खड़े होकर इधर उधर देखा। कोई आदमी देख नहीं रहा था। वह इत्मीनान से बाहर निकला और गली में अपना खोया हुआ कागज तलाश करने लगा। उसने एक सिरे से दूसरे तक दो-तीन चक्कर काटे, पर कागज न मिला। तीसरे चक्कर में वह इतना व्यग्र था कि उसे अपने आपकी और वातावरण की तनिक सुध न रही। वह बहुत परेशान था और सोच रहा था कि वह बात जो उसने यहाँ आकर लिखी, अगर पहले ही न भूलता, या दर्ज ही न करता तो यह परेशानी तो न उठानी पड़ती। इसी दुविधा में वह किसी व्यक्ति से टकराकर चौका और क्षमा-याचना करते हुए बोला—

“माफ करना, मरा ध्यान दूसरी ओर था।”

“मालूम होता है, कोई चीज खो गई है?”

‘जी हाँ, एक कागज।’

‘कागज या नोट?’

‘नोट नहीं, कागज ही था।’

‘और नोट भी तो कागज ही से बनते हैं।’

वह मनचला रगीन व्यक्ति था, पान की पीक थूककर आगे बढ़ गया।

लकिन उसके यह शब्द ‘नोट भी तो कागज ही से बनते हैं। वातावरण में ध्वनित प्रतिध्वनित होते रहे। खैरातीराम चकित और अवाक् मुनता रहा—सोचता रहा।

फूट

शाम का वक़्त था। राजेन्द्र और इखलाक बस्ती की ओर जा रहे थे। उन्होंने रेलवे लाईन पार ही की थी किमी ने पुकारा—

“ओ बाबू के बच्चे ! मुंह उठाये किधर को जा रहे हो ?”

वे रुक गये। मुगली उनकी ओर बढ़ा आ रहा था। उसने शराब पी रखी थी, आंखें लाल थी और हाथ में लाठी थी, जिसके एक सिरे पर लोहा मढ़ा हुआ था।

“क्या बात है ?” इखलाक ने पूछा।

“क्या मतलब है तुम्हारा यो घूमने से ?” वह छाती फुलाकर और ऐंठकर बोला।

“देखो भाई, यों अकड़ना नहीं करते। तुम्हें जो कहना हो, शांति से कहो।” राजेन्द्र ने उसे समझाया।

“मैं अकड़ता हूँ। हाँ, मैं अकड़ता हूँ। क्यों न अकड़ूँ ? मेरी लाठी खून की प्यासी है।”

उसने लाठी के लोहेवाले सिरे को जमीन पर मारा।

“मेरी लाठी आज खून पियेगी तुम्हें दूसरो की बहू-बेटियों को ताकने का मजा चखायेगी। तुम इधर क्या करने आते हो ?”

“तुम नाने लगते हो पूछने के, हम आते हैं और आयेंगे।” इखलाक तनकर आगे बढ़ गया, “जरा चला लाठी, देखू यह किसका खून पीती है ?”

मुगली घबराया। उसका खयाल था कि मारपीट की नौबत ही नहीं आयेगी। शहर के छोकरे तनिक घमकाने से भाग जायेंगे। इसीलिए अपने

साथियो से कहा था कि तुम पीछे खड़े तमाशा देखो। लेकिन अब लडने के सिवा चारा ही नहीं था। उसने एक कदम पीछे हटकर लाठी घुमाई। लेकिन इसके पहले कि वह वार करता, इखलाक ने लपककर उसकी कलाई पकड़ ली। गिरफ्त इतनी सख्त थी कि मुगली के हाथ से लाठी छूट गई और वह बिलबिला उठा। इखलाक ने एक चपत उसके गाल पर रसीद किया और कहा, "देख अभी निकालता हूँ तेरी सारी जावरी और यह शराब, जो तू हराम के पैसे से पीता है।"

मुगली को पिटते देखकर उसके साथी बदमाश सहायता के लिए आगे बढ़े। इखलाक ने मुगली को तो धक्का देकर परे फेंक दिया और खुद उसकी लाठी उठाकर मुकाबले में डट गया। वह विरोधी का वार रोककर ऐसा भग्नूर हाथ चलाता कि बदमाश सिट्टी-पिट्टी भूल जाता। वे पाच थे। लेकिन शराब पिये हुए थे और पहले ही लडखडा रहे थे। दो भाग गये, तीन वहीं गिर पडे।

घोर सुनकर बस्ती के मजदूर घरों से निकल आये। रामदास, करमा और वसी क्रोध से उबल रहे थे और मुगली और उसके साथियो का खून पी जाना चाहते थे। लेकिन सदीक ने उन्हें शांत किया और गम्भीर स्वर में कहा—“मैं जानता हूँ यह किसकी शरारत है। हम उसे भी समझ लेंगे।”

मनचन्दा को इस घटना का पता चला तो वह बहुत सटपटाया। और यह जानकर उसे बड़ा दुख हुआ कि सदीक इस हमले का सम्बन्ध उसके साथ जोड़ रहा है। वह अहिंसावादी निष्पक्ष व्यक्ति है, किसी से भी झगडा मोल लेना नहीं चाहता। सदीक और बदरी चाहे उसे विरोधी घडे में समझते हैं, लेकिन वह उनका शुभचिंतक है। वह न सिर्फ सदीक के पास गया और अपनी ओर से सफाई दी, बल्कि राजेन्द्र और इखलाक से भी मिला और इस घटना की निंदा करते हुए कहा—“अत्यन्त दुख की बात है कि आप जिन लोगों के लिए घरबार छोड़कर मारे-मारे फिरते हैं, वही आप पर हमला करते हैं। इससे बड़ी नीचता और क्या होगी? जब तक जहालत दूर न होगी, देश का कुछ नहीं बनेगा। यह मुगली बडा निकम्मा

आदमी है। मैंने उसे बहुत समझाया कि शराब-बराब न पिया करो, भले आदमियों की तरह जिदगी बिताओ। उम पर कुछ असर नहीं होता। मार-पीट से घृणा बढ़ती है। आपको चाहिये कि घाने में रपट कर दें।”

“जनाब ! घाना हमारे लिए नहीं, आप लोगों के लिए है। फिर हमें घाने जाने की जरूरत ही क्या है ? एक मुगली क्या दस मुगली हों तो हम उन्हें सीधा करने की हिम्मत रखते हैं ?” इखलाक ने उत्तर दिया।

“ठीक है। और आपको घाने जाना भी नहीं चाहिये। मैं समझता हूँ कि हमला आप पर नहीं, मुझ पर हुआ है। ऐसे लोगों को मिल में रखना ही नहीं चाहिए, हमारी बदनामी होती है। अच्छा, मैं मैनेजर साहब से बात करूँगा।”

इखलाक बोला नहीं, मनचन्दा की ओर देखकर सिर्फ मुस्करा दिया।

“आप शायद मुझे अपने से अलग समझते हैं। लेकिन मैं भी आप ही की तरह समाजवादी व्यवस्था चाहता हूँ। मजदूरों का भला हम सब का भला है। मैं खुद मजदूर हूँ, और उन्हीं की तरह काम करता हूँ। अपनी आंखों यह भी देखता हूँ कि सरमायेदार खुद ऐश करते हैं और हमें पेट भर खाने को भी नहीं मिलता। हमें सिर्फ अंग्रेज ही की नहीं, सरमायेदारों की गुलामी को भी खत्म करना है। आपको शायद मालूम न हो, मैं कांग्रेस में जेल जा चुका हूँ।” मनचन्दा मुस्कराया और फिर बोला—“कहने का मतलब यह है कि अब मैं देश की आजादी के लिए जेल जाता हूँ, आजादी मिल जायेगी तो सोशलिज्म लाने के लिए आपका साथ दूँगा। लेकिन मैं समझता हूँ कि पहले अंग्रेज को देश से निकालकर आजादी हासिल करना जरूरी है।”

“आप ठीक कहते हैं। पहले हमें आजादी हासिल करनी है।” राजेन्द्र बोला—“लेकिन वह आजादी सिर्फ आपकी और हमारी क्यों हो, मजदूरों और किसानों की क्यों न हो ? फिर आजादी हमें लड़कर लेनी होगी। उसके लिए मजदूरों का संगठित होना आवश्यक है।”

“ठीक है, उन्हें संगठित किया जाये। मैं खुद उन्हें इस काम के लिए तैयार कर रहा था और उनकी सभा बना देना चाहता था। लेकिन आप

लोग धा गये, इसलिए मैंने अपना इरादा मुलतवी कर दिया। अगर मैं मजदूर सभा बनाता तो आप ममझते कि आपके काम में रुकावट डाली जा रही है। मुझे आपके काम से हमदर्दी है। मैं चाहता हू कि मजदूरो का संगठन हो। आपने यूनियन बनाई, उसमें थोड़े से मजदूर शामिल हुए। लेकिन मैं जो मजदूर सभा बनाना चाहता हू, उसमें छोटे-बड़े सब मजदूर शामिल होंगे।

“लेकिन यह बताइये कि वह सभा मजदूरो की होगी या सरमायेदारो की ?” इखलाक ने पूछा।

“मजदूरो की होगी।” मनचन्दा ने उत्तर दिया - “मैं आपसे एक बात अर्ज कर दू। मैं खुद मजदूर हू और मजदूरो का भला चाहता हू, लेकिन मुझे सरमायेदारो से खाहमखाह की चिढ नहीं है। मैंने भी मार्क्सवाद पढा है और मैं मार्क्स की तारीफ करता हू। लेकिन यह फलसफा अब तो साल पुराना हो गया है। गांधीजी ने हमें नया फलसफा दिया है। मैं गांधीजी का भक्त हू। मार्क्सवाद सिर्फ मजदूरो का भला चाहता है, लेकिन गांधी-वाद में मजदूरो और सरमायेदार दोनो का भला है।”

“इसका मतलब हुआ कि मजदूर, मजदूर बने रहें और सरमायेदार, सरमायेदार ?”

“अगर सरमायेदार अपना मुनाफा कम करके मजदूरी बढा दें, मजदूरो के हित को अपना हित समझें, अपने बच्चो और परिवार के सदस्यो की तरह उनका ध्यान रखें तो झगडा खत्म है। साप भी मर गया और लाठी भी न टूटी।”

मनचन्दा ने बड़े गर्व से कहा और ‘लाठी भी न टूटी’ की लोकोक्ति प्रयोग करते हुए उसके होठो पर सानन्द मुस्कराहट दीड गई, जो गांधी-वादी दर्शन के सौहार्द और मानवता-प्रेम की सूचक थी। वह अभी और बहुत कुछ कहना चाहना था, लेकिन रामदास ने कुछ नौजवानों के साथ कमरे में प्रवेश किया। उनके स्टडी-सर्कल का समय हो गया था।

“क्या कह रहा था ?” रामदास ने पूछा।

“यूनियन के मुकाबले में मजदूर सभा बनाना चाहता है।”

“बनाने दो। मैं इसे खूब जानता हूँ, रंगा सयार है।”

मनचन्दा को रास्ते में मुगली मिल गया। वह उसे अपने साथ कमरे में ले गया। उसने टोपी उतारकर अलग रख दी, सिर पर हाथ फेरा और फिर बांहें पीछे की ओर फैलाकर तख्त पर बैठते हुए कहा—

“मुगली भगत ! यह क्या शरारत कर दी तुमने ?”

“शरारत कुछ नहीं। हम नशा पीकर आ रहे थे। उनसे इतना कहा था कि तुम यहां क्या करने आते हो ? वह छोकरा इतना तेज निकला कि भट्ट गले पड़ गया। हमें नशे में अपना ही होश नहीं था, फिर लड़ना कैसा ? और वह अपने-आपको तीसमारखां समझ बैठा।”

“बना बनाया कुछ नहीं। तुम्हारे साथ मुफ्त में बदनाम हम भी हुए। तुम्हें लाख समझाया कि शरारत न किया करो।”

“शरारत अभी तक तो की नहीं, अब करेंगे।”

“देखो मुगली भगत, बड़ों का कहना है कि कुछ काम ताकत से निकलते हैं और कुछ अबल से। जो गुड़ देने से मर जाय, उसे जहर देने की जरूरत नहीं। हमें एक बात सूझी है।”

“हम कुछ नहीं जानते। हमारा अपमान हुआ है, हम उसका बदला लेंगे।”

“बदला भी मिल जायेगा, तुम मेरी बात सुनो। पहले इस यूनियन-यूनियन को खत्म करने की जरूरत है वरना यह तुम्हारे और हमारे लिए मुसीबत बन जायेगी। इसे खत्म करने का सीधा तरीका यह है कि तुम इसके मुकाबले में मजदूर सभा बनाओ और हमारे असर में जितने आदमी हैं, उसमें भर्ती कर लो।”

“बात तो ठीक है।” मुगली ने मनचन्दा का रुख पहचान कर कहा।

“बस फिर जाओ। कभी समझ से काम लिया करो।”

राजेन्द्र और इखलाक से बात करते समय मजदूर सभा बनाने का विचार मनचन्दा के मस्तिष्क में अनायास आ गया था और अब वह भटपट इसे कार्यान्वित करना चाहता था। इसके बाद उसने रहमा और नन्दू को बुलाया, उन्हें भी यह सुभाव पसन्द आया। फिर मनचन्दा मीनेजर के पास

गया और सभा बनाने की विस्तृत योजना उसके सम्मुख रखी। दोनों ने इस योजना के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया और दो-दोई घट बातचीत होती रही। अन्त में जब सब तय हो गया तो मैनेजर बोला—

“भेरा खयाल है कि आप खुद शुरू करने के बजाय सभा बनाने का सारा काम खुद मजदूरों को सौंपें। इस तरह सभा उनकी अपनी होगी और वे उसमें अधिक दिलचस्पी लेंगे। यह दूसरी बात है कि वे करता-धरता चाहे आप ही को बना लें।”

“यह सब बातें मैंने पहले ही से सोच ली हैं, आप इत्मीनान रखें।”

तीन दिन बाद इतवार आया। मजदूर एक खुले मैदान में जमा हो रहे थे। उनकी सभा हो रही थी और सभा का प्रबंध धूम-धाम से किया गया था। तख्त बिछाकर स्टेज बनाई गई थी, स्टेज पर शानदार मेज और कुर्सी रखी हुई थी और तिरगा झंडा फहरा रहा था। इस जलसे में सिर्फ नन्दू और रहमा के साथी ही नहीं रामदास और करमा आदि नौजवान भी आये। उनके अतिरिक्त जाबर और बाबू लोग भी भारी संख्या में विराजमान थे।

जब सब लोग इकट्ठे हो गये तो मुरारीलाल मनचन्दा भी आया। उसने हमेशा की तरह खदर का कुर्ता, धोती और चप्पल पहन रखी थी। नई बात यह थी कि आज कंधे पर एक बढिया चादर और हाथ में छडी थी। नन्दू और चार-पाच दूसरे मजदूरों ने आगे बढ़कर उसका स्वागत किया और सादर स्टेज पर ला बिठाया। फिर आपस में कानाफूसी होने लगी। आखिर एक बाबू ने खड़े होकर कहा कि मनचन्दा साहब सदा हम लोगों की भलाई का काम करते आये हैं। यह जलसा भी हम लोगों की भलाई के लिए बुलाया गया है। वे पढ़े-लिखे अनुभवी व्यक्ति हैं और हमेशा हमारे हित की बात सोचते हैं। वे इस जलसे के प्रधान होंगे और अपने विचार हमारे सम्मुख रखेंगे।

किसी के समर्थन करते ही मनचन्दा उठा और तालियों के दमियान मुस्कराते हुए कुर्सी सभाली। उसने गांधी टोपी उतारी, सिर पर प्राय फेरा, टोपी दोबारा सिर पर रखी और फिर मजदूरों की ओर देखते हुए कहा—

“पहले मैं आप लोगों को धन्यवाद देना जरूरी समझता हूँ क्योंकि आप लोगों ने श्रद्धा और विश्वास के साथ मुझे सभा का अध्यक्ष बनाया है। भगवान से प्रार्थना है कि मैं हमेशा आप लोगों के विश्वास का पात्र बना रहूँ। जो फर्ज आप लोगों ने मेरे कमजोर कंधों पर डाला है, उसे ईमानदारी और जिम्मेदारी से निभाऊंगा।” वह एक मिनट के लिए रुका, इधर-उधर देखा और फिर कहना शुरू किया,

“भाई रहमा, नन्दू और कुछ दूसरे मजदूर साथी मेरे पास आये और कहा कि हम मजदूर सभा बनाना चाहते हैं। मुझे इस बात से बहुत खुशी हुई। जबसे मैं यहाँ आया हूँ मजदूरों में यही विचार भरता रहा हूँ कि यह लोकराज का युग है, हर एक आदमी को अपनी राय रखने और सभा बनाने का अधिकार है। महात्मा गांधी हमारे युग के सबसे बड़े आदमी हैं। उन्होंने हमारे अन्दर आजादी की भावना भरी है। उन्होंने हमें सचाई के लिए लड़ना सिखाया है। वे क्या अमीर और क्या गरीब सबका भला चाहते हैं। गीता में लिखा है कि जब-जब धर्म पर संकट आता है, धर्म को बचाने के लिए भगवान का जन्म होता है। भारत में यह संकट का—गुलामी का युग था; हमारे धर्म का नाश हो रहा था। हम इस संकट से उबारने के लिए गांधीजी का जन्म हुआ। वे महापुरुष हैं; गरीबों की सेवा करते हैं। उन्हीं को अपना नेता मानते हुए हम यह सभा कायम कर रहे हैं और सत्य और अहिंसा के आदर्श पर इसे चलायेंगे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हमें इस शुभ कार्य में सफलता प्राप्त होगी।”

मनचन्दा कुर्सी पर बैठ गया। रहमा, नन्दू और उसके साथियों ने नाम लिखवाने शुरू किये। तीस-चालीस नाम एक साथ लिखे गये। मनचन्दा लिख रहा था और बार-बार कह रहा था—“हां, बोलते जाओ यह तुम्हारी अपनी सभा है, जो तुम्हारे हितों की रक्षा करेगी।”

जब आगे बढ़-बढ़कर नाम लिखाने वालों का जोश कम हुआ और मनचन्दा ने रामदास और उसके साथियों की ओर देखते हुए अपनी बात दोहराई—“हां, लिखाओ नाम, तुम्हारी अपनी सभा है...” रामदास उठ खड़ा हुआ। चारों ओर सन्नाटा छा गया। लोग चकित होकर देखने लगे,

जैसे कोई अनोखी बात होने जा रही हो। मनचन्दा ने गर्व से इधर-उधर देखा और उसका नाम लिखने के लिए कलम उठाया।

“ठहरिये, मैं एक बात पूछना चाहता हूँ।”

सभा में हलचल हुई, जैसे शांत पीछे हवा के एक झोके से हरकत में आ जाते हैं।

“हां, पूछियेगा” मनचन्दा ने सजीदगी से कहा।

‘क्या सभा यह मांग रखेगी कि ईद की छुट्टी सबको हो?’

इधर-उधर से शोर उठा, जैसे एक साथ बहुत सी जवानों यह सवाल पूछ रही हो।

“अगर यह बात न मानी गई तो क्या सभा उसके लिए लड़ेगी?”

रामदास बँठ गया और बँठे-बँठे फिर बोला “इस बात का उत्तर दो, फिर हम भर्ती होंगे।”

फिर सन्नाटा छा गया। मनचन्दा उठा। उसने गम्भीर और करुण स्वर में कहना शुरू किया—“देखिये, मैंने सौ बात की एक बात कह दी। मैंने सदा आप लोगों की भलाई के लिए काम शुरू किया है और भगवान की कृपा से आगे भी आप लोगों की भलाई के लिए ही काम करूंगा। आप सब लोग समझदार हैं और हम सब काम समझदारी से करना होगा। जिस बात से आपको कुछ फायदा न हो और मालिक को नुकसान पहुंचे, ऐसी बात करना बेकार है। आपका नुकसान मालिक का नुकसान और मालिक का नुकसान आप लोगों का नुकसान है। हम सबको यहाँ एक परिवार की तरह रहना है। दिलों में प्रेम और मुहब्बत हो तो सब काम आप ही आप ठीक हो जाता है। प्रेम और मुहब्बत महात्मा गांधी के जीवन का आदर्श है। वे सत्य के अवतार हैं। वे मजदूरों और मालिकों को प्रेम के बंधन में बांध देना चाहते हैं ..”

“इसका मतलब है, सबको छुट्टी नहीं होगी?”

“क्यों बोलते हो?”

‘हम बात पूछते हैं।’

बहुत-से लोग एक साथ बोल उठे। “तू, तू”, “मैं, मैं” शुरू हो गई।

शोर के मारे क्यामत बरपा थी। मनचंदा मेज पर हाथ पटक-पटककर चिल्ला रहा था। लेकिन लोगों की चुप कराना और परिस्थिति पर काबू पाना कठिन था। मुगली और उसके साथी हाथापाई करने पर आमादा हो गये, लेकिन जब देखा कि रामदास और उसके समयंक उनके अंदाजा से अधिक शक्तिशाली हैं और वे दबने को तैयार नहीं तो वे चुप हो रहे।

“देखिये,” मनचंदा बोला, “आप लोग ज़रा भी समझ से काम नहीं लेते। इस तरह शोर मचाना बिल्कुल उचित नहीं। अगर आप कुछ करना चाहते हैं, तो अनुशासन और शिष्टाचार सीखिये। दूसरे की बात में टोकना और झट लड़ने को तैयार हो जाना हिंसक वृत्ति है। हमें इस हिंसक वृत्ति को छोड़ना है। मैं आप लोगों के बुलाने पर यहां आया हूं, आप लोगों ने खुद मुझे सभापति बनाया है और मैं आप ही के भले की बात कह रहा हूं। यह कहां की सम्म्यता है कि आप लोग यों शोर मचाना शुरू कर दें। अगर आपको मेरी बात नहीं सुननी, तो आप खुद संभालिए अपना काम, मैं कुर्सी छोड़कर अलग हो जाता हूं।”

और मनचंदा सचमुच कुर्सी छोड़कर जाने लगा।

“नहीं, नहीं।” लोगों ने उसे रोका।

“अच्छा, मैं एक बार फिर आप लोगों की बात मानता हूं।” मनचंदा ने फिर कुर्सी सम्भाली और आंखों में महानता भरकर और गर्दन ऊपर उठाकर कहना शुरू किया—“काम्यदा यह होता है कि अध्यक्ष की बात मानी जाये। उसे सब लोग चुनते हैं। उसका कहा सब का कहा होता है।” मनचंदा ने टोपी उतारकर मेज पर रख दी और कंधों पर चादर को दुरुस्त करते हुए कहा—“मैं आपको मोटी बात बताता हूं कि आप लोग मेहनत करके जो रुपया कमाते हैं, वह मिल-मालिक का नहीं, आप लोगों का है। मिल-मालिक उस रुपये का ट्रस्टी है। वह उसे संभालकर रखता है और जरूरत के वक़्त आप लोगों पर खर्च करता है। आपका कर्तव्य है कि आप लोग ज्यादा-से-ज्यादा रुपया कमायें। और मालिक का कर्तव्य है कि वह ज्यादा-से-ज्यादा रुपया आप लोगों पर खर्च करे। हमारी सभा इस सिद्धांत की

मानकर चलेगी। सिर्फ मजदूर मजदूर चिल्लाने और मालिक को गालिया देने से कुछ नहीं बनता। सब जानते हैं कि एक पहिए की गाड़ी कभी नहीं चलती। आपकी मेहनत और मालिक की बुद्धि से रुपया पैदा होता है और इससे दोनों का काम चलता है। एक के बिना दूसरे का कुछ नहीं बनता। यह बात तुम्हें समझ लेनी चाहिए।'

मनचदा रुक गया। उसने दर्शन की गहरी बात कही थी और वह मजदूरों पर उमका असर देखना चाहता था। उन्हें चुप देखकर उसकी आँखें प्रसन्नता से चमक उठी।

"जो लोग यह बात समझ गये हैं", वह फिर बोला, "वे अपने नाम लिखायें और सभा के सदस्य बनें। कोई मजदूर नहीं। लेकिन मैं अपनी ओर से एक बात कह देना चाहता हूँ कि कोई सदस्य बने या न बने सभा सब की भलाई के लिए काम करेगी। हमारा किसी से बैर विरोध नहीं।'

मनचदा ने कलम सभाला—'चलिए लिखवाइये नाम।'

जाबरो और बलकों ने नाम लिखाने शुरू किए। पहले ही तय हो गया था कि अपने आदमी एक साथ नाम न लिखवायें, आधे पहले लिखवायें और आधे बाद में। इस बार भी तीस पैंतीस आदमियों के नाम लिखे गये।

'मैं खुश हूँ कि आप लोगो ने मेरी बात को समझ लिया है। यह सभा आप लोगो की भलाई के लिए बनी है। और यह तिरगा झंडा, आपका झंडा है। यह झंडा मजदूरों के खून से रंगा हुआ है।'

'मैं अपनी बांह पर चाकू मारता हूँ।" करमा बीच में उठकर बोला। उसने बाया बाजू फँला दिया था और दाएँ हाथ में चाकू धाम रखा था, "अगर तीन रंग का खून निकला तो तिरगा झंडा हमारा झंडा है, और अगर लाल खून निकला तो यह लाल झंडा मजदूरों का झंडा है।"

उसने अपनी छाती पर लगे हुए लाल झंडे की ओर संकेत किया और बैठ गया। इस बार किसी प्रकार का शोर नहीं मचा, साधारण खुसरपुसर हुई, क्योंकि मनचदा ने हाथ उठाकर लोगो की धात कर दिया था।

'यह कर्महोत की अपनी बात नहीं, उसके अन्दर से कोई और बोल

रहा है।" मनचंदा ने गर्दन हिलाते हुए धीरे-धीरे कहा, "ये सब मजदूरों को बहकाने और फूट डाने की बातें हैं। तिरंगा झंडा कांग्रेस का। हमारे अपने देश का झंडा है। यह शरीरों के खून से रंगा हुआ है। इसके नीचे हमने आजादी की जंग लड़ी है, कुर्बानियां दी हैं और यह गरीबों के खून से रंगा हुआ है। लाल झंडा हमारा नहीं, रूस का झंडा है। और हम रूस के एजेंट नहीं हैं।"

"नहीं, यह मजदूरों का झंडा है" बहुत सी आवाजें एक साथ उठीं।"

"यह सब गड़बड़ डालने की बातें हैं। गड़बड़ डालने वाले कहां नहीं होते? आप लोग अपना काम करते जाइये। मैं अब जलसा बरखास्त करता हूं। जो लोग सभा के सदस्य बने हैं, शाम को उनकी मीटिंग होगी और पदाधिकारी चुने जायेंगे।"

जलसा बरखास्त हुआ। मुगली और उसके साथी तिरंगा झंडा उठाकर एक ओर चल दिये, रामदास और उसके साथी दूसरी ओर।

सघर्ष

मजदूर यूनियन और मजदूर सभा में परस्पर सघर्ष छिड़ा। मनचन्दा का खयाल था कि रहमा और नदू का सारा घुप इस तरफ आ जायेगा, जाबरो और बलकों को मिलाकर सभा के सदस्यों की संख्या बहुत बढ़ जायेगी। लेकिन जोड़-तोड़ और दौड़-धूप के बावजूद उसे पर्याप्त सफलता प्राप्त न हुई। जो नौजवान यूनियन के सदस्य बन चुके थे वे उसे छोड़ने को तैयार न थे। पुरानी घड़े-बंदी की बुनियादें खोलखली हो चुकी थी। लालच के भरोसे अदावत की जो दीवार खड़ी की गई थी, वह किंचित धक्का लगते ही ढह गई। अब उसे दोबारा खड़ा करना सम्भव नहीं था। मजदूर यूनियन की बुनियाद वाकई दृढ़ सिद्ध हुई। मनचन्दा अब भी साम, दाम और दंड की नीति से काम निकालना चाहता था। लेकिन राजेन्द्र और इखलाक इन्सान को इन्सान बनाने के लिए मजदूर आंदोलन चला रहे थे और उन्होंने यूनियन को उनके जीवन का अंग बना दिया था। मजदूर यूनियन को अपनी यूनियन समझते थे और उससे प्यार करते थे।

किसी भी आंदोलन को सफल बनाने के लिए औरतों का सहयोग आवश्यक है। इस ज़रूरत को महसूस करते हुए पार्टी ने शीला को ओकाडे भेजा ताकि वह मजदूर औरतों को संगठित करे।

बहुत कम औरतों को मिल में काम मिला हुआ था। वे घर का काम करती थीं और बच्चे पालती थीं। आस पास खाक उड़ती थी और सफाई नहीं थी। इसके अतिरिक्त औरतों को बच्चे पालने का डग भी नहीं आता

था, इसलिए वे बचपन ही से बीमारियों के चंगुल में फंस जाते थे। किसी को पेचिस है; किसी की आंखें दुखती हैं और किसी का पेट बड़ा हुआ है। शीला ने सबसे पहले इन बच्चों की ओर ध्यान दिया। उसने न सिर्फ बच्चों की बीमारियां दूर करने के उपाय बताये बल्कि वह स्वयं इस काम में योग देने लगी। उदाहरणतः जिन बच्चों को कुकड़ों का रोग था, उनकी आंखें वह सुबह-सुबह ठंडे पानी से धुलवाती, अपने हाथ से दवाई डालती और उनकी माताओं से उन्हें साफ रखने को कहती। शीला ने इन बच्चों की आंखों में झांककर एक बात और देखी कि प्रायः उनकी पुतलियां धूमती थी। वह इसका कारण जानती थी। सिर्फ यही की बात नहीं यह रोग देश भर में फैला हुआ था। औरतों को बच्चे पालने के अतिरिक्त घर का सब काम करना पड़ता था। फिर मजदूर औरतों को तो मजदूरी भी करनी होती थी। वे बच्चों को अफीम खिलाकर सुला देती थी। मायें नहीं जानती थी कि अफीम का विष बच्चों के फेफड़ों, अतड़ियों और रक्त में घुस जाता है और उन्हें पीला, निर्बल और आलसी बना देता है। शीला सोचती कि मातायें बच्चों को अफीम खिलाकर कब तक सुलाती रहेंगी। अब हिंदुस्तान के लिए सोने का नहीं जागने का समय है। उसने मजदूर औरतों की यह आदत छुड़ाने की मुहिम शुरू की।

ईद निकट आ रही थी। मजदूर यूनियन के जलसे होते थे, जलूस निकलते थे और सब मजदूरों की छुट्टी का नारा बड़े जोर से लगाया जा रहा था। दरअसल यह नारा मजदूर-एकता का नारा था और उन्हें बताया जा रहा था कि अगर सब मजदूरों को हर एक त्यौहार को छुट्टी हो तो वे उसे मिल-जुलकर मनायें ताकि आपस की छुआछूत और साम्प्रदायिकता दूर हो। शीला के आने के बाद जलसे और जलूसों में स्त्रियों की संख्या भी बढ़ने लगी। खूब गहमा-गहमी थी। जड़ता टूटी और लोग हरकत में आये।

इस बीचमें एक स्त्री की ओर शीला का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ। उसका व्यवहार बहुत ही विचित्र था। वह हर एक मीटिंग में आती थी; लेकिन दूरी औरतों से अलग बंठी रहती थी। किसी से बात तक न

करती थी। शायद दूसरी औरतो को उसके साथ मिल-बैठना पसन्द नहीं था। वह रंग रूप की बुरी नहीं थी। शीला ने उसकी ओर विशेष ध्यान देना शुरू किया, उसने दो-चार मरतबा बात की। उसका स्वर सयत और गभीर था। फिर इस अलगाव का क्या कारण ?

इस स्त्री का नाम दूलन था। उसकी काली स्याह आँखों में एक दुःखद कहानी अंकित थी। इससे पहले वह एक भिखारिन थी। फजलू ने उसे अपने घर में डाल लिया था। फजलू का भी अपना कोई नहीं था। इस भरी दुनिया में तनहा और अकेला था। उसे अब एक जीवनसगिनी मिल गई थी। फजलू का एकाकीपन दूर हुआ और दूलन की सभ्रात आत्मा को शांति प्राप्त हुई। दोनों का जीवन आनन्द से कट रहा था। बस्ती की औरतो ने दूलन में कोई दोष नहीं देखा। लेकिन जिस औरत का आगा-पीछा न हो, जो ठोकरें खाती फिरी हो और जिसने घाट घाट का पानी पिया हो, कोई सनवती और गृहस्थ स्त्री उससे मिलना क्यों पसन्द करे ? बस्ती की औरतें उसे देखकर नाक सुकेड लेती, जैसे वह बदबूदार छिपकली हो। उसे देखकर आपस में कानाफूसी करती—'आ गई दूलन ?' सीधे मुह बात करना तो दरकिनार सदा उसके जखमों को कुरेदती।

शीला समझ गई कि उसे सहानुभूति और स्नेह दरकार है और उसकी आहत आत्मा को सात्वना चाहिए। शीला ने उसकी ओर अतिरिक्त ध्यान दिया। वह उसे बुलाकर मीटिंग में ले जाती और आदर से अपने पास बिठाती, जलस-जलूणों और मुहत्ले की सफाई में उसमें सहायता लेकर उसमें आत्म विश्वास की भावना को दृढ़ करती। जब बस्ती की औरतो ने दूलन के प्रति शीला का यह व्यवहार देखा तो उनका अपना रबैया भी बदलना शुरू हुआ। उन्होंने अपनी आँखों देखा कि शीला पढी-लिखी होकर भी उनमें यों मिल बैठती है, जैसे सदियों से उनके साथ रहती आई हो। वह बच्चों के मुह धोने और गदी नाक साफ करने में भी सकोच नहीं करती। अगर एक बाहर से आई हुई शिक्षित महिला उनसे उनके बच्चों से इस तरह प्यार कर सकती है तो वे अपनी बस्ती की एक औरत से क्यों घृणा करें। घृणा मिटती गई और प्रेम बढ़ता गया और दूलन के प्रति सब के व्यवहार

में परिवर्तन हो गया ।

ईद आई । मैनेजर ने हिंदू मजदूरों को छुट्टी देने से इनकार कर दिया । उसने यूनियन की मांग पर कोई ध्यान नहीं दिया । वह यूनियन के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं करता था । मजदूर सभा मजदूरों की प्रतिनिधि संस्था थी और वह इस किस्म की व्यर्थ मांग रखने को तैयार नहीं थीं । लेकिन यूनियन के सदस्यों को मैनेजर की आज्ञा दरकार नहीं थी । वे त्यौहार की छुट्टी मनाता अपना अधिकार समझते थे । मैनेजर की धमकियों के बावजूद वे काम पर नहीं गये ।

मजदूर सभा के हिन्दू सदस्य काम पर गये; लेकिन उनका अंतःकरण उनसे सहमत नहीं था । आज से पहले उन्होंने छुट्टी की आवश्यकता नहीं समझी थी तो काम करते दुख नहीं होता था । लेकिन अब जब कि उनके साथी छुट्टी मना रहे थे और अपना अधिकार समझकर मना रहे थे, उनका इस प्रकार काम पर चने आना उचित नहीं था । दरअसल छुट्टी वे भी चाहते थे; पर एक जिद थी, जो काम पर ले आई थी । लेकिन मन में एक फांस थी, जो चैन नहीं लेने देती थी । सोचने पर जिद अपनी कमजोरी दीख पड़ी । उन्होंने अपने भाई मजदूरों को छोड़कर विरोधी पक्ष—सरमायेदार का साथ दिया ।

मैनेजर को सारी रात नीद नहीं आई । सुबह जब मिल खुली तो वह क्रोध से बिफरा हुआ था । आते ही चपरासी पर बरस पड़ा कि उसने मेज वगैरों अच्छी तरह साफ नहीं की । तुरंत जाबरों को बुलाकर हुक्म दिया कि कल जिन मजदूरों ने अपनी मर्जी से छुट्टी की थी, उन्हें उस वकत तक काम पर न लगाया जाये जब तक कि वह माफी न मांगें । इसके अतिरिक्त रामदास, बंसी और कर्मा के विरुद्ध यह आरोप था कि उन्होंने मजदूरों को काम पर आने से रोका है, मिल में गड़बड़ फैलाई है । इसलिए उन्हें सदा के लिए काम से हटा दिया जाये ।

मजदूर पहले से तैयार थे । उन्हें मालूम था कि मैनेजर हमला करेगा और उन्हें उमका उत्तर देना होगा । हुक्म सुनते ही यूनियन के तमाम सदस्य काम छोड़कर मिल से बाहर निकल आए और उन्होंने घोषित किया कि

अगर मैनेजर चौबीस घंटे के अन्दर सब मजदूरों को बिना शर्त काम पर वापस नहीं लेगा, तो वे आम हड़ताल करेंगे, जो उस समय तक नहीं खुलेगी जब तक दूसरी भांगें भी पूरी न हो जायें।

मैनेजर समझता था कि मनचंदा ने सभा बनाकर मजदूरों की एकता को तोड़ दिया है। लेकिन जब अधिकांश मजदूर बाहर निकल गये, तो उसे पता चला कि मनचंदा और उसकी सभा कितने पानी में है। स्थिति गंभीर थी। मजदूरों के सामने झुक जाना मैनेजर की धान के विरुद्ध था। वह समझता था कि अगर एक बार मजदूरों की बात मान ली, तो वे हमेशा के लिए सिर चढ़ जायेंगे। और इस बार उन्हें नीचा दिखा दिया, तो इस विद्रोह-भावना का सर्वथा अंत हो जायेगा।

समझौता संभव नहीं था।

दूसरे दिन आम हड़ताल शुरू हुई। मजदूरों की मांग ये थी—
(1) नौकरी से हटाये गये मजदूरों को काम पर वापस लिया जाये, (2) हर बड़े त्यौहार को सबकी छुट्टी हो, (3) हफ्ता 45 घंटे का हो, (4) डाक्टरी फीस बंद की जाये, (5) बस्ती में रहने वाले मजदूरों के लिए अच्छे क्वार्टर बनाए जायें।

हड़ताल को सफल बनाने के लिए मजदूरों की ओर से पिकेटिंग शुरू हुआ। औरतें और मर्द मिल के दरवाजे पर खड़े थे, और यूनियन के फंसले का विरोध करके काम पर जाने वाले मजदूरों को भीतर जाने से रोक रहे थे। जो नहीं रुकते थे, उनकी मिन्नत आरजू करते थे। इससे भी काम नहीं चलता था, तो आगे लेटकर कहते थे—“अगर तुम्हें जाना ही है तो हमारे शरीर पर पांव रखकर जाओ।” भैया लोग काम पर जाना चाहते थे लेकिन पिकेटिंग करने वालों का जोश और त्याग देखकर उन्हें भी रुकना पड़ा। निस्संदेह वे रोजी कमाने दूर से आए थे, लेकिन मजदूर थे और मजदूर एकता के महत्व को समझते थे।

मुगली भी अपनी टोली के साथ आ पहुंचा। पिकेटिंग करने वालों ने रोका तो वह लड़ने पर आमादा हो गया। उसने उनकी मिन्नत-आरजू पर भी कोई ध्यान नहीं दिया। वह सिर्फ लड़ना चाहता था और क्रोध में

भरा हुआ आगे बढ़ रहा था। उसे किसी तरह भी रकते न देख दूलन दौड़कर दरवाजे के आगे लेट गई और कहा—“जाना है तो मेरे शरीर पर से गुजरकर जाओ।” मुगली ने आँव देखा न ताव, उसके सीने पर पाँव रख दिया। पिकेटिंग करने वालों की आँखों में खून उतर आया, लेकिन वे शांत रहे। दूलन की देखा-देखी दो-तीन औरतें और लेट गईं। मुगली सबको रोंदता हुआ मिल के भीतर चला गया। लेकिन किसी दूसरे व्यक्ति ने उसका साथ नहीं दिया। जो लोग उसके साथ आये थे, खड़े सोच रहे थे कि अब क्या करें।

“बुजदिल ! आते क्यों नहीं ?” उन्हें असमंजस में पड़े देखकर मुगली ने कहा।

“वे इन्सान हैं।” रामदास ने कहा।

“और मैं ?” वह लौट आया। औरतें उठ खड़ी हुईं।

“दरिद्रा।” पिकेटिंग करने वालों में से किसी ने कहा।

मुगली जो अपनी असफलता पर पहले ही झुंझला रहा था, आपे से बाहर हो गया और एक हड़ताली मजदूर पर लपकते हुए बोला—

“कौन साला गुम्मे दरिद्रा कहता है, मैं एक-एक का खून पी लूंगा।”

“तैश में न आओ। होश से बात करो।” रामदास ने उसे रोका।

छोटे लड़के जुलूस निकाले घूम रहे थे। इस समय वे यहाँ आ पहुँचे और नारे लगाने लगे—

“हड़ताली मजदूर जिदाबाद !”

“फूटपरस्त मुरदाबाद !”

लड़कों ने फूटपरस्त का नारा सिर्फ मुगली पर ही नहीं कसा बल्कि उसके साथियों की ओर मुह करके उन्हें भी चिढ़ाना शुरू किया। यों अपमान होते देख उन्हें भी क्रोध आ गया और जो लड़का सबसे आगे जोर-जोर से नारे लगा रहा था, मुगली के एक साथी ने लपक कर उसके हाथ से भंडा छीन लिया। करीब था कि वह उसे फाड़ डाले; लेकिन रामदास का मजबूत हाथ तुरंत उसकी ओर बढ़ा।

“छोड़ भण्डा, वरना अभी तोड़ता हूँ कलाई।” रामदास ने गरज कर कहा।

भण्डा बच गया। लेकिन राजेन्द्र और इखलाक जिस कलह से बचना चाहते थे, वह छिड़ गया। अब भी वे मुगली और उसके साथियों से सड़ना-भगडना और हाथापाई करना नहीं चाहते थे क्योंकि ऐसा करने से हड़ताल के टूट जाने का भय था। भण्डा ले लेने के उपरान्त राजेन्द्र और इखलाक फिर बीच बचाव करने लगे। लेकिन रामदाम, करमा, बसी और उसके दूसरे हड़ताली साथी कोई बात सुनने को तैयार नहीं थे। वे कहते थे कि सरमायेदार के पिट्टू, इन्होंने हमारे भण्डे को हाथ बयो लगाया ?

शायद भगडा रुक जाता, लेकिन उसी समय पुलिस की दो लारिया घटनास्थल पर आ पहुँची, उनमें से पच्चीस तीस सशस्त्र सिपाही निकले और उनके साथ एक गोरा अफसर था। मैनेजर ने थाने में फोन किया था कि मजदूरों ने मिल पर हमला कर दिया है, हमारे आदमी उन्हें रोके हुए हैं।

गोरे अफसर ने आते ही राजेन्द्र और इखलाक को गिरफ्तार कर लिया और हड़ताली मजदूरों को मिल के दरवाजे से हट जाने का हुक्म दिया। लेकिन मजदूरों ने यह नादिरशाही हुक्म मानने से साफ इनकार कर दिया। वे अपने नेताओं की रिहाई की माग कर रहे थे। और मिल के दरवाजे पर पिकेटिंग बदस्तूर जारी था।

गोरे अफसर ने लाठी चलाने का हुक्म दिया।

बस फिर क्या था, हुक्म मिलने की देर थी, औरतो, बच्चों और हड़ताली मजदूरों पर अन्धाधुन्ध लाठिया बरसने लगी।

मजदूर लाठिया खा रहे थे और नारे लगा रहे थे—

“मजदूर यूनिजन जिंदाबाद !”

“लाल भण्डा जिंदाबाद !”

मुगली को बदला लेने की सूझी और लडके से भण्डा छीनने दौड़ा। लेकिन लडका भण्डे से लिपट गया जैसे वह उसकी देह और प्राण ही। मुगली जोर लगा रहा था और लडका भण्डा नहीं छोड़ता था। रामदास

ने मुगली की यह धूर्तता देखी तो वह चीते की तरह लपककर लड़के की सहायता को आ पहुँचा। उसने झुंटा अपने हाथ में ले लिया और बोला—
“बड़ा सूरमा बनता है। छीन मुझसे।”

इधर मुगली ने झुंटा छीनने के लिए हाथ बढ़ाया और उधर सिपाही की लाठी रामदास के सिर पर आ पड़ी। रामदास ने लाठी की किंचित परवा नहीं की। एक हाथ से झुंटा मजदूर पकड़े रखा और दूसरे हाथ से मुगली को धक्का देकर परे गिरा दिया। दो-तीन और हड़ताली मजदूर रामदास की सहायता को आये। मुगली ने उठकर फिर हमला किया। अच्छा-खासा हंगामा हो गया। लाठी बरसाने वाले सिपाही बीच में धिर गये। गोरे अफसर ने समझा कि सिपाहियों को पीटा जा रहा है, रिवाल्वर निकालकर तुरन्त दो-तीन फायर कर दिए।

रामदास और एक और मजदूर जखमी हुआ। रामदास का घाव गहरा था। गोली उसकी छाती में लगी थी। वह हस्पताल पहुँचते ही मर गया।

हड़ताल टूटी नहीं, बरदस्तूर जारी थी। दूसरे दिन शहीद की अर्थों का जुलूस निकाला गया, जिसमें न सिर्फ बस्ती के सब मजदूर और औरतें शामिल थी, बल्कि शहर के लोग भी साथ थे। ठांठे मारता हुआ मीलों लम्बा जुलूस। सिर ही सिर दिखाई देते थे। सब लोग शहीद के प्रति श्रद्धा प्रकट कर रहे थे और पुलिस और सरकार की निंदा के नारे लगा रहे थे। यह पहला जुलूस था, जिसमें बस्ती के मजदूर और शहर के लोग एक साथ शामिल हुए थे। यह असाधारण एकता थी। शहीदों की याद इसी तरह मनाई जाती है।

शहर की कांग्रेस कमेटी ने भी हड़ताल का समर्थन किया और हड़ताली मजदूरों को हर तरह की सहायता मिलने लगी। मंनेजर और मनचन्दा घबराये और उन्होंने मजदूरों से समझौता कर लिया। सब मजदूर बिना शर्त काम पर वापस ले लिए गए; डॉक्टर की फीस छोड़ दी गई और बड़े स्थोहारों की छुट्टी मान ली गई।

यूनियन की नींव पक्की हो गई।

नारी

पद्मा का मन किसी चीज में नहीं लगता था। परीक्षा निकट आ गई थी और वह घर पर अकेली थी। मस्तिष्क में तरह-तरह के विचार उठ रहे थे। इन विचारों में कोई क्रम और कोई व्यवस्था नहीं थी। कमरे की चीजें भी अस्त व्यस्त थी। सुबह उठकर जो कपड़े उतारे थे, उन्हें उठाकर उचित स्थान पर रखा नहीं था। टूथपेस्ट और ब्रुश उसने मेज पर रख दिया था और अब भी वही पड़ा था। उसने अलमारी खोलकर एक के बाद दूसरी—चार पुस्तकें निकाली। इतिहास, अर्थ और दर्शन किसी विषय में उसकी रुचि नहीं थी। आखिर उसने हार्डों का उपन्यास 'टेस' (Tess) निकाला। यह उपन्यास उसके कोर्स में शामिल था और उसे बहुत पसंद था। वह उसे कई बार पढ़ चुकी थी। लेकिन अब इसमें भी मन नहीं लगा। यो ही पन्ने उलटती हुई अंतिम पृष्ठ पर जा पहुंची। इस पृष्ठ की सब पक्तियों के नीचे लाल रंग की पेंसिल से लकीरें खिंची हुई थी। यह लकीरें पद्मा ने खुद खींची थी और हाशियों में अपने हाथ से अंग्रेजी में लिख दिया था—'एक्सलेंट !' कारण शायद यह था कि इन पक्तियों में लेखक ने मानव-जीवन की भयानक ट्रेजडी की समस्त पीड़ा समो दी थी और कहानी को क्लाइमैक्स पर पहुंचाकर उसकी लेखनी आप ही आप रुक गई थी।

पद्मा ने इन पक्तियों को पढ़ा और सूनी सूनी आंखों से शून्य में भावने लगी। वास्तव में वह देख नहीं रही थी, सोच रही थी। नायिका की फांसी का दृश्य कितना भयानक था। अंधे कानून ने केवल उसके

अपराध को देखा, हृदय को नहीं। जब कानून भी पीड़ितों को कुचलने के लिए बनाया जाता हो और जब संसार पर इसी अन्धे कानून का शासन हो, तब लेखक का भगवान के न्याय पर व्यंग्य करना ठीक ही तो है।

लेकिन पद्मा लेखक के वजाय नायिका की बात सोच रही थी। उस बेचारी के दुःखमय जीवन की करुण-कहानी मस्तिष्क में उभर आई थी। वह एक अकिंचित तृण की भांति समय की धारा के साथ बहती रही, कहीं भी पांव जमाने को स्थान न मिल सका। कोई भी बात उसकी इच्छा के अनुसार न हुई, क्योंकि वह समाज उसके लिए नहीं, एक ऊंचे और विशेष वर्ग के लिए बना था, क्योंकि शिक्षित और सहृदय व्यक्ति भी उसकी रूढ़िगत मान्यताओं और परम्पराओं से ऊपर उठने का साहस नहीं रखते थे। यह सोचकर पद्मा का मन विद्रोही हो उठा। वह पूछना चाहती थी—“ऐ ब्रिट्रेन के भद्र लोगो, यही वह लोकराज है, जिसके राग अलापते तुम कभी नहीं थकते? यही वह सभ्यता और संस्कृति है, जिस पर तुम्हें इतना गर्व है?”

प्रश्न पद्मा अपने आपसे पूछ रही थी और उत्तर में नायिका के जीवन की एक-एक घटना स्मृति-पट पर उभरती आ रही थी। वह सोच रही थी और एक अत्यन्त दारुण पीड़ा उसकी आत्मा को द्रवित कर रही थी, तड़पा रही थी। उसने देखा कि मानवजाति की एक बड़ी संख्या पर प्रत्येक युग, प्रत्येक काल और प्रत्येक देश में अत्याचार होता आया है और हो रहा है। अंत?—अंत अवश्य होगा। इस अत्याचार ने विकास को कुंठित कर रखा है।

उसके चेहरे का रंग क्षण-क्षण बदल रहा था; आंखें कभी चमक उठती थीं, कभी उदास, और कभी सूनी-सूनी रिक्त में झांकने लगती थी। वह एक गम्भीर समस्या के बाह्य और भीतरी पहलुओं पर विचार करती हुई जान पड़ती थी और उसका हल ढूँढ रही थी। जब हल सुझाई न देता था, तो अपने ही विचारों पर खींक जाती थी, सटपटा उठती थी, जैसे कोई घाव पर टिचर रख दे।

उसकी सुन्दर आंखों में सहसा उठने वाली तरंगों से अनुमान होता

था कि उसके मन में सुन्दर और महान विचार उठ रहे हैं; लेकिन वे सातिप्रद नहीं, व्यग्रतापूर्ण हैं। तमाम उपन्यास पढ़ लेने पर भी पद्मा के मन की पहले कभी यह दशा नहीं हुई थी, क्योंकि पहले उसने इन परिस्थितियों में नहीं सोचा था, जिनमें आज सोच रही थी। इन विचारों की पृष्ठभूमि और थी, घटनाओं और थी—उपन्यास के दर्पण में वह उनका सिर्फ प्रतिबिम्ब देख सकती थी— अब यह विचार क्षण-क्षण साकार और ठोस होते जा रहे थे। जो चाहता था कि उन्हें व्यक्त करने के लिए कविता या कहानी लिखे अथवा चित्र बनाये।

पद्मा जब छात्रालय में रहती थी तो उसे चित्रकारी का शौक था। लेकिन जब कॉलेज में प्रवेश किया तो वह राजनीतिक कार्यों में रत रहने लगी। चित्रकारी सर्वथा छूट गई। वह कल्पना के बजाय यथार्थ में रहने लगी। लेकिन जब चेतना प्रौढ़ हुई, तो सोचा कि कविता अथवा चित्रकारी निरी कल्पना तो नहीं। कला जितना यथार्थ के निकट होती है, उतना ही सजीव, सुन्दर और प्रभावशाली होती है। इसलिए पुराने शौक ने फिर गुद्गुदाया, वह सोच रही थी कि परीक्षा से निपटकर अभ्यास शुरू करूंगी और किसी अच्छे कलाकार से सलाह लूंगी।

जिस दिन से राजेन्द्र और इखलाक की, गिरफ्तारी, हडताल और मजदूरों पर गोली चलने की खबर पड़ी थी, उसके विचार स्थिर नहीं थे। जब महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घट रही हो, जीवनाधिकारों के लिए संघर्ष छिड़ा हो, तो पुस्तक हाथ में लेकर निठल्ले बैठे रहना व्यर्थ जान पड़ता था। वह चाहती थी कि राजेन्द्र और शोला की तरह संघर्ष में सक्रिय भाग ले। वह महसूस कर रही थी कि गोली मजदूरों पर नहीं, खुद उस पर चली है और उसे सिद्ध करना है कि जीवनाधिकारों के लिए जो संघर्ष छिड़ा है, वह गोलियों से शांत नहीं होगा।

जब भावुकता का वेग कम होता तो वह शांत और गम्भीर हो जाती और उसके विचारों में गहराई और व्यापकता आ जाती। उसे लगता कि एक ही जगह बयो, सभी जगह ऐसा ही रहा है। यह सामाजिक विघ्न ही ऐसा है। हर महाज पर लड़ने की जरूरत है।

इसी पृष्ठभूमि में वह उपन्यास की नायिका को देख रही थी। उसने अपने मस्तिष्क में टेस का जो चित्र बनाया था, वह अपने ही समाज की हजारों लाखों लड़कियों का चित्र था। यह लड़कियां जीवनाधिकारों से, सपनों और अभिलाषाओं से वंचित थीं और अंधी परम्पराओं के बंधन में जकड़ी हुई समय की धारा के साथ तूणवत बहती घली जा रही थी, कहीं पांव जमाने की जगह न थी...

जब वह इन विचारों में ऊब-डूब रही थी, अचानक दरवाजे पर दस्तक हुई। उसने किवाड खोले और उर्मिला को सामने खड़े देखा।

“बहुत खूब। तुम्हारे आने की तो तनिक भी आशा नहीं थी।” उसने सखी का स्वागत किया।

“किसानों के आन्दोलन के बारे में एक पम्पलेट छपरहा है। नारायण से मससौदा लेने आई थी। सोचा, तुमसे भी मिलती चलूं।”

वे दोनों भीतर गईं। उपन्यास वैसे ही खुला पड़ा था। उर्मिला ने उठा लिया और उसके पृष्ठ पलटते हुए पूछा—“इस्तहान की तैयारी हो रही है?”

“तैयारी क्या खाक हो रही है, एक शब्द नहीं पढ़ा जाता। तबियत परेशान रहती है।”

पद्मा की सुन्दर आंखों से वाकई परेशानी झलक रही थी। उर्मिला एक क्षण मौन बैठी उसकी ओर देखती रही और फिर उसकी परेशानी का कारण समझकर बोली—

“हालात ही ऐसे हैं।” उर्मिला ने धीमे से कहा और सखी की ओर देखने लगी।

पद्मा को मालूम भी नहीं हुआ कि उसने बोलना बन्द कर दिया है। वह उसके मुंह की ओर यों देख रही थी, जैसे उसके होंठ फिर हरकत में आयेंगे और वह फिर कुछ कहेगी। बात सीधी और साधारण थी, लेकिन मन से निकली थी और उसमें संवेदना और गहराई थी; पद्मा को अच्छी लगी। वह कुछ और सुनने को उत्सुक थी। दरअसल वह अपनी परेशानी का इलाज चाहती थी। उसका देखना निष्प्रयोजन नहीं था। वह एक रोगी

की दृष्टि थी, जो उस डाक्टर की ओर देख रहा हो, जिसे रोग का निरीक्षण करके मुस्खा लिखना हो। लेकिन उमिला मौन रही उसने और कुछ नहीं कहा।

“क्या यह दुनिया ऐसे ही चलती रहेगी ?” पद्मा ने कातर स्वर में पूछा।

“ऐसे ही क्यों चलती रहेगी।” उमिला ने तुरन्त, मगर धीमे और दृढ़ स्वर में कहा—“हम जो दिन-रात काम कर रहे हैं, हमारा प्रयास व्यर्थ तो नहीं जायेगा।”

वह मुस्कराई उसके चेहरे पर एक मनोहर आकर्षण था। यह आकर्षण अटल विश्वास से उत्पन्न हुआ था।

पद्मा उमिला को उस समय से जानती थी, जब वह पार्टी में भर्ती हुई थी। वह काले रंग की साधारण लडकी थी, उसके मन में पहले यह विश्वास नहीं था और आत्मा में यह आकर्षण नहीं था। जिस ईसाई धर्म ने पिता की आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा किया, उसके समस्त सिद्धान्त भी इस लडकी को अध्यात्मिक शांति प्रदान न कर सके। उसके अन्तःकरण में उपेक्षा और अवज्ञा के काटे चुभते रहे। महात्मा मसीह ने सैंकड़ों साल पहले दुनिया वालों की शांति और तृप्ति के लिए जो खौत खोजा था, उसका स्नेह-जल सूख चुका था। अब उससे प्यास बुझाने की आशा करना व्यर्थ था।

पद्मा उमिला की ओर देख रही थी, और मन-ही मन उसकी पूर्व अवस्था और वर्तमान अवस्था की तुलना कर रही थी। उसके चेहरे से जो शांति झलक रही थी, वह उसके आत्म-विश्वास की सूचक थी। वह पद्मा के बाद पार्टी में आई थी, लेकिन उससे कहीं अधिक सीख लिया था। कारण यह कि उसने अपने अस्तित्व को पार्टी के अस्तित्व में विलीन कर दिया था और वह दिन-रात को सफल बनाने में व्यस्त रहती थी। उसकी अपनी अभिलाषायें निजी न रहकर जनसाधारण—समस्त मानवता की अभिलाषायें बन चुकी थी। जो टेस समय की धारा के साथ बहती रही थी,

प्रदर्शनी

अक्तूबर के महीने का पहला दिन था। लाजपतराय हाल में प्रदर्शनी की व्यवस्था की गई थी। इस प्रदर्शनी का उद्घाटन पंडित बदरीनाथ ने किया था। अब लाला दसराज दशंको को तमाम चीजें बड़े प्रेम से दिखा रहे थे। उन्होंने गांधी टोपी, घोड़ी का घुला हुआ खट्टर का सफेद कुर्ता, बारीक धोती और चप्पल पहन रखी थी। कहने की आवश्यकता नहीं कि उनका यह सारा पहनावा मिर से पाव तक देशी या और हाथ का बना हुआ था। प्रदर्शनी की सब चीजें भी देशी थीं और हाथ की बनी हुई थीं। यह प्रदर्शनी पंजाब ग्राम सुधार सेवक मंडल के आयोजन से हो रही थी। इसका मसाला देशी और हाथ की बनी हुई चीजों का प्रचार करना था, ताकि लोगों के मन में देश की बनी हुई चीजों के प्रति प्रेम उत्पन्न हो, और घरेलू उद्योग-धंधों की उन्नति हो। हाल की दीवारों पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखे हुए जो मोटो लगा रखे थे, उनमें इस उद्देश्य का स्पष्टीकरण भली-भांति हो जाता था। उदाहरण के तौर पर एक मोटो के शब्द थे—

“भारत की उन्नति घरेलू उद्योग-धंधों की उन्नति पर निर्भर करनी है।”

अक्तूबर के महीने में स्वदेशी-प्रचार के प्रोग्राम को विशेष रूप से तेज कर दिया जाता था, क्योंकि इस प्रोग्राम का गांधीजी के जीवन से सीधा सम्बन्ध था और इस महीने के दूसरे दिन उनका जन्म-दिन पड़ता था, जो प्रतिवर्ष धूम-धाम से मनाया जाता था और इस साल भी मनाया जा रहा

था। इसी उपलक्ष में प्रदर्शनी की व्यवस्था की गई थी, जिसे तीन दिन तक जारी रहना था।

इसके अतिरिक्त और भी सरगमियां थीं। सुबह-सवेरे पंडित बदरीनाथ और लाला देसराज कुल कार्यकर्ताओं को साथ लेकर हरिजन बस्ती में खट्टर बांटने गये थे। इस शुभ अवसर पर वे हर साल खट्टर बांटने जाते थे; लेकिन इस बार बस्ती के जमादार सुन्दर के सिर पर जाने क्या भून सवार हुआ, कि उसने किसी को गिरह भर कपड़ा नहीं लेने दिया। सब 'चौधरीजी' 'चौधरीजी' कहकर उसे समझाते रहे; लेकिन उसने किसी की एक न सुनी, तंश में आकर बोला—“साल भर कहां सोते हो? हमारी बात तक नहीं पूछते। एक दिन आ खड़े होते हो दो गज खट्टर लेकर। बड़े दानवीर बनते हो। ले जाओ। हमें नहीं चाहिए तुम्हारा खट्टर!”

वे लौट आये। जिन महानुभावों ने सेवा-व्रत ले रखा हो उन्हें ऐसी बातों का तनिक मलाल नहीं होता। सब कुछ सुनना पड़ता है। जितना न सुना जाये, उतना अच्छा। यस अपने काम से काम।

प्रदर्शनी कल शुरू हुई थी। दो दिन और होगी। फिर ठीक दस बजे इसी हाल में अखंड चर्खा शुरू होगा। पहले पंडित बदरीनाथ अथवा कोई और प्रतिष्ठित नेता चर्खों की फिलासफी और खादी के अर्थशास्त्र पर भाषण देंगे। वे स्वयं अपने करकमलों से चर्खा चलायेंगे, दो-चार महीन तार निकालेंगे और फिर वह चर्खा लगातार चौबीस घंटे चलता रहेगा, एक सेकण्ड के लिए भी बन्द न होगा। एक के बाद दूसरा आता जायेगा, चर्खा वहीं रहेगा और चलता रहेगा—चौबीस घंटे लगातार, बिल्कुल अखंड!

लेकिन सिर्फ एक चर्खा नहीं, बहुत से चर्खे होंगे। कातने का मंच होगा। महीन और अधिक कातने वालों अथवा वालियों में तीन इनाम बांटे जायेंगे। यह इनाम हर साल दिये जाते हैं, हर साल मंच होता है, हर साल अखंड चर्खा चलाने की रस्म मनाई जाती है और महीन तार निकाले जाते हैं—प्रेम और श्रद्धा के तार!

चर्खा कातना हर कांग्रेसी नेता का धर्म है। उसके हाथ का कता हुआ

सूत मूल्यवान ही नहीं पवित्र भी समझा जाता है, प्रत्येक प्रदर्शनी में आदर और श्रद्धा से दिखाया जाता है। इस प्रदर्शनी के लिए भी देश के महान नेताओं के सूत के नमूने भगवाये गये थे। लाला देसराज यह नमूने प्रत्येक दर्शक को विशेषरूप से दिखा रहे थे और बता रहे थे—“यह बापू के हाथ का कता हुआ सूत है, बहुत अच्छा कातते हैं, फिर तार हाथ में लेकर कहते— देखिए तो सही, कौसा बारीक और मजबूत है।” कहते-कहते उनकी आँखें चमक उठती। ये श्रद्धा और आनन्द में भरकर बहुत-सी बातें कहते और अपने प्रवचन का अन्त इस वाक्य पर करते—‘ मैं तो समझता हूँ कि यह उनकी आध्यात्मिक शक्ति का चमत्कार है।’

गांधीजी के बाद पंडित जवाहरलाल नेहरू के हाथ का सूत, राज-गोपालाचार्य के हाथ का सूत, सरदार पटेल के हाथ का सूत, आचार्य कृपलानी के हाथ का सूत, खान अब्दुलगफ्फारखा के हाथ का सूत, पंडित बदरीनाथ के हाथ का सूत—दर्जा बदर्जा और करीने से रखा हुआ था। दर्शक न केवल सूत देखते थे बल्कि लाला देसराज अपनी योग्यता के अनुसार प्रत्येक नेता के व्यक्तित्व की जो व्याख्या करते थे, उसे भी सुनते थे।

सूत के बाद हाथ के घुने हुए कपड़े के नमूने थे, जिनमें पांच पैसे गज की मोटी और छिद्री खादी से लेकर, पांच रुपये गज तक का रेशम, बारीक घोटिया और साडिया मौजूद थी। लोग इन साडियों की महानता, सुंदरता और हल्का वजन देखकर चकित रह जाते, और ईस्ट इंडिया कम्पनी के अत्याचारों की कहानी आँखों में भरकर कहते—“ढाके की महीन मलमल के किस्से, कि चालीस गज का धान अगूठी में से गुजर जाता था, बिलकुल सही मालूम होते हैं।’

‘जी हाँ, बिलकुल सच्ची बात है।’ लालाजी स्वर में आदरता भरकर बोल उठते, ‘अंग्रेज सौदागरों की बदमाशी ने सब कुछ नष्ट कर दिया, कारीगरों के अगूठे कटवा दिये। फिर भी देखिए हमने थोड़े से अरसे में कितनी उन्नति कर ली है। सन् बीस-बाईस की बात है, जब हम कालेज छोड़कर असहयोग आंदोलन में शामिल हुए थे, उस वक्त खदर इतना मोटा

और खुरदरा था कि पहनने से शरीर छिलता था।” लालाजी ने नाक रों सिकोड़ी, जैसे उस खद्दर के विचार मात्र से विशेष कष्ट हो रहा हो, “हमने उस समय से खद्दर पहनना शुरू किया है और उस समय खद्दर पहनना एक बात थी। अब तो जिसे देखो वही खद्दर पहने घूम रहा है, हमने वह खद्दर रगवाकर पहना था और साधुओं का भेष……”

सबकी निगाहें लालाजी पर जम जाती। वे उनका कुर्ता, बारीक धोनी और चप्पल ध्यान से देखते, जैसे वे स्वयं भी प्रदर्शनी ही का एक अंग हों।

लेकिन लालाजी प्रदर्शनी का अंग नहीं, उसके इंचार्ज थे। दर्शकों को प्रत्येक वस्तु भली-भांति दिखाना उनका कर्त्तव्य था और वे अपने इस कर्त्तव्य का पालन बड़ी मुस्तंदाई से कर रहे थे। सूत और कपड़े के अतिरिक्त और भी बहुत सी चीजें थी—जैसे हाथ का बना हुआ कागज, खरास का पिसा हुआ आटा और खजूर का गुड़—गुड़ जो लालाजी के मधुर सम्भाषण की तरह मीठा था। एक गीता रखी हुई थी जिसकी जिल्द खादी की थी और वह हाथ से बांधी गई थी और गांधीजी की एक छोटी-सी मूर्ति थी, जो उनके किसी श्रद्धालु ने अपने हाथ से बनाई थी।

ये सब चीजें दिखा देने के उपरांत लालाजी का अन्तिम प्रवचन होता था—“आपने देखा, हमें मशीनरी की बिलकुल जरूरत नहीं है। मशीनरी ने हमारे दिल और दिमाग को गुलाम बनाया है और हम मामूली-मामूल बातों के लिए दूसरों के मोहताज हो गये हैं……”

दर्शकों की भीड़ शाम को बढ़ जाती, क्योंकि लोग दफ्तरों से आकर और काम से निपटकर जब सैर को निकलते, तो प्रदर्शनी भी देखते थे। लालाजी हर वक्त हाल में मौजूद मिलते थे। वे अपना चर्खा वही उठा लाये थे। जब कोई देखने वाला नहीं होता था, तो कातने बैठ जाते थे।

इस समय ग्यारह बजे थे और लालाजी बैठे चर्खा कात रहे थे, कि प्रह्लाद और गोपाल उधर आ निकले। वे जैसे ही घूमने निकले थे, कल उद्घाटन के समय भी उपस्थित थे, और सब चीजें देख चुके थे। यदि ये चीजें पहले न देखी होती तब भी उन्हें किसी नेतृत्व की आवश्यकता नहीं थी। वे खुद कांग्रेसी थे, सारी बातें भली-भांति जानते और समझते थे।

इसलिए लालाजी कातने में व्यस्त रहे। दोनो भी शोर उनके पास था वंठे। गोपाल ने लालाजी के हाथ का सूत बंधे गोपाल ने देखा और फिर मुस्कराते हुए कहा—

‘लालाजी आप इस का नमूना भी तो प्रदर्शनी में रखिये !’
 “प्रदर्शनी ही में तो रखा है, देख लो जी भरकर।” लालाजी ने भेट उत्तर दिया।

‘पर ऐसे नहीं। बाकायदा लीडरो के सूत के साथ पकित में लटका हुआ हो और उस पर चिट लगी हो—लाला देसराज के हाथ का कता हुआ सूत।’

गोपाल अब भी अपनी बात मुस्कराकर कह रहा था, लेकिन लालाजी गम्भीर होकर बोले—“देखो गोपाल, तुम अभी नौजवान हा। तुम्हें जिदगी में बहुत कुछ सीखना है। अगर सफलता चाहते हो तो मेरी एक बात सदा याद रखो।” फिर उन्होंने तार को तकले पर चढाते हुए कहा, “आदमी काम में बड़ा बनता है, दिखावे से नहीं।”

“माफ कीजिएगा लालाजी।” इस बार प्रह्लाद बोला, “यो तो आप को यह प्रदर्शनी भी दिखावा है।”

‘नहीं, यह दिखावा नहीं, काम है। लोगो को पता चलता है कि हम मशीनरी के बिना गुजारा कर सकते है, जब मशीनरी नहीं थी तब हम अधिक खुशहाल और नेक थे” लालाजी न एक लम्बा तार निकाला और उसे तकले पर लपेटत हुए कहा—‘और लोगो को मालूम होता है कि काप्रेसी सिर्फ भापण ही नहीं देते, काम भी करते हैं।’

‘काम जो हो रहा है, वह आप भी जानते हैं और हम भी।’ गोपाल ने एतराज किया और गम्भीर होकर कहा, “एक रस्म पड गई है, जिसे पीटा जा रहा है।’

अन्तिम वाक्य सुनकर प्रह्लाद क कान खडे हुए और वह गोपाल की ओर देखकर रहस्यपूर्ण ढग से मुस्कराया।

“काम क्या नहीं हो रहा।” लालाजी का स्वर ऊचा और तीव्र हो गया था—“चर्खा सघ की घाचें खुली हैं, खदर भण्डार खुले हैं, लाखो

बेकारों का रोजगार चलता है और देश का रुपया देश में रहता है।....”

“और हर साल हजारों रुपये का जो नुकसान रहता है, वह बिड़ला पूरा करता है।”

गोपाल जब यह बात कह रहा था, नारायण भी आ गया। वे तीनों अभी जगदीश के पास बैठे थे। प्रदर्शनी की बातें हो रही थी, जगदीश ने इसे एक रस्म बताया था। और फिर चर्खे और मशीनरी का जिक्र करते हुए कहा था कि चर्खा संघ में जो मजदूर काम करते हैं उन्हें मजदूरी लगभग साढ़े तीन आने मिलती है और काम दस घंटे से भी अधिक करना पड़ता है। फिर भी हजारों रुपये महीना का नुकसान रहता है, जो बिड़ला पूरा करता है।

ये आंकड़े ‘खादी का अर्थशास्त्र’ पुस्तक में दर्ज थे; जिसे नारायण ने भी पढ़ा था। जगदीश ने इसी पुस्तक के आधार पर वे सारी बातें कही थी, जिन्हें अब गोपाल दोहरा रहा था।

“गलत, बिल्कुल गलत!” देसराज ने प्रतिवाद किया, “नुकसान हरगिज नहीं रहता।”

“नुकसान तो रहता है लालाजी, और बिड़ला उसे पूरा भी करते हैं।”

नारायण ने धीमे, मगर दृढ़ स्वर में कहा। लालाजी उसके मुंह की ओर देखते रह गये और स्वर बदलकर बोले—“तुम्हारी ही बात सच मान ली जाये तो भी यह बापू की दानिशमंदी है कि उन्होंने सरमायेदारों को भी अपने साथ ले रखा है। इतने बड़े आंदोलन पैसे के बिना नहीं चलते। बापू का ही चमत्कार है कि जिन्हें तुम खून चूसने वाले कहते हो, वे भी आजादी की लड़ाई में सहयोग दे रहे हैं, देश के लिए त्याग कर रहे हैं।”

“त्याग तो आपके पंडित बदरीनाथ भी बहुत करते हैं।” गोपाल ने विषय से हटकर व्यंग्य किया।

गोपाल ने प्रह्लाद की ओर नहीं देखा। वह अपना निचना होंठ चबा रहा था और आंखों में तिरस्कार भरा था, जैसे वह सहसा चिढ़ गया हो,

उसका मन खीझ से सटपटा रहा हो। उसे मालूम था कि लालाजी की बात के उत्तर में गोपाल आगे क्या कहेगा। वे जगदीश से जो बातें सुनकर आए थे, गोपाल उन्हें एक-एक करके दोहरा रहा था। दरअसल वे बातें दोहराने के लिए ही उसने यह प्रसंग छेड़ा था। प्रह्लाद इन सब बातों से सहमत था, लेकिन गोपाल का यह छिछलापन देखकर वह उसका विरोधी बन गया और मन ही मन निश्चय किया कि किसो बात पर उलझकर उसे खरी खरी सुनाये और सारा बुकरातपन निकाल दे।

“जी हा, पंडित बदरीनाथ भी त्याग करते हैं।” लालाजी ने छाती निकाल कर बड़े गर्व से कहा, “कल ही की बात है कि उन्होंने असेम्बली की मेम्बरी पर लात मार दी। मेम्बरी छोड़ देना कोई कम त्याग नहीं है।”

लालाजी क्रोध में लाल-पीले हो रहे थे। कोई उनके अपने व्यक्तित्व में लाख दोष निकाले, वह चुपचाप सुन लेते थे, कोई व्यक्ति पंडित बदरीनाथ पर आरोप करे, यह उन्हें सहन नहीं था। “भाफ करना।” वह फिर बोले, “तुमने चूकि नाम लिया है, मैं भी नाम लेता हूँ। तुम्हारा मदन इसी मेम्बरी के लिए मारा-मारा फिरता है, राजनीति में भाग लेते जुमा-जुमा आठ दिन हुए नहीं और हालत यह है। पैदा होते ही मेम्बरी के स्वप्न देखने लगते हैं और बड़े इनकलाबी बनते हैं।”

मदन पर चोट हो तो गोपाल प्रसन्न होता था, लेकिन इस समय व्यक्ति का नहीं, बायें दल की मान-रक्षा का प्रश्न था, जिससे गोपाल अपने आपको सम्बन्धित समझता था, बोला—

“हां, हमारी पार्टी का हर एक सदस्य इनकलाबी और बहादुर है। मदन ही को लीजिए वह भी इस समय किले में बन्द है।” वीरता गोपाल के चेहरे से प्रकट थी, क्योंकि उसके गाल सुख हो गये थे—“पंडित जी ने किसलिए मेम्बरी छोड़ी है, यह ढोल की पोल भी हमें मालूम है।”

“क्या मालूम है तुम्हें?” शब्द कटु और विपरीत थे, जैसे उन्होंने अपने अहिंसावादी मन में बिच्छू पाल रखा हो।

“हमें यह मालूम है कि विधान सभा के कांग्रेस सदस्य उन्हें लीडर

चुनने को तैयार नहीं थे। मेम्बरी छोड़कर लीडरी की शान कायम रखी है और यही उनका त्याग है।" गोपाल बोला।

बात सच्ची थी। लालाजी की चढ़ी हुई स्थिरियां उतर गईं और मुंह जरा-सा निकल आया।

गोपाल हंसा-विद्रूप, कटु और विजयोन्मत्त हंसी। इस आशा में कि नारायण और प्रह्लाद भी हंसेंगे, उसने उनकी ओर देखा। लेकिन उनका ध्यान इधर नहीं था, जैसे उन्हें बहस से कोई दिलचस्पी न हो और बड़ी देर से प्रदर्शनी की चीजें देख रहे हों।

"तुम लोग बस दूरियों पर कीचड़ उछालते हो, बेकार बातें बनाते हो और काम कुछ नहीं करते।"

लालाजी के चेहरे की नसें तन गईं और नयुने फड़फड़ाये।

"अगर हर दस साल के बाद छः महीने कैंद हो आना ही काम है, अगर हाल में बैठकर चर्खा कातना और साल में एक बार मंगियों में जाकर खहर बांट आना ही काम है, तो ठीक है हम लोग काम नहीं करते" गोपाल लालाजी को चिढ़ाने पर तुला हुआ था और तरकश से नया-नया तीर निकाल रहा था, "सब जानते हैं कि आप लोगों ने सियासत को दुकानदारी बना रखी है और उसे घमं का रूप दे दिया है। जिस तरह दूसरे कारोबारी लोग गंगा में नहाकर पाप धो आते हैं और फिर कारोबार में लग जाते हैं, उसी तरह आप लोग खहर पहनकर, चर्खा कातकर और छः महीने कैंद काटकर पाप धो लेते हैं, शुद्ध होकर फिर कारोबार में लग जाते हैं और देशभक्ति के नाम पर दुगुना और चौगुना कमाते हैं।..."

"और तुम क्या करते हो?"

गोपाल ने जो बातें सुनी थी, वे सतम हो चुकी थी। और बहस को आगे बढ़ाने या उसका मन नहीं था। लेकिन एकदम बन्द भी कैसे करता? लालाजी के प्रश्न का उत्तर देना तो जरूरी था। तुनककर बोला—

"हम किसानों, मजदूरों का संगठन करेंगे और उनकी ताकत से इनकलाब लायेंगे।"

"ताकत का इस्तेमाल हिन्दुस्तान का नहीं, रूस का सिद्धान्त है, इस-

लिए तुम अपने देश का नहीं रूस का प्रचार करते हो।”

इस बार लालाजी ने गोपाल की कमजोर रग पर हाथ रखा था, वह झुमला कर बोला—“यह झूठ है। हमें रूस से कोई सरोकार नहीं। साबित करो कि हम रूस का प्रचार करते हैं?”

“साबित मैं करता हूँ।” प्रह्लाद बोल उठा, “गनी हमेशा लाल झडा लेकर और बोलशेविक सिपाही की वर्दी पहन कर निकलता है और तुम सब बड़े गर्व से कहते हो कि गनी रूसी सिपाही है।”

“नारायण बैठा है पूछ लीजिए, मैं हमेशा इस बात का विरोध करता हूँ।” गोपाल ने सफाई पेश की।

“बात तुम्हारी नहीं, असूल की हो रही है।” लालाजी ने आखें झपकाईं।

“असूल-वसूल कुछ नहीं।” नारायण बोला, “गनी अपने आपको रूसी सिपाही कहकर खुश होता है क्योंकि वह समझता है कि रूस में मजदूरों और किसानों का राज है और रूसी सिपाही उनके इस राज की, महानत और आजादी की हिफाजत करता है।”

“हम जानते हैं कि रूस के लोगों को कौसी आजादी हासिल है। स्टालिन के खिलाफ कोई खदान तक नहीं हिला सकता।” लालाजी ने प्रतिवाद किया।

“आप कहते हैं कि वहाँ मजदूरों का राज है; लेकिन जरा बताइये तो सही कि मजदूरों पर मजदूरों की डिक्टेटरशिप का क्या मतलब?” प्रशाद बोला।

प्रह्लाद को यो तेज होते देख नारायण अवाक् रह गया। वह इसका कारण नहीं समझ पाया। एक मिनट चुप और मौन उसके मुह की ओर देखता रहा फिर आखों में आखें डालकर पूछा—

“प्रह्लाद! यह तुम पूछ रहे हो?”

“हां, मैं पूछ रहा हूँ।” प्रह्लाद ने हर एक शब्द पर जोर दिया।

“नहीं, तुम नहीं पूछ रहे।” नारायण ने उत्तर दिया और स्वर बदलकर कहा—“तुम्हें तो मैं पहले ही बात चुका हूँ।”

“एक बार फिर बता दो हर्ज क्या है?” सालाजी को फौतूहल सूझा।

मगर नारायण चुप बैठे हाल में लगे चित्रों की ओर देख रहा था।

ताजमहल

चादनी रात थी। रूही बाग में बैठी थी। आकाश पर बादलों के आवारा टुकड़े घूमते फिर रहे थे। एक बड़ा टुकड़ा धीरे-धीरे और दबे पाव चाद की ओर बढ़ रहा था, जैसे कोई चोर नींद में मस्म रमणी के माथे का मोती चुराने का प्रयत्न कर रहा हो। रजनी ऊध रही थी। बादल ने आगे बढ़कर चाद को अपने दामन में छिपा लिया, लेकिन उसका क्षमन महीन था, चादनी उसमें से छन रही थी; बाग के फर्श पर, बेल-बूटो पर और रूही के सुन्दर शरीर पर मद्धम-मद्धम प्रकाश पड़ रहा था। प्रत्येक वस्तु उन्मत्त, जादू में डूबी हुई सी दीख पड़ती थी, जैसे समस्त प्रकृति ने स्वर्ण-आलोक की एक हल्की-सी चादर ओढ़ रखी हो।

रूही ने एक सानन्द अगड़ाई ली और फिर वातावरण पर एक ऐसी दृष्टि डाली, जो बिजली की चमक की भाँति घरती से आकाश तक घूम गई। वह मुस्करा उठी। उसका अग-अग मुस्करा रहा था। वह स्त्रि से पाव तक पुष्प-बाटिका बनी हुई थी। वक्षस्थल में, मन में, बाहों में और आँखों में फूल खिले थे, जिन की सुगन्ध से उसकी आत्मा का कण-कण महक उठा था। अभी इखलाक उसके साथ था। उसने रूही को स्पर्श किया था। कितना विचित्र था यह स्पर्श जिसने रूही के नारीत्व को जगा दिया था।

उसे इखलाक के साथ अपनी इस भेंट की एक-एक बात याद आ रही थी।

जब मे रूही ने इखलाक की गिरपतारी की खबर पढ़ी थी, वह उसे देखने के लिए विकल थी और यों महसूस कर रही थी जैसे वह खुद परियों की कहानी की शहजादी हो और उसका प्रेमी शहजादा उसे प्राप्त करने के लिए कोई कठिन मुहिम सर करने गया हो और वह वैठी उमका इन्तजार कर रही हो ।

पहले उसने इखलाक से इस मुहिम की—अपने कारनामों की कहानी सुनाने को कहा । इखलाक उसे मजदूरों के संगठन, उनके संघर्ष और उनके निजी जीवन की बातें सुनाता रहा । रूही बड़ी दिलचस्पी से सुनती रही और उसकी आंखों, चेहरे और हिलते हुए होंठों को देखती रही । उसके मुख से निकला हुआ एक-एक शब्द महत्वपूर्ण था; हृदय में उतरा जा रहा था, उसमें आत्मीयता का रस था, आकर्षण था । वह प्रेमी शहजादे की आप-बीती सुन रही थी । कहानी लम्बी थी, लेकिन रूही उसे आदि से अन्त तक सुन लेना चाहती थी । उसके सामने नये जीवन के नये अनुभव बयान किए जा रहे थे और इन नये अनुभवों ने इखलाक को भी नया बना दिया था । मुहिम से लौटे हुए शहजादे के व्यक्तित्व में कितना आकर्षण और कितनी विलक्षणता थी । रूही उसे जी भरकर देख लेना और उसकी विलक्षणता को अपनी आत्मा में भर लेना चाहती थी ।

“क्या तुम्हें कभी मेरी भी याद आती थी ?”

इखलाक ने कोई उत्तर नहीं दिया । वह कुछ क्षण चुप बैठा रूही के सुन्दर सकोमल होंठों की ओर देखता रहा, जो प्रश्न कर चुकने के उपरान्त भी गुलाब की पंखड़ियों के सदृश हिल रहे थे, जैसे उन पर कोई गीत मचल रहा हो और कोई अन-सुनी, अन-गाई लय वातावरण को संगीत-मायुर्य से भर रही हो । रूही चाहती थी कि इखलाक उसकी ओर ऐसे ही देखता रहे । उसकी निगाहों से उसे अपने प्रश्न का उत्तर मिल चुका था । लेकिन उसके होंठ हिले और वह बोला—

“नहीं !”

निस्तब्ध वातावरण में एक अमर संगीत गूँज उठा, जैसे इखलाक खुद न बोला हो, बल्कि उसने रूही के होंठों पर कम्पित और विकल राग को

छेड़ दिया हो। रुही झूम उठी। यह एक 'नही' सो 'हां' पर भारी थी और नकार के पदों में जो आत्मीयता निहित थी, वह वादलों में से छन-छन-कर आने वाली चादनी के सद्गुण मद्धम, कोमल और उन्मादपूर्ण थी। फिर मौन का एक चिरक्षण—और वे दोनों चुपचाप एक दूसरे की ओर देखते रहे।

इसी अवस्था में जैसे सदिया बीत गईं।

देखने का वह ढंग कितना उत्साहमय था। उसकी धरूपना मात्र से रुही मिहुर उठी थी। इखलाक की गए आध घण्टा से अधिक बीत चुका था, लेकिन रुही को लग रहा था, जैसे वह अब भी उसके पास बैठा हो और उसे वैसे ही देख रहा हो, जैसे उन क्षणों को अमरत्व प्राप्त हो गया हो।

“रुही, जब इन्सान के दिल में हुस्न और मोसीकी की कशिश बाकी न रहे, रुहानियत का एहसाम मिट जाये, तो वह इन्सान नहीं रहता, हैवान बन जाता है।”

इखलाक ने बाव शुरु की ओर आहिस्ता-आहिस्ता कहता रहा—
 “सदियों की गुलामी, भूल और इफलास ने हमारी हालत हैवानों-सी बना दी है। हमारे नजदीक जिन्दगी का मकसद पेट भरने के अलावा कुछ नहीं है। और हम पेट भी अच्छी तरह नहीं भर सकते। हम जिस रुहानियत पर नाज करते हैं, और जिस आला तहजीब की डींगें मारते हैं। वे सब खाली पेट के ड्यार है। जब तरु इन्सान को माही सकून¹ हासिल न हो, रुहानियते मयस्सर नहीं आ सकती। हम अपने ही खोल में मस्त हैं, हम अपने जेहनी उफक² को बुलद करने और अपनी रुह में हुस्न भरने की जरा भी कोशिश नहीं करते। हमारी मौजूदा जद्दो-जहद का मकसद यह है कि खुदपसन्दी का यह खोल टूटे, और हम इस सतह से ऊपर उठें और सब मिलकर उस मजिल की तरफ बढ़ें, जहा से एक नई जिन्दगी का धागाज

1 भौतिक शान्ति

2 क्षितिज

अब उसकी बाहें इखलाक के गले में नहीं थीं। देर हुई, वह जा चुका था। लेकिन वह अब भी स्थिर घंठी थी, उन्माद में डूबी हुई सी। वह उन क्षणों को, इखलाक के स्पर्श को और उसकी गर्म साम को अनुभव कर रही थी। वे क्षण अमर और अनन्त थे। उनका कोई और-छोर नहीं था। वह चुप और स्थिर बैठी थी और उनका अग-अग मुस्करा रहा था।

महमा निम्नब्यता टूटी। एक भीमर की आवाज फिजा में गूँज उठी। रूही का ध्यान टूटा। हवा में ठडक बढ़ गई थी। उसने एक कपकपी सी लेकर आकाश की ओर देखा। बादल का दामन चाद पर से सरकता जा रहा था। चापद्र उसे भीमर की आवाज ने चौंका दिया था और वह खोरी का माल वही छोड़कर भाग निकलने का मार्ग खोज रहा था। चादनी निखर गई थी, प्रत्येक वस्तु चमक उठी थी स्वच्छ और उज्ज्वल दीख पड़नी थी।

रूही अब भी आकाश की ओर देख रही थी। बादल की ओट से निकलना हुआ चाद मुस्करा रहा था, जैसे उसने किसी से आख-मिचौनी खेली हो। तनिक परे जाकर बादल भी उसे मुस्कराता हुआ देखने के लिए ठहर गया। लेकिन हवा को उसका यह व्यवहार पसन्द नहीं था। वह उसे आगे चलने पर विवश कर रही थी। बहुरूपिया बादल मचल गया और उसे प्रमत्त करने के लिए भट्ट एक सुन्दर भवन का रूप धारण कर लिया। रूही उसे विस्मय और आश्चर्य में भरी देखती रही, जैसे वह उसकी अपनी रचना हो। उसकी अपनी कल्पना ने ही यह सुन्दर भवन निर्माण किया हो। इखलाक और वह दोनों ही बाहों में बाहे डाले उसकी ओर बढ़ते जा रहे हों, आकाश में अटका थीर चादनी में नहाया हुआ यह सुन्दर भवन ताजमहल से कहीं सुन्दर था।

फिर उसे ताजमहल से सम्बन्धित यह बात याद हो आई कि एक अग्रज स्त्री ने अपने पति से कहा था कि अगर वह उसकी कब्र पर ताज-महल बना सके तो वह तरक्षण भरने को तैयार है। अहम्मय भावना की

होता है, इंसान मुस्कराना सीखता है और हुस्न और मुहब्बत के मानी समझने लगता है ।”

उसने ऐसी बहुत सी बातें कही—और कही दृढ़ विश्वास और निश्चय के साथ । उसका स्वर इतना सहज और स्वाभाविक था, जैसे वह बातें न कर रहा हो, सास ले रहा हो—“रुही ! कोल्हू के वेल की तरह हम एक दायरे में घूमते रहना पसन्द करते हैं, जितना यह दायरा तंग और महदूद है, उतने ही हमारे ख्यालात तंग और महदूद हैं । हमने कभी कायनात¹ की वुसअतों² में उड़कर नहीं देखा, जिन्दगी की अजमतों को नहीं पहचाना ।”

रुही ने उल्लास में भरकर एक लम्बी अंगड़ाई ली, जैसे उसके भीतर की जड़ता टूट रही हो । वह मुस्कुराई और उसने बांहें फैला दीं, जैसे पिजड़े की अभ्यस्त गुरैया सृष्टि के विस्तार में उड़ने के लिए पर तोल रही हो । उसने प्रेम भरी दृष्टि से इखलाक की ओर देखा और उसकी अचकन का एक छोर पकड़ कर स्मित कहा—

“इखलाक इन वुसअतों में तुम मुझे भी अपने साथ ले चलो । बुलदियों पर हम तुम इकट्ठे उड़ेंगे और सितारों से कहेंगे, हम तुम्हारे राजदां हैं ।”

और उसकी बड़ी-बड़ी आंखें सितारों पर गड़ी हुई थी और उनसे वहीं अमर अभिलाषा व्यक्त हो रही थी, जो मनुष्य सृष्टि के आरम्भ से अपने सपनों में छिपाये हुए है ।

इखलाक ने सगर्व रुही की ओर देखा । उसे अपनी छाती फँलती हुई लगी, जैसे उसके चौड़े चकले वक्षस्थल में रुही के इन शब्दों ने सृष्टि का समस्त विस्तार भर दिया हो । उसने उल्लास और उन्माद में भरकर रुही को बांहों में जकड़ लिया, उसकी सुन्दर आंखों और रसीले होंठों को चूम लिया । रुही ने अपनी बांहें इखलाक के गले में ढाल दीं और अपने दिल से उसके दिल की घड़कन को सुनने और अनुभव करने लगी ।

-
1. सृष्टि
 2. विस्तार

अब उसकी बाहे इखलाक के गले मे नही थी। देर हुई, वह जा चुका था। लेकिन वह अब भी स्थिर बैठी थी, उन्माद मे डूबी हुई सी ! वह उन क्षणो को, इखलाक के स्पर्श को और उसकी गर्म सास को अनुभव कर रही थी। वे क्षण अमर और अनन्त थे। उनका कोई ओर-छोर नही था। वह चुप और स्थिर बैठी थी और उसका अग-अग मुस्करा रहा था।

महसा निस्संभ्रता टूटी। एक भीगर की आवाज फिजा मे गूँज उठी। रूही का ध्यान टूटा। हवा मे ठडक बढ गई थी। उसने एक कपकपी सी लेकर आकाश की ओर देखा। बादल का दामन चाद पर से सरकता जा रहा था। शायद उसे भीगर की आवाज ने चौंका दिया था और वह चोरी का माल वही छोडकर भाग निकलने का मार्ग खोज रहा था। चादनी निखर गई थी, प्रत्येक वस्तु चमक उठी थी स्वच्छ और उज्ज्वल दीख पडनी थी।

रूही अब भी आकाश की ओर देख रही थी। बादल की ओट से निकलना हुआ चाद मुस्करा रहा था, जैसे उसने किसी से आख-मिचौनी खेली हो। तनिक परे जाकर बादल भी उसे मुस्कराता हुआ देखने के लिए ठहर गया। लेकिन हवा को उसका यह व्यवहार पसन्द नही था। वह उसे आगे चलने पर विवश कर रही थी। बहुरूपिया बादल मचल गया और उसे प्रसन्न करने के लिए भट एक सुन्दर भवन का रूप धारण कर लिया। रूही उसे विस्मय और आश्चर्य मे भरी देखती रही, जैसे वह उसकी अपनी रचना हो। उसकी अपनी कल्पना ने ही यह सुन्दर भवन निर्माण किया हो। इखलाक और वह दोनो ही बाहो मे बाहे डाले उसकी ओर बढते जा रहे हो, आकाश मे अटका और चादनी मे नहाया हुआ यह सुन्दर भवन ताजमहल से कही सुन्दर था।

फिर उसे ताजमहल से सम्बन्धित यह बात याद हो आई कि एक अंग्रेज स्त्री ने अपने पति से कहा था कि अगर वह उसकी कब्र पर ताज-महल बना सके तो वह तरक्षण मरने को तैयार है। अहम्मय भावना की

अंधी अभिलाषा ! वह नारी बड़ी विचित्र थी, जिमने जीवन पर ताजमहल को तरजीह दी थी । शायद उसके प्रेम-स्वप्न अधूरे रहे हों और वह भर कर उनकी पूर्ति चाहती हो । लेकिन रूही को यह मोदा स्वीकार नहीं था । उसे जीवन से प्रेम था, फूलों और गीतों से प्रेम था और वह कल्पना की निर्माण-शक्ति से सारों ताजमहल निर्माण कर सकती थी— सुहाने और सुन्दर ताजमहल !

चूज़ा

अशोक, नारायण, राजेन्द्र, इखलाक, गनी, बूटासिंह और ताया दपतर में बैठे थे। दिसम्बर का महीना था और तेज हवा चल रही थी, इसलिए दिन के दो बजे भी बाफ़ी मर्दी थी। वे दीवार से सटे चटाई पर बैठे थे। तीन-चार आदमियों ने एक कम्बल घुटनों तक ओढ़ रखा था। अशोक ने एक वास्केट पहनी हुई थी, जिसकी आस्तीनें पूरी थी और गला बन्द था। वास्केट चमड़े की थी और उसके सुगठित शरीर पर फिट आती थी। ऐसी वास्केटें पहनने का रिवाज नहीं था और कुछ मित्रों ने उस पहली बार यह वास्केट पहने हुए देखा था, इसलिए उनकी दृष्टि में कौतूहल था। अशोक उनकी दृष्टि से और सर्दों ने अनभिज्ञ और सुरक्षित मसून बैठा था, जैसे वह टुड़्रा का रहने वाला हो और सनूर का लिबास पहनने का आदी हो।

“कामरेड यह वास्केट तो खूब है।” राजेन्द्र बोला।

“हा खूब है। सर्दों बिल्कुल नहीं लगती।” अशोक ने उत्तर दिया और चुप हो गया। लेकिन तनिक रुक कर फिर बोला “दरअसल इस किसम की वास्केटें अमीर लोगों के आबारा और ओबास लडके पहनते हैं। यह एक मित्र के पास पड़ी थी, वह पहनने से कतराता था। मैंने कहा, लाओ इसे मैं पहन लूँ, सर्दों से तो बचाव होगा।”

“इसके अलावा आबारा और ओबास सही, लाओ अमीर तो समझेंगे।”

नारायण बोला और सब हंस पड़े। वस अब क्या था चुहलवाजी शुरू हो गई। बूटासिंह जो राजनीतिक मामलों पर बहस के समय प्रायः चुप रहता। ऐसे अवसरों पर चहक उठता था। उसने अत्यंत गम्भीर मुद्रा बनाकर कहा—

“कामरेड अशोक, हम बड़े इनकलाबी बनते हैं और बड़े-बड़े मनसूबे बांधते हैं, लेकिन कामरेड गनी का एक मामूली काम है, वह नहीं कर सकते।”

“क्या ?” अशोक ने पूछा।

गनी चकित और स्तब्ध बूटासिंह का मुंह ताकने लगा। उसे खुद मालूम नहीं था कि कामरेड अशोक से किस बात की सिफारिश की जा रही है।

“बता दूं न, कामरेड गनी ?” बूटासिंह ने दरियापत किया और फिर आप ही आप हंस पड़ा। वह हंसता था तो जैसे हसी का फव्वारा फूट पड़ता था। हसी के मधुर शीतल छोटे चारों ओर फैल जाते थे, और उसके नकली दांत दिखाई देने लगते थे। सबको उत्सुक देखकर वह बोला—
“सामने की कोठी में दो चोटियां वाली जो कांता नाम की लड़की रहती है, मैंने कई बार देखा है कि वह छत पर खड़ी कामरेड गनी को प्यार भरी दृष्टि से देखा करती है और गनी भी उसकी ओर ऐसे देखता है, जैसे उसे अपने दिल की रानी बना लेना चाहता हो। अगर हम कोशिश करें तो इन दोनों का मेल हो सकता है ? आखिर कामरेड गनी अच्छा तकड़ा खूब-सूरत जवान है।”

सब की प्रश्न-सूचक निगाहें गनी के चेहरे पर पड़ गईं। वह गरीब भ्रंप गया। जवान में तो कुछ नहीं कह सका; लेकिन 'नहीं' में अंगुली हिलाई और कानों पर हाथ धरे और वह घुटने बाजुओं में लेकर दीवार की ओर सुकड़ने लगा। लेकिन बूटासिंह ने उसका कंधा पकड़कर हिलाया और आगे धकेल कर कहा—“कामरेड ! यों शरमाया नहीं करते। आंख लड़ गई, सो लड़ गई। साफ-साफ कहो। आखिर मुहब्बत भी तो मर्दों ही का शेषा है।”

‘बताओ, कामरेड ! कोई हर्ज नहीं । हम भी तुम्हारी मदद करेंगे । अशोक कह रहा था और मुस्कराते हुए गनी की ओर देख रहा था ।

“काम बन जायेगा न ?” बूटासिंह ने पूछा ।

“क्यों नहीं, हम कोशिश करेंगे ।”

“बस फिर आप कोशिश कीजिए । गनी तैयार है, मैं जिम्मा लेता हूँ ।”

गनी ने फिर ‘नहीं’ भे अगुली हिलाई । वह खुद मज्जाक का विषय बना हुआ था, लेकिन हस रहा था और उसकी हसी बूटासिंह से कम स्मृद्ध और सानंद नहीं थी ।

‘देखिए साहब, बेचारे के साथ ज्यादाती न कीजिए ।’ नारायण ने बकालत की “हकीकत यह है कि वह मुहब्बत के बावजूद शादी ने भ्रष्ट भे फमना नहीं चाहता । उसने जिन्दगी इनकलाब के लिए बकफ कर दी है । मरने के बाद जन्नत में हूँ मिलेंगी । वहा ऐश भी करेगा और मुहब्बत भी ।”

‘लेकिन इसे जन्नत में घुसने कौन देगा ? नमाज पढता है न रोजे रखता है ।’ इखलाक बोला ।

‘न सही नमाज और रोजे’ नारायण ने उत्तर दिया “उमके नजदीक आज्ञादी के लिए जद्दोजहद करना ही सबसे बड़ी अबादत है ।”

‘यह बात यह बात ।’ गनी ने गर्व से सिर हिलाया और आखे उल्लास से चमक उठी ।

‘अच्छा गनी, बहुत दिन हुए । आज एक नाच हो जाये ।’ अशोक ने विषय बदला ।

गनी नाचने को तैयार था, पर कुछ भेंप रहा था । बूटासिंह और गापाल ने जो उसके निकट बैठे थे, सहारा देकर उसे खड़ा किया । और उसने हाथ नीकर की जेबो से निकालकर बाहें छाती पर कसते हुए कहा—

‘पहले फौजी नाच ।’

‘बारी बारी सारे नाच । बहुत-सी आवाजें एक साथ आईं ।

गनी कई नाच जानता था और उसने हर नाच का अलग नाम रख छोड़ा था ।

पहले फौजी नाच शुरू हुआ । छाती पर जकड़े हुए हाथ नीचे आ गए मुट्ठिया भिच गईं, सीना तन गया, समस्त शरीर में स्फूर्ति की तरंग दौड़ गईं, और चेहरा कठोर और गम्भीर पड़ गया । उसने विभिन्न हाव-भाव से आंखों के इशारे से और पांव की जुंबिश से जो वातावरण पैदा किया, उसमें जोश, जवानी और वीरता मचल रही थी । लगता था कि दो फौजें आमने-सामने खड़ी हैं, लोहे से लोहा टकरा रहा है और एक बांका सिपाही विरोधी सफों को चीरता और लड़ना हुआ आगे बढ़ रहा है और इधर-उधर उत्साहवर्धक दृष्टि डालकर अपने साथियों को भी आगे बढ़ने की प्रेरणा दे रहा है । जितनी देर गनी नाचता और थिरकता रहा, कमरे में नितान्त निस्तब्धता रही, जैसे लोगों ने सांस तक रोक ली हो । अलबत्ता जब नाच बन्द हुआ तो बहुत सी ध्वनियां एक साथ गूज उठी—“शाबाश, बहादुर सिपाही बढ़े चलो !”

सब लोग एक दूसरे की ओर देख रहे थे और मुस्करा रहे थे ।

इसके बाद गनी ने टर्की डांस, बंगाली डांस, रूसी डांस और अन्त में पेरिस की लेडियो का डांस दिखाया । गनी को इनमें से किसी भी देश के नाच का कुछ ज्ञान नहीं था । उसने अपने मन में योंही नाम रख लिए थे । पेरिस की लेडियों का डांस बहुत दिलचस्प था । गनी का ह्वाल था कि इस शहर में गाझाजी सम्प्रदाय पलती है और पेरिस दुनिया भर की अम्प्याची वा केन्द्र है, चूनाचे उगने अपने नाच में इस छिछली और दोषी सम्प्रदाय का मज़ार उड़ाया था ।

नाच खत्म हुआ तो उसे अपनी प्रिय कविता “टोही” सुनाने को कहा गया । गनी इस समय मूड में था, इसलिए हर एक फरमायश मानने को तैयार था । उसने भट कविता सुनाना शुरू की । कामरेड यह कविता कई बार सुन चुके थे; लेकिन सुनाने का ढंग और कविता की विशेषता यह थी कि उगे जब भी सुनते थे, हंसते-हंसते पेट में बल पड़ जाते थे । इस बार भी गनी सुना रहा था और वे हंसी से सोट-सोट हुए जा रहे थे ।

“वह बन्द तो सुनाया ही नहीं।” गनी ने कविता खत्म की तो बूटासिंह ने टोका।

“कौन सा ?” गनी जानते-बूझते अनजान बन गया।

“वही, दो दो वाला।” बूटासिंह ने दो अगुलिया दिखाईं।

“सुना दू ?” गनी ने अशोक से इजाजत चाही।

“जरूर।”

गनी सब पर एक नजर डालकर, मुस्कराया और फिर होठों पर हाथ फेर कर गाने लगा —

आप ता सौंदे दो दो—असी सौंदे कल्ले।

एन्हा टोडिया ने केहडे पत्तन मल्ले ?

मब लोग हसने लगे और गनी भी हसता हुआ दीवार के साथ अपनी जगह पर जा बैठा।

उसी समय मदन ने कमरे में प्रवेश किया। वह शान से अशोक के पहलू में आ बैठा और अपनी दाईं बाह बेतकल्लुफी से उसके कंधे पर रख दी। अगर उसके व्यवहार में आत्म-प्रदर्शन और विडम्बना न होती, शायद कोई इस साधारण बात की परवाह न करता। लेकिन वह अपने रवैये से सदैव एक घृणास्पद बड़प्पन व्यक्त करता था, जिसमें पिछले दिनों से विशेष वृद्धि हो गई थी, क्योंकि वह किले में दो महीने कैद रह आया था।

गिरफ्तारी का कारण यह था कि वह खैरातीराम से अपनी इन्कलाबी सरगमियों का जिक्र बढा-चढा कर किया करता था। पुलिस उससे पार्टों की गुप्त बातें और “लाल ठडोरे” के बारे में पूछना चाहती थी। मगर वह क्या बताता? उसे खुद मालूम नहीं था। वह सिर्फ डीम मारने का अपराधी था। ताया चेतसिंह को खैरातीराम की लिखी हुई जो रिपोर्ट हाथ लगी थी, उसमें मदन व मन्बन्ध में बहुत सी बातें लिखी हुई थी और उसे बहुत महत्वपूर्ण व्यक्ति सिद्ध किया गया था। उदाहरण के लिए मीटिंग में किसी ने पूछा था कि जर्मनी और ब्रिटेन में युद्ध छिडा तो हमारा रवैया क्या होगा? अशोक ने उत्तर दिया था कि अभी कुछ फैसला नहीं हो सकता, युद्ध छिडने पर परिस्थिति के अनुसार हम अपनी नीति निर्धारित करेंगे।

बात इससे आगे नहीं बढ़ी। लेकिन रिपोर्ट में दर्ज था कि मदन अशोक से सहमत नहीं था। उसका मत था कि जब हम अहिंसा के मित्रांत को नहीं मानते तो हमें अभी से सगठन और सशस्त्र विद्रोह की तैयारी करनी चाहिए। मैं तो इस प्रोग्राम के लिए कमर बांध चुका हूँ। और आज ही से तैयारी शुरू कर रहा हूँ। जाहिर था कि खुद मदन ने खैरातीराम से जो बातें की थीं उन्हीं के आधार पर यह रिपोर्ट लिखी गई थी। इस मीटिंग में उर्मिला भी शामिल हुई थी और रिपोर्ट में उसका नाम 'सुन्दरी' दर्ज था।

“लूब हंस रहे हो, किसकी गत बन रही है ?” मदन ने अशोक के कंधे पर अपने शरीर का बोझ डालते हुए पूछा।

“गनी के बाद अब मदन का नाच हो। वह भी बहुत अच्छा नाचते हैं।”

लोग मदन न व्यक्तित्व में दिलचस्पी ले रहे थे और निगाहों ही निगाहों में उसकी आलोचना कर रहे थे; इसलिए गोपाल की बात पर किमी ने ध्यान नहीं दिया। मदन को अवसर मिला और उसने गोपाल पर व्यंग किया—

“भले मानस कोई अच्छी बात नहीं कह सकते, तो मुंह बंद ही रखा करो। मुंह बंद रखने से मूर्खता छिपी रहेगी।”

लोग मुस्कराये क्योंकि मदन कुछ चिढ़ गया था; पर क्रोध छिपाये रखने के लिए बड़ी गम्भीरता से कह रहा था, और दोनों हाथ विचित्र ढंग से हिला रहा था। लेकिन गोपाल यह समझा कि मेरा मजाक तो हवा में उड़ गया और मदन की हवा बंध गई। वह अपना असर कायम करने के लिए धूमा तानकर बोला—

“मिस्टर मदन, मैं डंके की चोट कहता हूँ। एक दिन आयेगा, जब मेरी आवाज हिमालय की चोटी से रासकुमारी तक गूँज उठेगी और हिंदुस्तान का बच्चा-बच्चा उसे ध्यान से सुनेगा।

और लोग चुप रहे; लेकिन मदन ने कहकहा बुलंद किया।

“बया बहने हैं इस शान के ! दूसरे बाल गंगाधर तिलक तो बस आप

ही है। महात्मा गांधी से कहा कि तुम्हें अपना 'जातिशून्य बनाये' जो कि हिन्दुस्तान के लोग जल्दी से जल्दी तुम्हारे व्यक्तित्व को ग्रहण करें।" और मदन ने नाक सिकोड़ कर कहा, "यह मह और मसूर की दास्ता"।

गोपाल के रमणी जैसे कोमल होठ सुकड़ गये और चेहरा फीका पड़ गया। और वह अप्रतिभ सा इधर-उधर देखने लगा।

इस असमजस में नारायण उसके आड़े आया, बोला, "वह तिलक और गांधी न हो, तो भी लोग उसकी बात सुन सकते हैं।"

अब मदन को भी लगा कि उसने कठोर बात कह दी है, जैसे कोई बच्चे को भिड़कने के बाद पुचकारता है, वह गोपाल को पुचकारते हुए बोला—'बुरा मानने की बात नहीं गोपाल! मैंने तो महज मजाक किया था।'

एक मिनट मौन रहा। मदन फिर बोला— इस समय दर्शन या इतिहास की कोई गूढ़ समस्या सामने नहीं है। मनोरंजन और गप शप हो रहा है, मैं अपने जीवन की एक दिलचस्प घटना मुनाता हूँ।" उसने अशोक के कंधे से बांह हटा ली और दोनों हाथ घुटनों पर रखकर कहना शुरू किया—

'हमारे कालेज में एक बंगाली प्रोफेसर था, बड़ा हसमुख, बड़ा ही नेक। वह हमें अंग्रेजी पढ़ाता था। एक दफा निबंध का घटा था। एक लड़के ने बहाना तराशा कि मैं कापी भूल आया हूँ। प्रोफेसर बोला—जो लड़का निबंध लिखकर नहीं लाता, वही बहाना बरता है। मगर जिम दिन हमारा मित्र मिस्टर मदन निबंध नहीं लिखेगा, वह बहाना भी नया बनायेगा।'

"इसका मतलब है कि प्रोफेसर भी आपकी योग्यता और प्रतिभा का लोहा मानते थे।" नारायण ने दाद दी।

"इसे आप योग्यता का लोहा कहे, तो मेरे लिए गर्व की बात है।" मदन ने विनीत भाव से कहा, "वरना मैंने तो यो ही एक घटना बयान की है।"

वह आप ही हसा।

'मिस्टर मदन, जरा अपने किले की दास्तान तो सुनाइए।' राजेन्द्र

ने बढ़ावा दिया ।

“हम इनकलाबियों के साथ किले में जो मुलूक होता है, हर राजनीतिक कार्यकर्ता के लिए उसकी जानकारी बहुत जरूरी है ।” मदन ने शरीर को ऊपर खींचते हुए कहा, “यह बताने के लिए कि वहां क्या-क्या कष्ट और यातनायें दी जाती हैं, मैं एक पुस्तक लिख रहा हूँ ।”

“कम-से-कम इतना तो बता दीजिए कि वे जब आपसे भेद मालूम करने लगे तो आपने क्या उत्तर दिया ।”

“साफ कह दिया कि मैं एक पैदायशी इनकलाबी हूँ । मुझसे किसी प्रकार की आशा मन रखो । सब बेकार है ।”

“बस, फिर उन्होंने कुछ नहीं कहा ?”

“हां, उन्होंने समझ लिया कि यह वाकई इनकलाबी है, पत्थर से पानी नहीं निकल सकता ।”

“सुनिए साहवान !” नारायण ने ऊधी आवाज में कहा और हाथ ऊपर उठाया, जैसे चलती बस को रुकने का संकेत कर रहा हो । “चूंकि दर्शन और इतिहास की कोई गूढ़ समस्या सामने नहीं है, मनोरंजन और गप-गप हो रही है, मैं आप लोगों को एक दिनचर्य किस्सा सुनाता हूँ ।”

“अपने जीवन का ।”

“मैं घटना नहीं किस्सा सुनाने लगा हूँ ।”

“अच्छा सुनाइए ।”

नारायण ने इधर-उधर देखकर खांसा और गला नाफ करके कहना शुरू किया— “एक शिकारी था । वह बंदूक कंधे पर रखकर घर से निकला और जंगल में पहुंचा । आगे से एक पहाड़ी मिला । उसने पूछा— सुनाओ मिर्चा, बिघर से भाये हो और गया इरादे हैं ?” वह बंदूक पर हाथ रखकर मट बोला— “देसते नहीं शिकारी हूँ— शिकार रोसने घर में निवना हूँ और इरादा यह है कि शिकार भी रोर का बरूंगा । पहाड़ी ने उमे बनाया कि अभी-अभी एक रोर इधर को गया है आप चाहें तो खंद बंदम आगे चलकर उमे रोर सनते हैं । शिकारी ने शान में कहा कि जो डरकर भाग गया, उमका पीछा क्या करेंगे । हम अपने घर चलते हैं ।”

लोग मुस्कराये ।

“बस ?” मदन ने पूछा ।

“जी हा ।”

“आखिर इसका मतलब क्या हुआ ?”

“बहुत खूब, आप इसका मतलब ही नहीं समझे ।” नारायण मुस्कराया “आखिर इसका मतलब यह है कि जिस तरह पैदायशी इनकलाबी होते हैं, उमी तरह पैदायशी शिकारी होते हैं । यह पैदायशी शिकारी था ।”

अब के गोपाल की बारी थी । वह उहाका मारकर हसा । हमरे लोग भी हस रहे थे । मदन की अपनी ही बातों से मालूम हो चुका था कि उसने कुछ भी नहीं छिपाया पुलिस को नब्बे पृष्ठ का बयान लिखवाया है ।

‘कामरेड नारायण ? तुम बात करने का ढग सीखो । हर किसी क मुह आते हो । सोचो, मेरी तुम्हारी क्या बराबरी है ?”

“कुछ नहीं ।” नारायण ने उसी अदाज से कहा, “तुम वाकई पैदायशी इनकलाबी हो । हर एक बच्चा पैदायशी से इनकलाबी होता है । वह रीति-रिवाज और शिष्टाचार को न समझता है और न मानता है । तुम्हें देखकर एक ऐसा बच्चा सामने आ जाता है, जिसकी आंखों में डीठ हो और गालों पर नाक की रीठ पुती हो ।”

नारायण ने अंतिम शब्द इस नाटकीय ढग से कहे कि सुनने वालों के सामने सचमुच एक बच्चे का चित्र उभर आया और वे खिलखिलाकर हमने लगे ।

“पचों की राय हो तो पैदायशी इनकलाबी की एक बात में भी सुना दू ।” ताया चेतसिंह ने गर्दन आगे निकालकर धीमे स्वर में कहा । वह अब तक चुप बैठा था । सब जानते थे कि उसका मजाक बहुत तीखा होता है, इसलिए ध्यान से सुनने लगे । बोला ‘मुर्गी का चूजा देखा है, चूजा !” ताया ने हाथ से चूजे की शक्ल बनाई और मुस्कराते हुए कहा—“मेरा खयाल है कि वह सबसे बड़ा इनकलाबी होता है क्योंकि वह अबे स निकलते ही दौड़ने लगता है ।”

खूब ठहाका पडा । वह वही वही मिनट तक हमरे में गूजते रहे । गोपाल

नारायण से भी अधिक प्रसन्न था ।

हसी-मजाक काफी हो चुका था अब सबने अशोक से फरमायश की कि वह "शहीद का प्रण" कविता सुनाये । अशोक कभी-कभी यह कविता सुनाया करता था, आज भी सुनाने लगा—

हुकम आखिर कतलगाह में जब सुनाया जायेगा ।

जब मुझे फांसी के तस्ते पर चढ़ाया जायेगा ॥

जब यकायक तहता-ए खूनी हटाया जायेगा ।

ऐ वतन उस वक्न भी मैं तेरे नामे गाऊंगा ॥

उमके स्वर में माधुर्य नहीं था; लेकिन कुछ ऐसी बात थी कि सब मुग्ध होकर सुन रहे थे और वह गा रहा था—

वादाकश हूँ, जहर की तलखी से क्यों घबराऊंगा ।

अहद करता हूँ कि मैं तुम पर फिदा हो जाऊंगा ॥

वानावरण गम्भीर हो गया था और सब लोग उन शहीदों के चित्रों की ओर देख रहे थे, जो अपने इस अहद पर—इस प्रण पर कुर्बान हो चुके थे ।

नास्तूज

लोगा क चल जाने के बाद अशोक अपने कमरे में जाकर पढ़ने लगा। म्यूनिख की सधि के पश्चात अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में बहुत बड़ी उलभन पैदा हो गई थी। कोई उसे हिटलर और फासिस्तवाद की विजय बता रहा था और कोई उसे ब्रिटिश प्रधानमन्त्री चैम्बर्लेन की दूरदर्शिता और राजनीतिज्ञता बता कर यह सिद्ध कर रहा था कि उसने दुनिया को एक भयानक युद्ध से बचा लिया है। बहस तीन महीने से चल रही थी, लेकिन 'विजय और दूरदर्शिता' की सीमा से आगे नहीं बढ़ सकी थी। इस ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जा रहा था कि आगाभी घटनाओं की दिशा क्या होगी? जब शस्त्र बनाने की दौड़ में एक राष्ट्र दूसरे को मात देने का यत्न कर रहा है तो युद्ध कब तक रुकेगा? अंग्रेजी के स्थानीय पत्र टीन्सून में 'म्यूनिख की सधि और उसके परिणाम' शीषक से एक लेख माला छप रही थी, जो जगदीश ने लिखी थी। मार्क्सवादी उसे गलत समझते थे। अशोक इसके सवध में जगदीश से बात करना चाहता था, इसलिए उसे ध्यान से पढ़ रहा था।

‘अजीब आदमी है।’

अशोक ने नजर उठाकर ऊपर देखा। नारायण ने दरवाजे में प्रवेश करते हुए यह शब्द कहे थे। वह दूसरे कमरे में बैठा ऊब गया था और आप ही आप बड़बड़ाता हुआ उठ कर इधर चला आया था, अशोक ने देखते ही उसकी मनोदशा को भाप लिया और उसके चेहरे पर एक गहरी दृष्टि

नारायण से भी अधिक प्रसन्न था ।

हसी-मजाक काफी हो चुका था अब सबने अशोक से फरमायश की कि वह "शहीद का प्रण" कविता सुनाये । अशोक कभी-कभी यह कविता सुनाया करता था, आज भी सुनाने लगा—

हुकम आखिर कतलगाह में जब सुनाया जायेगा ।

जब मुझे फांसी के तख्ते पर चढ़ाया जायेगा ॥

जब यकायक तख्ता-ए खूनी हटाया जायेगा ।

ऐ वतन उस वक्त भी मैं तेरे नगमे गाऊंगा ॥

उसके स्वर में माधुर्य नहीं था; लेकिन कुछ ऐसी बात थी कि सब मुग्ध होकर सुन रहे थे और वह गा रहा था—

वादाकश हूं, जहर की तलखी से क्यों घबराऊंगा ।

अहद करता हूं कि मैं तुझ पर फिदा हो जाऊंगा ॥

वानावरण गम्भीर हो गया था और सब लोग उन शहीदों के चित्रों की ओर देख रहे थे, जो अपने इस अहद पर—इस प्रण पर कुर्बान हो चुके थे ।

नारवून

सोगो क चन जाने के बाद अशोक अपने कमरे म जाकर पढन गगा । म्यूनख की सधि क पश्चात् अतर्राष्ट्रीय राजनीति मे बहुत बडो उलभन पैदा हो गई थी । कोई उसे हिटलर और फासिस्तवाद की विजय बता रहा था और कोई उसे ब्रिटिश प्रधानमन्त्री चैम्बर्लेन की दूरदसिता और राज नीतिज्ञता बता कर यह सिद्ध कर रहा था कि उसने दुनिया को एक भयानक युद्ध से बचा लिया है । बहस तीन महीने से चन रही थी, लेकिन 'विजय' और 'दूरदसिता' की सीमा से आगे नही बढ सकी थी । इस ओर बिल्कुल ध्यान नही दिया जा रहा था कि आगामी घटनाओ की दिशा क्या होगी ? जब शस्त्र बनाने की दौड मे एक राष्ट्र दूसरे को मात देने का यत्न कर रहा है तो युद्ध कब तक रुकेगा ? अंग्रेजी के स्थानीय पत्र 'ट्रीब्यून' म 'म्यूनख की सधि और उसके परिणाम' शीर्षक से एक लेख माला छप रही थी, जो जगदीश ने लिखी थी । मावसंवादी उसे गलन समझते थे । अशोक इसके सबध मे जगदीश से बात करना चाहता था, इसलिए उसे ध्यान से पढ रहा था ।

“अजीब आदमी है !”

अशोक ने नजर उठाकर ऊपर देखा । नारायण ने दरवाजे मे प्रवेश करते हुए यह शब्द कहे थे । वह दूसरे कमरे मे बैठा ऊब गया था और आप ही आप बडबडाता हुआ उठ कर इधर चला आया था, अशोक ने देखते ही उसकी मनोदशा को भाप लिया और उसके चेहरे पर एक गहरी दृष्टि

डालकर पूछा—

“कौन ?”

“मदन । और कौन ? बड़ा इनकलाबी बना फिरता है ।”

उसके शब्दों में कटुता भरी थी और वह निचला होंठ चढ़ाता हुआ चारपाई पर जा बैठा । अशोक कुछ बोला नहीं, उसकी ओर देखता रहा । कटुता ने क्रोध का रूप धारण कर लिया था और वह तिलमिला रहा था । अशोक भी उठकर उसके समीप जा बैठा और प्यार से उसकी कमर पर हाथ रख दिया ।

“मैं उससे घृणा करता हूँ और ऐसे हर व्यक्ति से घृणा करना उचित समझता हूँ ।”

नारायण ने जल्दी-जल्दी कहा और अशोक की आंखों में आंखें डाल दी । उमकी आंखों में घबराहट थी, जैसे वह अशोक का उत्तर सुनने से डर रहा हो और स्वयं अपने आप से भयभीत हो । अशोक ने गहरा भाकरकर उमके मन की याह ली और फिर कोमल और स्नेहसिक्त स्वर में कहा—

“घृणा करते हो, सो तो ठीक है; पर इतना परेशान क्यों हो ?”

नारायण ने आंखें झुका ली । अशोक का प्रश्न वातावरण में गूँज रहा था और नारायण चुप बैठा सोच रहा था, उसके भीतर हलचल मची थी । कुछ क्षण ऐसे ही मौन बीते । अशोक भी चुप था । उसने फिर मदन ऊपर उठाई और अशोक की ओर देखा । इस बार उसकी आंखों में घबराहट नहीं, स्थिरता थी । लगता था कि उसने मन ही मन में कोई असाधारण निश्चय किया है । उसके होंठ हिले और उनसे आवाज गोली के सदृश निकली—

“मैं परेशान इसलिए हूँ कि मैंने गलती की है ।”

“मैंने गलती की है ।” पर उसने अधिक जोर दिया और उसकी दृष्टि शून्य में भटक गई, जैसे और कोई बात कहने को शेष न रह गई हो ।

रेशम की डोरी को भी अगर अधिक कसा जाये तो खराश पड़ने की सम्भावना रहती है । नारायण की यह दशा उस महकियन की प्रतिक्रिया थी, जो थोड़ी देर पहले विसर्जित हुई थी । एकांत में उमने सोचना शुरू

किया तो उसे लगा, कि उसने स्वयं अपने व्यक्तित्व को आहत किया है। वह अतन्द्र से तडप उठा। अपने व्यवहार को उचित ठहराने के लिए दलीलें जुटाईं; लेकिन अन्त करण नहीं मानता था, हरेक दलील को रद्द करके कह उठता था - "तुमने गलती की है।"

अशोक नारायण को भली-भांति समझता था और शायद पहली ही मुलाकात में समझ लिया था।

एक रात जब वह बाहर से लौट कर आया, तो निचले कमरे में जिसमें अब पावती रहती थी, बत्ती जल रही थी। भीतर भाग कर देखा तो नारायण बैठा पढ़ रहा था।

'तुम कौन हो?' अशोक ने उससे दरियापन किया।

'देख लीजिए सामने खड़ा हूँ।' नारायण मुस्कराया।

अशोकने उसे सिर से पाय तक देखा। उसके सामने पतले-दुबले शरीर का एक नौजवान खड़ा था। उम्र इक्कीस-बाईस वर्ष की होगी। उसने सादा और सक्षिप्त वस्त्र पहने हुए थे, चेहरे पर बनावट और विडम्बना का नाम तक नहीं था। आँखों से प्रतिभा और आत्मविश्वास का आभास होता था।

"मेरा मतलब है कि तुम यहाँ कैसे आये हो?" अशोक ने दूसरा प्रश्न किया।

नारायण इस समय कानज में पढ़ता था। होस्टेल में रहने का सामर्थ्य नहीं था। जहाँ कहीं सस्ता कमरा मिल जाता, जाकर रहने लगता। यहाँ भी वह कमरे की तलाश में आया था। मनेजर वृट्टासिंह ने उसे चार-पाच दिन के लिए इस कमरे में ठहरा कर वायदा किया था कि उसे दो रुपये महीना तक का कमरा मिल जायेगा।

उसने यह कहानी संक्षेप में कह सुनाई और फिर कहा— "दुनिया में रहने के लिए सधरें कर रहा हूँ; मगर कहीं स्थान नहीं मिलता।"

अशोक ने एक क्षण उमकी ओर देखा और फिर धीरे से कहा—

"तुम इसी कमरे में इतमीनात से रहो। किराये की चिन्ता न करो। कोई तकलीफ हो तो मुझे कहना।"

अशोक ने सस्नेह उसका कंधा थपथपाया ।

उस दिन से नारायण यही रह रहा था, किसी दूमरी जगह जाने की जरूरत नहीं पड़ी । वह कालेज के जमाने ही में पार्टी का सक्रिय सदस्य बन गया था । उसे अब मालूम हो चुका था कि सिर्फ मैं ही नहीं, लाखों करोड़ों इन्सान ऐसे हैं, जिन्हें इस दुनिया में रहने के लिए स्थान नहीं मिलता । उन सब को साथ लेकर एक सामूहिक संघर्ष द्वारा इस दुनिया को, और इस जर्जर सामाजिक व्यवस्था को बदलने की जरूरत है, तभी इस समस्या का हल सम्भव है ।

अशोक जानता था कि नारायण अक्लड़ और चिड़चिड़ा है, किसी को तनिक बनते देखता है तो भट्ट बिगड़ जाता है । वह खुद ईमानदार है और जो दूसरे लोग राजनीति और देश-भ्रवा का काम करते हैं, उन्हें भी ईमानदार देखना चाहता है । जब उनका आचरण इस मनोगत भावना के विपरीत पाता है तो उसे रंज होता है । राजनीति के अतिरिक्त साहित्य में भी उसकी दिलचस्पी है और वह खुद भी कहानियाँ और कविताएँ लिखता है । अपना मानसिक घरातल ऊँचा करने के लिए पढ़ता और मनन करता है । उसे उन तथाकथित बुद्धिजीवियों से चिड़ है, जो बातें बहुत बघारते हैं; लेकिन उनका मानसिक घरातल जनसाधारण से भी नीचा है ।

धीरे-धीरे उसने यह भी समझ लिया कि चिड़ना और झुंझलाना व्यर्थ है, जब यह समाज बदलेगा, तभी इन बातों का इलाज होगा, इसलिए वह सब कुछ देखते हुए भी दुखी नहीं होता था । मगर आज की घटना ने उसे झंझोड़ दिया था और वह क्रोध से तिलमिला रहा था ।

“मैं देख रहा हूँ, कि नुम में फिर कटुता भरती जा रही है ।”

अशोक बोला, “गलती हो तो आदमी उसका सुधार करे, दुखी होना व्यर्थ है ।”

नारायण चौका ! जैसे मूँह के चंद छीटे हवा में फँसे हुए गर्द और गुबार को धो डालते हैं और दूर की चीजें स्पष्ट दिखाई देने लगती हैं, उसी तरह अशोक के शब्दों ने उसकी दृष्टि के आगे से गुबार हटा दिया और वह दूर तक देखने लगा । उसकी यह झुंझलाहट सिर्फ मदन के कारण

नहीं है, इसकी जड़ें गहरी थीं और इसके दूमरे भी कारण थे ।

प्रदर्शनी में प्रह्लाद से जो झगडा हुआ था, उससे दोनों में मनमुटाव पैदा हो गया । प्रह्लाद से उसकी पहली भेंट पुस्तकालय में हुई थी और नारायण ने देखा था कि उसका मन में ज्ञान और सत्य की भूख है । जो बात समझ में आ जाये, उसे ग्रहण करने के लिए वह तत्पर रहता है और बहस के लिए बहस नहीं करता । इसी से वे दोनों मित्र बन गये थे । वे दोनों इकट्ठे पढ़ने और विचार-विमर्श करते थे । लेकिन प्रह्लाद के उस दिन के रविये से नारायण का आघात लगा । उसने एक ऐसी बात को गलत ढंग से पेश किया, जिसे वह ठीक मान चुका था ।

“सिर्फ दफ्तर का काम कर लेना काफी नहीं था ।” उसे चुप देखकर अशोक फिर बोला, ‘तुम्हें किसी महाजु पर भी जाना चाहिए । जनता के साथ सीधे सम्पर्क में रहोगे, किसानों के जलसे और मजदूरों के प्रदर्शन देखोगे, तो सघर्ष में तुम्हारा विश्वास बढ़ेगा और तुम्हें मालूम होगा कि कुछ व्यक्तिवादी और वृकराती प्रवृत्ति के लोग इनकलाव को नहीं रोक सकते और दुनिया का विकास उनपर निर्भर नहीं है । इस तरह तुम्हारी कटुता दूर होगी, सहृदयता और उदारता आयेगी और तुम बेकार बातों पर दुखी होने का बजाये मुस्करा सकोगे ।’

“मैं जानता हूँ कि भदन फिलिस्टाईन और व्यक्तिवादी है और मैं उसकी बात से तनिक भी दुखी नहीं होता । नारायण ने गम्भीर और शांत स्वर में कहा, “लेकिन जिस आदमी पर हमारा भरोसा हो, अगर वह भी सही बात को तोड़-मरोड़ कर कहे, तो दुख होता है ।”

“ठीक है ।” अशोक ने उसकी बात का समर्थन किया और पूछा—
“यह तुम किसकी बात कह रहे हो ?”

“प्रह्लाद की ।” नारायण की आंखों में क्षोभ और ग्लानी थी, जिसे छिपाने का प्रयत्न करते हुए आगे कहा, “उसने भी बात का बतगड बनाया और खाहमखाह झगडा खडा किया था ।”

प्रह्लाद के बारे में नारायण और अशोक में प्रायः गुप्तगू होती थी और वे समझते थे कि वह दिन-दिन पार्टी के निचट आ रहा है । प्रदर्शनी

के बाद जब वह इतने दिन इधर नहीं आया, तो कारण पूछने पर नारायण से वह घटना मालूम हुई। अशोक सुनकर चुप हो रहा। उसने किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी नहीं की। वह उनके आपसी सम्बन्ध से परिचित था और उसे विश्वास था कि वे एक दिन आप ही इस मनमुटाव को दूर कर लेंगे। जब दो व्यक्ति मित्र-भाव से एक दूसरे के निकट आते हैं, तो उनमें एक ऊपरी लगाव के अतिरिक्त एक आंतरिक सम्बन्ध भी स्थापित हो जाता है, जिसे तोड़ देना सहज नहीं है और अशोक अपनी आंखों देख रहा था कि नारायण की आत्मा प्रह्लाद से मिलने को सटपटा रही है। अपनी राय प्रकट करने का यह उचित अवसर था, बोला—

“प्रह्लाद का उतना दोष नहीं जितना तुम समझ रहे हो। अगर तुम चुप रहते और बाद में गोपाल के रवैया की निन्दा कर देते, तब उसे अपनी भूल महसूस होती और यह व्यर्थ का झगड़ा टल जाता ……”

“लेकिन यह क्या? उसे ऐतराज था गोपाल के रवैया पर और बरस पड़ा उन सिद्धांतों पर जिन्हें वह समझ चुका था और मान चुका था।” नारायण ने अशोक की बात काटी।

“जरूरी नहीं कि जो बात तुम्हारी समझ में आ चुकी है दूसरे भी उसे उतना ही स्पष्ट समझ लें।” अशोक ने मुस्कराते हुए नारायण की ओर देखा और बात जारी रखी, “दुनिया को बदलने के लिए अलादीन का चिराग काम नहीं देता। प्रत्येक व्यक्ति के अपने संस्कार होते हैं, स्वभाव बदलने के लिए उन संस्कारों को बदलना होता है। जिन पुराने संस्कारों के विरुद्ध आदमी बगावत करता है, जरा मौका मिलते ही वे प्रत्याक्रमण करते हैं, बदला लेते हैं और अपनी समस्त शक्ति से उन विचारों को रौंद डालते हैं, जिन्होंने उनका स्थान ग्रहण किया होता है।”

अशोक यह बातें कह रहा था और उसकी अपनी जीवन-यात्रा के विभिन्न चित्र उसके मस्तिष्क में उभर रहे थे। वह कॉलेज छोड़कर असहयोग आंदोलन में शामिल हुआ, आतंकवादी बना, जेल गया और वहां आतंकवादी से मावसंबादी बन गया। अब वह कम्युनिस्ट था और पार्टी अवैध हीने के कारण कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी द्वारा काम करना था और देश के

त्रानिकारी सघर्ष को आगे बढ़ा रहा था। जड़ता का सर्वे हाथ उसकी आत्मा को कभी स्पर्श नहीं कर पाया था।

वह प्रतिक्षण बदलता और आगे बढ़ता रहा था। अब भी बदल रहा था और आगे बढ़ रहा था। मायसंवाद और सक्रिय सघर्ष ने उसकी चेतना का विकसित किया था। उसके मन का कमल पूर्णरूप से खिल उठा था और सुगंध फैला रहा था। नारायण इस कमल की सुगंध और सुगंध से भली प्रकार परिचित था। इसलिए वह अशोक की बातें ध्यान से सुन रहा था और उसकी आँखों में उभर रहे चित्र देख रहा था।

‘तुम जानते हो कि हमारे इस वर्ग विभाजित समाज में कुछ वर्ग मर रहे हैं और कुछ उभर रहे हैं। जो वर्ग मर रहे हैं, उनकी पुरानी विचार-धारा, पुराना दर्शन और पुरानी संस्कृति भी मर और मिट रही है जो नये वर्ग बन और उभर रहे हैं उनका नया दर्शन, नई विचारधारा और नई संस्कृति भी बन और उभर रही है। यह मरना और मिटना, बनना और उभरना सृष्टि के आठिकाल से होता आया है और होता रहेगा। ऐतिहासिक विकास की इस प्रक्रिया का नाम प्रगति है।’ अशोक की मुख मुद्रा सहज और कोमल थी और वह अपनी बात मजल और स्पष्ट शब्दों में कह रहा था। कुछ क्षण चुप रहने के बाद फिर बोला, ‘इनकलाब, इनकलाब, चिल्लाते हुए गोली खाकर मर जाना अथवा फाँसी पर भूल जाना, इतना कठिन नहीं, जितना कि समय के विकास को समझना और क्षण क्षण उसके साथ बदलना। जो आदमी बदल रहा है, वही प्रगतिशील है। नई धार बदलने की रफ्तार बहुत धीमी होती है। हमारा काम इस रफ्तार को उसकी मारी पेचीदगियाँ के साथ समझना और उसे तेज करना है।’

नारायण चारपाई से उठ खड़ा हुआ और कमरे में इधर-उधर टहलने लगा, लेकिन अशोक ने अपनी बात जारी रखी—

‘तुम प्रह्लाद ही का उदाहरण ले सकते हो। उसके पिता पक्क गांधी-भवत है और वह ऐसे धार्मिक वातावरण में पला बढ़ा है, जिसमें प्राचीनता की पूजा होती है। तनिक सोचो कि उसका लिए पुराने विचारों को छोड़ना और नये विचारों को ग्रहण करना कितना कठिन है। अगर वह बदल रहा

है तो उसकी बड़ी हिम्मत है और हिम्मत को बढ़ाने के लिए हमदर्दी दरकार है । हमारी जरा-सी असावधानी से, जरा-भी भूल में....”

“ठीक है । मैं समझ गया । मुझसे भूल हुई है, मैं.....।”

नारायण बड़बड़ाता हुआ दरवाजे की ओर बढ़ा ।

“सुनो तो सही, कहां जा रहे हो ?”

“प्रह्लाद के पास । मैंने गलती की है और मैं उसे.....” नारायण सीढियां उतर रहा था । अन्तिम वाक्य पांव की धाप में ली गया ।

असोक भी उसके पीछे-पीछे बाहर निकल आया और बरामदे में सड़ा देखने लगा । नारायण के कदम तेज-तेज उठ रहे थे और वृक्षों के सूखे पत्ते जो धरती पर आ गिरे थे, उसके पांव तले कुचले जा रहे थे ।

परिधी

लाला देसराज बड़े प्रसन्न थे और ताजा अखबार हर किसी को बड़े चाव से दिखा रहे थे। उसमें यह खबर छपी थी कि इस साल का नोबल प्राइज महात्मा गांधी अथवा चैम्बरलेन को दिया जायेगा, क्योंकि इन दोनों महापुरुषों ने सत्तार में शांति स्थापित करने के लिए महान् कार्य किया है।

वे हर एक मिलने वाले को यह खबर सुनाते और फिर आँखों में उल्लास भरकर मुस्कराते हुए बड़ी गम्भीरता से कहते थे—

“मेरा खयाल है कि चैम्बरलेन का नाम तो वैसे ही लिख दिया है, प्राइज दरअसल गांधी जी को ही मिलेगा।” इसमें उन्हें तनिक भी सन्देह नहीं था; बात जारी रखते “अब दूसरे देशों ने भी अहिंसा के महत्त्व को समझा है। मैं शर्त बंदता हू कि अन्त में तमाम राष्ट्र गांधीवाद को अपनायेंगे और अपने टैंक, तोपें और गोला-बारूद सब समुद्र में फेंक देंगे।”

कोई भी आदमी लालाजी के साथ शर्त बंदने को तैयार न हुआ, बल्कि जब विरोधी पक्ष ने भी उनकी बातों को ध्यान से सुना, तो उन्हें विश्वास हो गया कि नोबल प्राइज गांधी जी को अवश्य मिलेगा और सारी दुनिया अहिंसा के सिद्धान्त पर चलेगी, इसके बिना गति नहीं। इस विश्वास के साथ वे जगदीश के घर पहुँचे। वह गांधीवाद का सबसे बड़ा विरोधी था और आज लालाजी उसके साथ दो-दो हाथ कर लेना चाहते थे।

जगदीश अपने कमरे में कुर्सी पर बैठा मिला, टाँगें मेज पर रखी हुई थी और प्रह्लाद में बातें हो रही थी। बातचीत का विषय शायद यही खबर थी क्योंकि जगदीश कह रहा था—

“यह भी प्रचार का ढग है। इंग्लैंड का साम्राज्यवादी प्रेस चैम्बरलेन को देवता मिद्ध करना चाहता है, गांधी जी का नाम साथ इसलिए जोड़

दिया गया है कि हिन्दुस्तानियों के मन में चँम्बरलेन के प्रति भी वही श्रद्धा उत्पन्न हो, जो गांधी जी के प्रति है।”

लाला देसराज अपनी ही धुन में मस्त थे। उन्होंने जगदीश की यह उक्ति नहीं सुनी। बड़ी शान से कुर्सी पर विराजमान हुए और आंखें आधी मीच कर वह बात शुरू की, जो रास्ता भर सोचते आए थे।

“देखिए आपके भौतिकवाद को हमारे आध्यात्मवाद ने पछाड़ दिया है। हम जो बात इतने दिनों से कहते आए हैं, आज उसे पश्चिम ने भी स्वीकार कर लिया है। उन्हें अब मालूम हुआ है कि गांधीवाद और केवल गांधी-वाद ही से दुनिया दुःखों से मुक्त हो सकती है।”

“इस विश्व-विजय के उपलक्ष में मिठाई बाँटिए और दीपमाला कीजिए।”

“प्राईज मिलने दो, मिठाई भी बँटेगी और दीपमाला भी होगी।”

“दिल के बहलाने को गालिब यह खयाल अच्छा है।” प्रह्लाद बोला। जगदीश हंसा और प्रह्लाद का हाथ अपने हाथ में ले लिया।

“आप समझते हैं कि महात्मा जी को नोबल प्राईज नहीं मिलेगा? और मैं कहता हूँ कि अवश्य मिलेगा।”

लालाजी ने अपनी बात ऊँचे और दृढ़ स्वर में कही।

“शायद न मिले।”

“इसका मतलब है कि शांति स्थापित रखने में आप गांधी जी की सेवाओं को स्वीकार नहीं करते।”

“सेवा का सवाल बाद में उठेगा, पहले हमें यह देखना है कि क्या शांति वाकई स्थापित हो गई है?”

“जब युद्ध रुक गया तो शांति आप ही स्थापित हो गई।” इस बार लालाजी ने भी धीमे स्वर में कहा।

“युद्ध रुक गया, शांति स्थापित हो गई।” जगदीश ने अपनी बड़ी-बड़ी आंखों से लाला जी की ओर घूरते हुए कहा—“तो फिर अंग्रेजों ने हथियारों की पैदावार को चार-पाँच गुना बढ़ा क्यों दिया है?”

लालाजी सकपकाये। शायद उन्हें मालूम नहीं था कि अंग्रेजों ने हथियारों की पैदावार बढ़ा दी है। वह जगदीश की बात का खडन न कर सके। लेकिन प्रह्लाद बोल उठा—

“अंग्रेज हथियार इसलिए तैयार कर रहे हैं कि अगर हिटलर हमला करे तो उसका मुकाबिला कर सकें।”

“लेकिन गांधीवादी होने का अर्थ तो यह है कि हथियारों का मुकाबिला अहिंसा और सत्याग्रह से किया जाये।”

इस बार प्रह्लाद निहत्तर हो गया, लेकिन लालाजी सभल चुके थे।

“देख लेना” वह बोले, “हथियारों के इस्तेमाल की नौबत ही नहीं आयेगी। दुनिया गांधीवाद को अपना रही है और अवश्य अपनाएगी। जहाँ पश्चिम का भौतिकवाद डूबेगा, वहाँ उसके हथियार भी समुद्र की तह में डूब जायेंगे।”

इसी समय अशोक ने कमरे में प्रवेश किया। उसने वही चमड़े की वास्केट पहन रखी थी। वह जगदीश के साथ उसके लेखों के सम्बन्ध में बात करने आया था।

“लालाजी आज बहुत खुश हैं ?” उसने आते ही कहा।

“हमें आध्यात्मवाद के चमत्कार दिखा रहे हैं” जगदीश ने उत्तर दिया और कहा, “बैठो, तुम्हें भी दिखाये जायेंगे।”

“मैं इन्हें बता रहा था कि पश्चिम अपने भौतिकवाद से तग आकर पूर्व से आध्यात्मवाद सीख रहा है।” लालाजी तनिक रुके। अशोक, जगदीश और प्रह्लाद पर एक दृष्टि डालकर फिर बोले, “परसों ही की बात है कि अखबारों में मिस म्यूरियल सिस्टर का लेख छपा है, जिसमें उन्होंने लिखा है कि गांधीजी मसीह के अवतार हैं, मारा एशिया उनके आध्यात्मवाद से प्रभावित हो रहा है। कुछ दिन उनके आश्रम में रहकर मुझे जो शांति प्राप्त हुई है, हम मशीनों के कलरव में रहने वाले उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते।”

मिस म्यूरियल सिस्टर, हाल ही में हिन्दुस्तान का दौरा करके इंग्लैंड

लौटी थी। जब वह लाहौर आई थी तो जगदीश ने भी उससे भेंट की थी, एक-दो जगह उसके भाषण सुने थे और अखबारों में इंटरव्यू पढ़े थे। जगदीश की धारणा थी कि उसे जान-बूझकर हिन्दुस्तान भेजा गया है ताकि वह चैम्बरलेन की नीति को दुरुस्त सिद्ध करे और म्यूनिख संधि से ब्रिटेन की जो मान-हानि हुई है, उस पर पर्दा डाले।

“गांधी जी को मसीह कहकर कोई हमें विष भी पिलाये तो हम भट पीने को तैयार हो जाते हैं।” जगदीश ने विद्रूप भाव से कहा।

“मैं आपको बता दूँ।” लालाजी छाती फुलाकर बोले—“आदमी में अब्यात्म-शक्ति हो तो उसपर विष का भी कोई असर नहीं होता।”

अशोक लालाजी की ओर देखकर मुस्करा रहा था।

“आप तो गांधीजी की महानता को स्वीकार करते हैं न?” वे अशोक से सम्बोधित हुए।

“क्यों नहीं।” अशोक ने उत्तर दिया, “उनकी महानता को मानकर ही कॉलेज छोड़ा और स्वाधीनता-संग्राम में कूद पड़ा।”

लालाजी खिलखिलाकर हंसे और लपककर अशोक को बांहों में जकड़ लिया, जैसे वह नन्हा-मा बच्चा हो और वे उसे गोद में भर लेना चाहते हों।

इसी प्रमन्न-मुद्रा में उन्होंने हाथ जोड़कर नमस्ते की ओर जाने लगे। लेकिन चलने से पहले जगदीश की ओर संकेत करके कहा—“इन्हें भी कुछ समझाओ, यह हिटलर भक्त बनते जा रहे हैं।”

लाला देसराज अखबार बगल में दबाये चल पड़े, उनके साथ प्रह्लाद भी चला गया। लालाजी बहुत प्रमन्न थे और अपने मत का स्पष्ट समर्थन चाहते थे, बोले—“प्रह्लाद, तुम्हारा क्या खयाल है? मैं तो समझता हूँ महात्मा जी को नोबल प्राईज अवश्य मिलेगा।”

“आप जो समझते हैं, ठीक समझते हैं। मैं आपसे अधिक तो नहीं समझ सकता।” प्रह्लाद ने उत्तर दिया। लालाजी गद्गद् हो उठे और उसे प्रशंसा की दृष्टि से देखते हुए बोले—

“हिन्दुस्तान की यह बहुत बड़ी जीत है। देश के नाम को पहले महात्मा बुद्ध ने ऊचा किया था और अब महात्मा गांधी कर रहे हैं।”

उन्हें प्रह्लाद का जगदीश और नारायण के साथ उठना-बैठना बहुत अखरता था और वे उसे कई बार चेतावनी दे चुके थे—“देखना, इन लोगो के फेर में न पड जाना, इनके काटे का दारु नहीं।” लेकिन प्रदर्शनी की घटना के उपरांत उन्हें विश्वास हो गया था कि प्रह्लाद चाहे कही घूमता रहे, उस पर जो रग चढ चुका है, कभी नहीं उतरेगा। इसलिए वे उससे सदा स्नेह और सहानुभूति दर्शाते थे।

उधर अशोक और जगदीश में भी बातें शुरू हुईं। “लालाजी आखिरी बात तो पते की कह गए।” अशोक ने मुस्कराते हुए कहा।

‘कौन सी बात?’

“यही कि आप हिटलर भक्त बनते जा रहे हैं।”

जगदीश का खयाल था कि कोई मजाक की बात शुरू होने वाली है। लेकिन अशोक गंभीर था और उसकी आंखों में प्रश्न-चिह्न बना हुआ था।

“मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा।” जगदीश बोला।

‘म्यूनिक की सधि पर आपके जो लेख छपे हैं’ अशोक ने एक क्षण मौन रहकर कहा “उनसे आपके विचार स्पष्ट नहीं हैं?”

‘मसलिन?’

“मसलिन, उन्हें पढकर यह पता नहीं चलता कि आप नाजीवाद को प्रगतिवादी मानते हैं अथवा प्रतिक्रियावादी?”

“देखिये।” जगदीश ने पहलू बदलकर कहा, “मैंने नाजीइरम की जगह नेशनल सोशलिज्म का इस्तेमाल किया है और यह एक हकीकत है कि हिटलर ने अपने देश में देकारी को दूर किया है। अंग्रेज ने बर्साई की सधि में, जिस राष्ट्र को हमेशा के लिए कुचल दिया था, उसे फिर से ऊचा उठाया है, उसमें एक नया जोश, नया साहस भरा है।”

रही। कैसे देंगी? वह उन शक्तियों के विकास का शत्रु है।" अशोक ने निश्चयात्मक ढंग से कहा।

वहस जाने क्या रूप धारण कर लेती कि जगदीश की नन्ही लडकी से उसे बुलाने आ गई। अशोक ने लडकी को गोद में उठा उसे प्यार करते हुए बोला—“आप इस बात पर विचार कर लें—मेरे हिटलर की युद्ध-नीति का समर्थन होता है।”

“तो आप नेशनल सोशलिज्म को साइंटिफिक सोशलिज्म का बदल समझते हैं ?”

“कोई एक चीज दूसरी का बदल नहीं होती” जगदीश ने विद्वत्तापूर्ण गम्भीरता से कहा, “जब परिस्थिति बदलती है, तो पुराने फलसफे की जगह नया फलसफा जन्म लेता है।”

अशोक चुप था और आश्चर्य से जगदीश की ओर देख रहा था। वह जिसकी समझ-बूझ पर भरोसा करता आया था, वही आज नाजीइज्म को नया फलसफा बता रहा था। यह सिर्फ जगदीश ही की नहीं उन सब भाबुक देशवासियों की राय थी, जो सिर्फ इस सिद्धान्त की सीमित परिधी में रहकर सोचते थे कि “शत्रु का शत्रु अपना मित्र होता है।”

“हिटलर की आत्म-कथा उठाकर पढ़िये।” अशोक को चुप देखकर जगदीश फिर बोला — “उसने अपने जीवन का जो प्रोग्राम बनाया था, अब वह उसी के अनुसार चल रहा है और अंग्रेज पग-पग पर पराजित हो रहा है। इनसे सिद्ध होता है कि ऐतिहासिक शक्तियां उनका साथ दे रही हैं।”

‘लालाजी ने इसीलिए तो कहा था कि आप हिटलर भक्त बनते जा रहे हैं।’

एक अर्धपूर्ण मुस्कान अशोक के होंठों पर फैल गई। जगदीश को लगा कि उसने बुद्धि-बल से जो शब्द-चित्र बनाया था, अशोक ने एक नट-खट-वालक की भांति ब्रुश फेरकर उसे एकदम मिटा दिया है। उसे यह बात नागवार गुजरी, बोला — “लालाजी तो हमेशा बे-पर की हांकते हैं, इसका यह मतलब नहीं कि तुम भी बे-पर की हांकने लगे।”

“आप जानते हैं कि आपके सामने मैं यह मुस्ताखी नहीं कर सकता।” अशोक ने विनम्रतापूर्वक कहा, “लेकिन यह हकीकत है कि फासिस्तवाद किसी नये युग का नया दर्शन या शक्ति नहीं, बल्कि मरते हुए साम्राज्यवाद का ही भयंकर रूप है। ऐतिहासिक शक्तियां हिटलर का साथ नहीं दे

रही। कैसे देंगी? वह उन शक्तियों के विकास का शत्रु है।" अशोक ने निश्चयात्मक ढंग से कहा।

वहस जाने क्या रूप धारण कर लेती कि जगदीश की नन्ही लडकी दर्शना भीतर से उसे बुलाने आ गई। अशोक ने लडकी को गोद में उठा लिया और उसे प्यार करते हुए बोला—“आप इस बात पर विचार कर लीजिये। आपके लेखों से हिटलर की युद्ध-नीति का समर्थन होना है।”

“तो आप नेशनल सोशलिज्म को साइंटिफिक सोशलिज्म का बदल समझते हैं ?”

“कोई एक चीज दूसरी का बदल नहीं होती” जगदीश ने विद्वत्तापूर्ण गम्भीरता से कहा, “जब परिस्थिति बदलती है, तो पुराने फलसफे की जगह नया फलसफा जन्म लेता है।”

अशोक चुप था और आश्चर्य से जगदीश की ओर देख रहा था। वह जिसकी समझ-बूझ पर भरोसा करता आया था, वही आज नाजीइज्म को नया फलसफा बता रहा था। यह सिर्फ जगदीश ही की नहीं उन सब भावुक देशवासियों की राय थी, जो सिर्फ इस सिद्धान्त की सीमित परिधी में रहकर सोचते थे कि “शत्रु का शत्रु अपना मित्र होता है।”

“हिटलर की आत्म-कथा उठाकर पढ़िये।” अशोक को चुप देखकर जगदीश फिर बोला — “उसने अपने जीवन का जो प्रोग्राम बनाया था, अब वह उसी के अनुसार चल रहा है और अंग्रेज पग-पग पर पराजित हो रहा है। इनसे सिद्ध होता है कि ऐतिहासिक शक्तियाँ उसका साथ दे रही हैं।”

‘लालाजी ने इमीलिए तो कहा था कि आप हिटलर भक्त बनते जा रहे हैं।’

एक अर्थपूर्ण मुस्कान अशोक के होंठों पर फैल गई। जगदीश को लगा कि उसने बुद्धि-बल से जो शब्द-चित्र बनाया था, अशोक ने एक नट-खट बालक की भांति ब्रुश फेरकर उसे एकदम मिटा दिया है। उसे यह बात नागवार गुजरी, बोला — “लालाजी तो हमेशा बे-पर की हाकते हैं, इसका यह मतलब नहीं कि तुम भी बे-पर की हांकने लगे।”

“आप जानते हैं कि आपके सामने मैं यह गुस्ताखी नहीं कर सकता।” अशोक ने विनम्रतापूर्वक कहा, “लेकिन यह हकीकत है कि फासिस्तवाद किसी नये युग का नया दर्शन या शक्ति नहीं, बल्कि मरते हुए साम्राज्यवाद का ही भयंकर रूप है। ऐतिहासिक शक्तियाँ हिटलर का साथ नहीं दे

रही। कैसे देंगी? वह उन शक्तियों के विकास का शत्रु है।" अशोक ने निश्चयात्मक ढंग से कहा।

वहस जाने क्या रूप धारण कर लेती कि जगदीश की नन्ही लडकी दर्शना भीतर से उसे बुलाने आ गई। अशोक ने लडकी को गोद में उठा लिया और उसे प्यार करते हुए बोला—'आप इस बात पर विचार कर लीजिये। आपके लेखों से हिटलर की युद्ध नीति का समर्थन होना है।

वातावरण

“बूढ़े ने हार को धुरी तरह महसूस किया है।”

“इसमें क्या संदेह है।”

नारायण और प्रह्लाद में बातें हो रही थी। वे सँर से लोटे घे और दपनर की ओर जा रहे थे। एक वार की तनातनी के उपरात जब दोवारा समझौता हुआ तो वे फिर पूर्ववत् घी-शक्कर हो गये। वे फिर प्रायः इकट्ठे घूमते, राजनीतिक, सामाजिक और ऐतिहासिक विषयों पर बातचीत करते थे, कई वार मतभेद भी होता था; पर दोनों एक-दूसरे की ओर अपने-आपको समझने और त्रुटियां दूर करने में प्रयत्नशील थे। वे क्षण-क्षण आगे बढ रहे थे और दृष्टि-सीमा पर नये-नये क्षितिज उभरते देख रहे थे। पीछे मुडकर नजर डालते तो अपनी त्रुटियां मील-पत्थरों के चिह्नों के सदृश दिखाई देती और यह अनुमान होता कि वे कितना फासला चल चुके हैं। विकाम की सुखद भावना आत्मा को गुद्गुदा देती और वे नये उरमाह के साथ आगे की ओर देखते हुए सोचते—“हम और आगे बढेंगे और ऐमे कितने ही चिह्नों, अपनी त्रुटियों की पीछे छोड जायेंगे।”

आगे बढने की यह मनोकामना कितनी मनोरम और किननी सुखकर थी !

इस समय जिस विषय पर बात हो रही थी, वह कांग्रेस अध्यक्ष का चुनाव था। वरमों से यह नियम-सा बन गया था कि गांधी जी जिस व्यक्ति के नाम की सिफारिश कर देते थे, उसे अध्यक्ष चुन लिया जाता था, किसी

को मुकाबला करने का साहस नहीं होता था। लेकिन ~~इसके~~ यह नियम टूट गया था। सुभाषचन्द्र बोस ने गांधी के उम्मीदवार पट्टाभि सीतारमय्या को पछाड़ दिया था। नौजवान, जो हमेशा पुरानी लीक को तोड़कर नई लीक ढालते हैं, प्रसन्न थे वास्तव में यह वामपक्ष की जीत थी। गांधी जी पहले तो चुप रहें। उन्हें अपने उम्मीदवार की जीत का पूर्ण विश्वास था। लेकिन जब परिणाम आशा के विपरीत निकला तो झट अखबारों का बयान दिया—

“पट्टाभि सीतारमय्या की हार मेरी हार है।”

अब गांधी के इस बयान की आलोचना हो रही थी। नारायण का उत्तर सुनकर प्रह्लाद चुप हो गया। लेकिन तत्क्षण उसके मस्तिष्क में इसी बात का दूसरा पहलू उभर आया।

‘एक बात और सोचिये।’ प्रह्लाद बोला, ‘मान लीजिये गांधी जी के उम्मीदवार मौलाना आजाद ही रहते, तो क्या परिणाम इसके उलट न होता?’

“इसका अर्थ यह हुआ कि हम मौलाना के व्यक्तित्व की सुभाषक व्यक्तित्व से तुलना करें?”

नारायण ने ठीक ब्याख्या की थी। प्रह्लाद चकित-सा उसकी ओर देखने लगा।

मेरे खयाल में यह सोचना बेहतर होगा कि मौलाना ने उम्मीदवार बने रहना क्यों पसंद नहीं किया?”

“अच्छा योही सही।” प्रह्लाद सहमत हुआ।

“देखिये।” नारायण ने यो अगुली हिलाई, जैसे दूर की कौड़ी ला रहा हो, “मौलाना निरस्यसतदान ही नहीं, अदीब भी हैं। इसलिए मानवी हृदय रखते हैं और जानते हैं कि नौजवानों को हमारी जगह लेनी है।

प्रह्लाद मुस्कराया। उसकी आंखें भी नारायण की आंखों की भांति

चमक उठी। मानव स्वभाव का यह उज्ज्वल पहलू पहली बार उसके सामने आया था।

इस विषय पर फिर कोई बात नहीं हुई। दोनों चुपचाप चलने लगे। दोनों के मन उल्लास से भरे हुए थे। नारायण की बातों ही बातों में यह विचार सूझ गया था और वह अपनी इस उपज का सम्बन्ध उस पुस्तक से जोड़ रहा था, जिसे वह आजकल पढ़ रहा था। उसमें लिखा था—“साहित्य मनुष्य की प्रगतिशील भावना को सजग रखता है।” लेकिन सिर्फ यह वाक्य ही काफी नहीं था। इस उपज में नारायण के समस्त मानसिक विकास को दखल था। अगर उसने जीवन-संघर्ष द्वारा प्रगति की भावना को आत्मसात् न कर लिया होता तो लाख पुस्तकें पढ़ लेने पर भी उसके मन में यह विचार उत्पन्न न होता, और वह अपने शब्दों से प्रह्लाद को गुदगुदाने में अममथ रहता।

वसत के दिन थे। सर्दों बीत चुकी थी और वातावरण में उत्पत्ता का प्रादुर्भाव हो रहा था। जड़ता टूट रही थी। वृक्ष नई कोंपलें निकालने की तैयारियाँ कर रहे थे। टहनियों के छोटी पर गर्भवती स्त्रियों के सदृश सानन्द मुस्कराहटें थी और उनके अंग-अंग में निर्माण की उमंग। वृक्षों से तनिक परे हाल की दीवार के निकट आम का एक नया पौधा उगा था। गनी उसे दो साल से बराबर सींच रहा था। सर्दियों में उसके पत्ते झड़ जाते और नगी टहनियाँ बे-जान दीख पड़ती थी। गनी विमन-सा मोचता कि जिन्दगी उनमें फिर न लौटेगी। लेकिन वसत आते ही जिन्दगी तेजी से लौट आई। सूखी और मुरभाई हुई टहनियाँ हरी हो गईं और उन पर उनाधी रंग की कोंपलें फूट आईं।

गनी उसे पनपते देखकर पहले में अधिक मुस्तीदी दिखाने लगा। सुबह-सवेरे उठकर उसे सींचता और बैठा उसकी टहनियों और नवजात पत्तों को देखता रहता। उनकी कोमलता और नवीनता को आत्मा में भर कर मुस्कुराता।

जब नारायण और प्रह्लाद वहाँ आये तो गनी बैठा पौधे को देख रहा

था और बूटासिंह उसके निकट खड़ा था। उनके पहुंचते ही बातें शुरू हुईं।

“अब तो यह पेड़ बन रहा है।” बूटासिंह ने मुस्कराते हुए कहा।

‘हा!’ गनी की आँखें प्रसन्नता में फँल गईं।

‘अच्छा गनी, आम लगेंगे तो किसी को खाने से मना तो नहीं करोगे?’

“कहूँगा” गनी उछल कर खड़ा हो गया और अगुली घुमाकर कोठियों की ओर सकेत करते हुए बोला, “इन सरमायादारों को।”

“और उस दो चोटियों वाली काता को भी?” बूटासिंह ने शरारत की। लडकी का नाम उसने आप ही काता रख लिया था।

गनी सुनकर हसने लगा।

“शादी की बातचीत चल रही है।” बूटासिंह ने बात आगे बढ़ाई, ‘लेकिन उसे एक ऐतराज है कि गनी मुसलमान है।’

“मेरा नाम सुख सुखदेव भी तो है।” गनी झट बोल उठा, उसकी आवाज में लुब्धता थी, नारायण के कंधे पर हाथ रखकर आगे कहा, ‘हिसार में— मुझे सब पंडित सुखदेव कहते थे ना?’

नारायण के समर्थन करने से पहले ही बूटासिंह हस पड़ा, क्योंकि यह बात पहले भी कई बार दोहराई जा चुकी थी और गनी हर बार अपने सुखदेव होने की कहानी दोहराता था। वह दो डेढ़ महीने हिंसार में रह आया था। वहाँ जिस होटल में वे लोग खाना खाते थे, उसमें सिर्फ हिन्दुओं को ही भोजन मिलता था, इसलिए वे गनी को सुखदेव कहते थे। गनी नमस्कृत था कि जहाँ भी उसके मुसलमान होने पर ऐतराज हो वही यह उपाय चल सकता है। काता को भी सुखदेव नाम बताकर मजहब का झंझट मिट जायेगा।

व फिर पौधे की ओर देखने लगे। गनी ही नहीं, वे सभी उसमें दिल-चस्पी ले रहे थे। पौधा दिन-दिन बड़ रहा था, विकास की मजिलें तय

कर रहा था। चोटी पर जो दो नई सुख-सुख कोमल टहनियां फूट रही थीं, उनकी ओर संकेत करते हुए नारायण ने प्रह्लाद से कहा—

“पौधे की जड़ें जमीन में पँवस्त है, वे उसके हर एक अंग को सुराक पहुंचा रही हैं और सूर्य के प्रकाश की सहायता से गैर-वनस्पति को वनस्पति में तब्दील कर रही हैं।”

नारायण कह रहा था और प्रह्लाद ध्यान से सुन रहा था। लेकिन गनी और बूटासिंह को उनकी बातों से कोई दिलचस्पी नहीं थी, वे अपने ही विचारों में मगन थे। नारायण और प्रह्लाद वनस्पति विज्ञान की बातें करते-इधर चले आये और वट वृक्ष तले एक बेंच पर बैठ गये। बात यद्यपि पौधे के जीवन से शुरू हुई थी; लेकिन विषय यह बन गया कि धरती, आकाश और सारा ब्रह्मांड, कैसे एक-दूसरे के सहारे स्थिर है। पौधे धरती से आहार प्राप्त करते हैं, जीव वनस्पति के सहारे जीवित हैं और स्वयं जीव अपने भीतर से कार्बन निकालते हैं, जिस पर वनस्पति का जीवन निर्भर है। तत्त्वों का संगठन अव्यवस्थित हो जाने के बाद वनस्पति और जीव दोनों फिर पदार्थ का अंग बन जाते हैं। परिवर्तन का यह क्रम प्रति क्षण जारी रहता है, नदी के बहाव की तरह जिसका कभी अन्त नहीं होता। भाप-बादल, मेह और फिर भाप!

“संसार की प्रत्येक वस्तु में क्रम और परस्पर सम्बन्ध है। कोई भी घटना सहसा और असम्बन्धित नहीं होती।”

सारी बात समझाने के बाद नारायण ने कहा और फिर मिसालें देनी शुरू की। बात से बात निकलती रही और अंत में समाज और मानव-विकास पर विचार होने लगा।

“हमें जीवन में अच्छे या बुरे जिन लोगों से वास्ता पड़ता है, सब समाज की पैदावार हैं। मनुष्य को जिस प्रकार का वातावरण मिलता है, वैसा ही उसका स्वभाव बनता है।”

यहां नारायण ने अपना ही उदाहरण देकर बताया कि उसका जीवन

किन परिस्थितियों में गुजरा है, जिससे उसके स्वभाव में कटुता आई और कई श्रुतियाँ उत्पन्न हुईं। अब वह उन्हें समझता है और छोड़ना चाहता है, लेकिन छोड़ देना सहज नहीं, छोड़ने के लिए बड़ा संघर्ष करना पड़ता है। हमारे पूर्वजों ने इस संघर्ष को तपस्या और सयम का नाम दिया है। बेहतर वातावरण मिल जाये तो हमें स्वभाव और संस्कार बदलने में बड़ी सहायता मिलती है।

प्रह्लाद के लिए यह सब बातें नई थीं। उसने पहले किसी को यो आत्मविश्लेषण करते नहीं देखा था। नारायण से उसकी घनिष्ठता और बढ़ गई। मन में आता था कि वह भी उसके सम्मुख अपना हृदय खोल कर रख दे।

“अहा जी, हमारा डाक्टर बड़ा अच्छा है। बड़ा ही अच्छा है हमारा डाक्टर।” ऊपा दौड़ती हुई आई और उसने अपनी बाहे नारायण के गले में डाल दी।

वह पिछले दो हफ्ते से बीमार थी। उसके पेट में खराबी थी, और ज्वर रहता था। अब कुछ आराम था। इस समय वह मा के साथ दवा लेकर लौटी थी।

“बड़ा अच्छा है तुम्हारा डॉक्टर, क्या कहा है उसने?” प्रह्लाद ने ऊपा की बाह पकड़कर उसे अपनी ओर खींचते हुए पूछा।

‘कहा है मिठे चूसना, सेब खाना और सतरे खाना।’ उसने एक ही सास में कहा और फिर दोनों बाहे फँलाकर बोली, “मैं इतने सतरे खाऊँगी। क्यों न बीबी जी?”

“वैसे कहा है इतने सतरो के लिए। बाप तो जेल में है।” पार्वती ने हसलत भरे स्वर में कहा।

प्रह्लाद ने बटुवा खोलकर एक अठन्नी निकाली और ऊपा के हाथ पर रख दी। वह खुश होकर नाचने लगी।

“अच्छा, तुम भी लोगी ?” प्रह्लाद ने एक दवन्नी पूरी के हाथ पर भी रख दी। बट्टवा खुला देखकर पार्वती ने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर फँला दिया था।

नारायण को वह घटना स्मरण हो आई, जब पार्वती ने पराशर की दी हुई दवन्नी लौटाकर आशंका प्रकट की थी कि इससे बच्चों की आदत बिगड़ जायेगी।

रावी के किनारे

जनरल डायर जलियानवाला बाग में गोली चलाकर और हजारों निरपराधों और मासूमों का खून बहाकर बहुत खुश था और उसने जाच कमीशन के सम्मुख बयान देते हुए सगवें कहा था—“मैं हिन्दुस्तानियों को पाठ पढ़ाना चाहता था।”

डायर का शुक्रिया ! हिन्दुस्तानियों ने वाकई बहुत बड़ा पाठ पढ़ा था। उन्हें मालूम हो गया था कि अगर हम आजाद नहीं होंगे तो हमारा रक्त इसी प्रकार निर्दयता से बहाया जाएगा और जालिम हमें कीड़े-मकोड़ों की भाँति कुचलकर घमड़ से मुस्कराता रहेगा।

शहीदों की पुण्य-स्मृति में कौमी हफ्ता मनाया जाने लगा। आज उस हफ्ता की अंतिम तिथि अर्थात् अप्रैल का तेरहवा दिन था। इसी दिन विक्रमी सम्बत् का नया साल शुरू होता है और रावी के किनारे वैसाखी का मेला घूम-धाम से लगता है। इस मेले का आरम्भ कब से हुआ, यह बताना कठिन है, क्योंकि समय के इतिहासकार ने इसका इतिहास पीढ़ियों के वक्ष स्थल पर लिखा है। जो पीढ़ियाँ धरती की गोद में पड़ी सोती हैं, वे इस रहस्य का उद्घाटन करने में असमर्थ हैं। शायद यह मेला तब से लग रहा हो, जब से लाहौर आबाद हुआ है। अथवा इसका आरम्भ उस समय से हुआ है, जब से रावी ने पर्वत की कोख से जन्म लेकर धरती की गोद में मचलना शुरू किया है। तरंगों को सब मालूम है। लेकिन वे बड़ी चंचल हैं, सृष्टि के समस्त रहस्य सीने में छिपाये उछल रही हैं, नाच रही हैं, लाख सिर पटकने पर भी जवान नहीं खोलती। मुमकिन है, उन्हें भी मालूम न हो। उस समय से अब तक कितना पानी बह चुका है, जो पानी आज बह रहा है, वह कल नहीं था। इन्सान की कितनी पीढ़ियाँ बीत

चुकी हैं, जिन्होंने इस मेले को शुरू किया, वे आज नहीं हैं। लेकिन मेला है, मेला मनाने वाले हैं और वे सदा रहेंगे।

गत बीस वर्ष से इस मेले के साथ जलियांवाला बाग की स्मृति भी जुड़ गई है। हर साल शहीदों की याद में रावी के किनारे जलसा होता है, नौजवान पूर्ण स्वराज्य के प्रण को दोहराते हैं। आजादी की तमन्ना रावी की चंचल तरंगों के सदृश अमर है।

तेरह अप्रैल का दिन था, और चंचल तरंगों वाली रावी के किनारे हजारों औरतें और मर्द जमा थे, नदी में स्नान कर रहे थे। दरिया के पानी में खानी है, गहराई और ताजगी है। नव वर्ष के दिन दरिया के किनारे जमा होने और उसमें स्नान करने का उद्देश्य शायद यह रहा हो कि मनुष्य भी अपने जीवन में गति, गहराई और ताजगी की अभिलाषा करता है, क्षण-क्षण आगे बढ़ता है। मेले में आने से उसकी मनोगत भावनाओं का प्राकृतिक दृश्य से सामंजस्य होता है।

नारायण इधर-उधर घूम रहा था। गहमा-गहमी और चहल-पहल देख रहा था। मेला उसे राष्ट्र की स्वस्थ परम्परा और उसके सामूहिक जीवन और संस्कृति का प्रतीक जान पड़ता था।

किसी औरत ने नमस्ते कही और नारायण के पास आकर रुक गई। वह चकित-सा उसकी ओर देखता रहा। औरत के साथ एक पतला-दुबला आदमी था, जिसने गोद में बच्चा उठा रखा था। मर्द को देखकर उसने औरत को भी पहचान लिया और बोला—

“सुनाओ भाभी, धर्म कमाने आई हो?”

“धर्म-पुण्य तो भगवान जानता है, सारी दुनिया नहा रही है, हम भी नहा लेंगे।” औरत ने उत्तर दिया।

“बहुत कमजोर नज़र आती हो, क्या बीमार रही हो?”

“मैं तो ठीक थी, मगर यह दो महीने इतने बीमार रहे कि बचने की आस नहीं थी।”

“अच्छा!” नारायण ने आदमी की ओर देखा, वह गर्दन झुकाये खड़ा था, पांव नंगे थे और अंगूठे से धरती कुरेद रहा था।

“इधर इन्हे कहीं देखा नहीं। सोचता था कि आकाश पर उड़ गये या पाताल में उतर गये।”

“आकाश पर उड़ने की ही बात हो गई थी।” वीरत ने बीमारी की बात जारी रखी, “भगवान ने जान बचा ली। इसान का दिया-लिया आगे आ जाता है।”

“यह तो ठीक है।” नारायण ने अर्घ्यपूर्ण ढंग से सिर हिलाया, “इन्हें कहना कि दरिया में खूब गोते लगायें ताकि सारे पाप धुल जायें।”

“अब चलो भी, फिर धूप तेज हो जायेगी।” मर्द ने पत्नी से कहा और आस ऊपर नहीं उठाई। चलने के लिए वह बहुत ही आतुर मालूम होता था।

“भाभी, आप जाइये। इनके पाव जल रहे हैं।” नारायण ने उसकी ओर देखते हुए व्यग किया।

“अच्छा नमस्ते।”

“नमस्ते।”

वे थोड़ी ही दूर गये थे कि पीछे से ताया चेतसिंह ने नारायण के कंधे पर हाथ रखा और पुरुष की ओर सकेत करते हुए कहा—

‘इनसे पूछो कि जलसे की रिपोर्ट नहीं लिखोगे?’

“वाह ताया, तुम अब भी उसका पीछा कर रहे हो।”

ताया खिलखिला कर हस पड़ा।

वह आदमी खैरातीराम था। जिस दिन ताया चेतसिंह ने उसकी खोई हुई रिपोर्ट लाकर दी, अशोक ने शाम को उसे अपने कमरे में बुलाया और पूछा कि तुमने यह क्या घधा अस्तयार किया है। पहले तो उसने इनकार किया; लेकिन जब अशोक ने उसके अपने हाथ की लिखी हुई रिपोर्ट प्रमाण के रूप में सामने रख दी तो वह सिट्टी-पिट्टी मूल गया और भय से कापने लगा। उसे मालूम था कि अगर इन कलावियों को मालूम हो जाये कि कोई आदमी उनके अन्दर घुसकर जासूसी करना चाहता है तो वे उसकी खूब मरम्मत करते हैं और प्राण तक लेने से नहीं भिन्नकते। खैरातीराम अपराध स्वीकार करते हुए कहा कि तनख्वाह थोड़ी थी ३१।

बलील हरकत की। अगर इस बार माफ कर दो तो आगे के लिये तोबा करता हूँ।

अधोक ने उसे माफ कर दिया और वह रातों-रात कमरा छोड़कर वहाँ से चला आया और फिर कभी उधर का रुख नहीं किया। उसकी पत्नी अगर नारायण से परिचित न होती और उसे न बुलाती, तो वह अब भी छिपकली की भाँति चुपके से निकल जाता। जब पत्नी नारायण से घातें कर रही थी, उसके पांव वहाँ खड़े वाकई जल रहे थे, वह आत्म-भ्रान्ति से घरती में गड़ा जा रहा था।

वहाँ से थोड़ी दूर कांग्रेस का जलसा हो रहा था। ताया और नारायण अब उधर चले। स्टेज खूब सजी हुई थी। बीच में एक बहुत लम्बे बांस पर तिरंगा झंडा फहरा रहा था। शीला प्रधान थी और लाला देसराज स्टेज सेक्रेटरी।

जब ताया और नारायण वहाँ पहुँचे तो गोपाल भाषण देने खड़ा हुआ। उसने उधर-उधर निगाह डाली और फिर लारुड-स्पीकर के निकट मुँह ले जाकर कहना शुरू किया—

“बहनो और भाइयो! मुझ से पहले वक्ता ने ठीक कहा है कि पूंजीवाद का युग अब खत्म हो रहा है। यह लानत जितनी जल्दी खत्म हो अच्छा है। पूंजीवाद ही ने दुनिया की यह दुर्दशा कर रखी है। गरीबी हमारे ही देश में नहीं, अमरीका में भी, जो सबसे धनी देश समझा जाता है, जिसकी आबादी दुनिया की आबादी का चालीसवाँ भाग और घन छठा भाग है—वहाँ सत्तर फीसदी गरीब लोग बसते हैं। यह स्वयं प्रधान रूजवेल्ट का बयान है, जो आपने अखबारों में पढ़ा होगा और मेरे पास उसका कटिंग मौजूद है।” वह तनिक रुका और होठ रूमाल से पूँछकर फिर बोला—“हमारे आंदोलन का मकसद गरीबी और भूख को दूर करना है। लेतिन का कथन है कि जब तक कोई आंदोलन जनता का आंदोलन न बन जाये, तब तक इनकलम्व नहीं हो सकता। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि हमारा आंदोलन जनता का आंदोलन बन चुका है। इसकी जड़ों में शहीदों का खून है और...हमारे इरादे हिमालय की

चोटियों की तरह बुलद हैं। दस साल पहले पंडित जवाहरलाल नेहरू ने इसी रावी के किनारे मुकम्मिल आजादी का ऐलान किया था। उनकी आवाज अब हिमालय से रासकुमारी तक गूज रही है। सत्सार की कोई भी शक्ति हमें अपने झरादों को पूरा करने से रोक नहीं सकती ..” गोपाल ने पाव स्टेज पर पटक़ा।

‘खूब पैवन्द लगाये जा रहे हैं।’

“यही तो एक अच्छे बोलने वाले की खूबी है।”

इखलाक और राजेन्द्र एक ओर खड़े कानाफूसी कर रहे थे।

“महात्मा गांधी हमारे नेता हैं।” गोपाल ने भाषण जारी रखा, “हम उनके मामूली इशारे पर प्राण तक न्योछावर कर देंगे। उनका एक लेख इस हफ्ते हरिजन में छपा है, जिसमें उन्होंने बिल्बुल ठोक लिखा है कि अंग्रेजों ने हमारे देश को न सिर्फ़ आर्थिक बल्कि आध्यात्मिक रूप से भी निबंल कर दिया है ..”

गोपाल को दस मिनट मिले थे; लेकिन उसने पन्द्रह मिनट तक भाषण दिया फिर भी पूरी बात न कह सका, उसे अभी बहुत से हवाले और उद्धरण पेश करने थे। जब वह भाषण देकर स्टेज से उतरा तो गाल सुखें घें, और होठों पर मुस्कान थी। स्टेज से उतर कर वह भीधा उम जगह पहुँचा जहाँ अंग्रेजी पत्र का प्रतिनिधि खड़ा था। अभिप्राय ममभू कर रिपोर्टर ने उसका नाम वक्ताओं की सूची में लिखा और उसे दिखाया।

“मेरे नाम के आगे कामरेड नहीं मिस्टर या लाला लिखिये।”

गोपाल ने उसे सुझाया और गर्व से बड़ा “मुझे कामरेड शब्द से घुणा है।”

गोपाल ने अपने भाषण में पूँजीवाद को कोता था, इसलिए रिपोर्टर ने उसे कामरेड लिखा। अब सुधारकर कहा, “लाला लिख दिया है, और फरमाइये।”

“शुक्रिया।” गोपाल ने कहा और फिर स्टेज पर जा घंटा।

नारायण रिपोर्टर के पास ही खड़ा था, गोपाल ने उसे नहीं देगा। अब वह वहाँ से सरककर इखलाक और राजेन्द्र के करीब चला गया।

उन्हें यह घटना बताई। वे सुनकर हंस पड़े।

“आखिर इसका मतलब क्या हुआ?” राजेन्द्र बोला।

“मतलब साफ है कि हर एक बुजुर्गवा ‘कामरेड’ लफ्ज से नफरत करता है।” इखलाक ने उत्तर दिया।

“और अग्रेजी अखबार अमूमन ऐसे ही लोगों के हाथों में जाता है।” नारायण ने कहा।

वे बातें करते हुए स्टेज से तनिक और परे चले गये। जब गोपाल के स्वभाव, उसके भाषण और बुकराती प्रवृत्ति की आलोचना हो तो मदन को भूल जाना सम्भव नहीं था, बल्कि अन्त में गोपाल नजर-अन्दाज हो जाता और उपहास का विषय मदन बन जाता था। उसकी गतिविधि और हाव-भाव की नकल उतारकर हंसने में लुप्त रहता था।

“मेरा खयाल है कि इन लोगों को खूब एक्सपोज किया जाये।” इखलाक ने कहा।

“किसे एक्सपोज (Expose) किया जा रहा है?”

पद्मा बीच में आ टपकी। उसके हाथ में धूप-चश्मा था, जिसे वह अनमनी-सी घुमा रही थी। वह नीले रंग का ब्लाऊज और किमंजी साडी पहने हुए थी, जो उसे खूब पवती थी। इखलाक ने उसकी ओर देखा और मुस्कराते हुए कहा—

“आपको।”

“हमारा तो कोई सीक्रेट (Secret) ही नहीं।”

“जब तक मालूम न हो, लोग ऐसा ही कहते हैं।”

“तो आप मालूम कर लीजिये।”

“कोशिश कर रहे हैं।” इस बार नारायण ने कहा और वह मुस्करा दिया।

पद्मा चुप हो गई। वह चश्मे को बदस्तूर घुमा रही थी। उसकी दृष्टि दूर बहती हुई रावी पर पड़ रही थी और वह जाने क्या सोच रही थी। उसकी बड़ी-बड़ी स्याह आंखों में विचारों की तरंगें उठ रही थी, जो भरे हुए गोल-गोल चेहरे पर फैलकर उसे पहले से कहीं अधिक आकर्षक

और सुन्दर बना रही थी।

“कान का मैल ! कान का मैल !”

बाईं ओर से एक आदमी तेज आवाज में चिल्लाता हुआ आ रहा था। सबकी निगाहें एक साथ उधर उठ गईं।

उस व्यक्ति ने लम्बा, मैला और ढीला-ढाला कमीज और उतना ही मैला और तग पायजामा पहन रखा था और सिर पर सूखें रंग की पगड़ी बधी थी। वह मैल निकालने वाला था, इसलिए कान पर तिनके और रुई टाग रखी थी। लगता था कि वह कान से मैल निकाल-निकालकर कपडों से पूछना रहता है, इसीलिए चिक्कट हो गये हैं। ध्यान से देखा जाये तो वह दर्मयान कद और सुगठित शरीर का व्यक्ति था, लेकिन इन कपडों के कारण लम्बा और दुबला जान पड़ता था।

इन लोगों के पास आकर वह रुका और आवाज बदल कर बोला —

“बाबू जी मैल निकलवाओने ?”

तीनों कामरेड एक-दूसरे की ओर देखने लगे। आखो ही आखो में सरगोशिया हुईं। आखिर नारायण बोला—

“देखो भिया, मैंने तुम्हें पहचान लिया है। पहले तुम हाथ दखकर ज्योतिप लगाते थे, अब यह मैल निकालने का घघा कब से शुरू कर दिया ?”

“बाबू साहब, पेट के लिए सौ सौ पापड बेलने पड़ते हैं। मैं भविष्य की बात बताता था, तो लोग सुनते नहीं थे। अनुभव से पता चला कि इस दुनिया में बसने वाले अकमर लोग बहरे हैं, उनके कानों में प्राचीनता का मैल भरा हुआ है; वे भविष्य की बात सुनें तो कैसे सुनें ? इसलिए सोचा कि पहले यह मैल निकाल लू तब भविष्य की बात कहूंगा।”

‘ इस पेशे में तो आमदनी माकूल होगी ?’

“माकूल क्या खाक होगी। पढ़े-लिखे बाबू किसके लोग अपने आप में मस्त रहते हैं। वे मैल निकलवाने की जरूरत ही नहीं समझते। मेरी शकल तक से दूर भागते हैं। दूसरी ओर अपढ जनता है, जो मासूम और ईमानदार है और उसमें समझने सुनने की भूख है। लेकिन उन लोगों

सौंदर्य

तिलक का सनेह ठीक ही था। पेड़ के नीचे जो व्यक्ति खड़ा था वह खुफिया पुलिस का सिपाही था। उसका ध्यान दूसरी ओर था, लेकिन गाँव वगाहे कनकियो से इन्हे भी देख लेता था। दरअसल वह राजेन्द्र और इखलाक की निगरानी कर रहा था, तिलक को उसने सचमुच ही कान का मैल निकालने वाला समझा था। लेकिन जब उन्हें कहकहे लबाते सुना तो उसके कान खड़े हुए। उसने ध्यान से देखना चाहा, लेकिन तिलक कान का मैल 'कान का मैल' की आवाज लगता हुआ मेले की भीड़ में गुम हो गया।

सिपाही भी तेज-तेज कदम उठाता हुआ उसके पीछे चला। वह उसे देखकर अपनी तसल्ली कर लेना चाहता था।

लेकिन तिलक अपनी तसल्ली पहले ही कर चुका था। उसने सिपाही को अपनी ओर बढ़ते देख लिया था और पहचान भी लिया था। उसका नाम बशीर था और जब तिलक रूपोश नहीं हुआ था, वह खुद उसकी निगरानी पर नियुक्त था।

उसे पीछा करते देखा तो तिलक ने आवाज लगाना बन्द कर दिया और भीड़ में खो गया। चलते चलते वह ऐसी जगह पहुँचा, जहाँ एक ओर सरकडो का घना जंगल और एक ओर बड़े बड़े वृक्ष थे। उसने एक क्षण के लिए सोचा कि जंगल में से होकर देहात को चला जाये। लेकिन वह निश्चय करके आया था कि बँसाखी का मेला देखेगा, मित्रों से मिले जुलेगा

को घंटों समझाना पड़ता है कि कान में मँल कैसे पड़ जाता है और उसे निकलवाने की क्यों जरूरत है। इसके लिए सत्र चाहिए और इतना बड़ा सत्र कहां से लाऊँ ?”

पद्मा ने चश्मा धुमाना बन्द कर दिया और वह आश्चर्यचकित-सी मँल निकालने वाले की ओर देखने लगी।

“यह कोई मामूली आदमी नहीं, पढ़ा-लिखा है, ज्योतिषी है और सबसे बड़ी बात यह है, कि फिलासफर भी है।” नारायण ने पद्मा को बताया।

“ना भई, मैं फिलासफर विलासफर कुछ नहीं।” उसने कानों पर हाथ रखे, “मैं अपढ जनता में रहता हूँ और अनुभव की बाग कहता हूँ। अगर इसका नाम फिलासफी है, तो मैं मानता हूँ कि यह फिलासफी आपको बड़े-बड़े पंडितों की पुस्तकों में भी नहीं मिलेगी।”

उसने भी इस बार पद्मा को सम्बोधित किया और ‘पुस्तक’ शब्द पर खास जोर दिया। उसकी आंखों में एक विशेष चमक थी, जिसे देख पद्मा चौंकी, “ओहो ! मैं तो अब तक घोखे में रही !”

सब कहकहा लगाकर हँसने लगे। मँल निकालने वाला तिलक था। उसने होंठों पर अंगुली रख कर चुप रहने का निर्देश किया और इधर-उधर निगाह दौड़ाई। परे पेड़ के नीचे एक आदमी खड़ा था। उसका ध्यान दूसरी ओर था और बहाना कर रहा था कि वह उन्हें नहीं देख रहा। लेकिन तिलक को संदेह हुआ और उसने वहाँ से तुरन्त खिसक जाना उचित समझा।

सौंदर्य

तिलक का सदेह ठीक ही था। पेड़ के नीचे जो व्यक्ति खड़ा था, वह खुफिया पुलिस का सिपाही था। उसका ध्यान दूसरी ओर था, लेकिन गाढ़े बगाड़े कनखियों से इन्हे भी देख लेता था। दरअसल वह राजेन्द्र और इखलाक की निगरानी कर रहा था, तिलक को उसने सचमुच ही कान का मैल निकालने वाला समझा था। लेकिन जब उन्हें कहकहे लबाते सुना तो उसके कान खड़े हुए। उसने ध्यान से देखना चाहा, लेकिन तिलक कान का मैल 'कान का मैल' की आवाज लगता हुआ मेले की भीड़ में गुम हो गया।

सिपाही भी तेज-तेज कदम उठाता हुआ उसके पीछे चला। वह उसे देखकर अपनी तसल्ली कर लेना चाहता था।

लेकिन तिलक अपनी तसल्ली पहले ही कर चुका था। उसने सिपाही को अपनी ओर बढ़ते देख लिया था और पहचान भी लिया था। उसका नाम बशीर था और जब तिलक रूपोश नहीं हुआ था, वह खुद उसकी निगरानी पर नियुक्त था।

उसे पीछा करते देखा तो तिलक ने आवाज लगाना बन्द कर दिया और भीड़ में खो गया। चलते-चलते वह ऐसी जगह पहुँचा, जहाँ एक ओर सरकडो का घना जंगल और एक ओर बड़े बड़े वृक्ष थे। उसने एक क्षण के लिए सोचा कि जंगल में होकर देहात को चला जाये। लेकिन वह निश्चय करके आया था कि बँसाखी का मेला देखेगा, मित्रों से मिले-जुलगा

और शहर में जाकर 'किसान समस्या' पैम्पलेट और दूसरी चीजें लायेगा। अब उल्टे पांव लौट जाना उसे अपने साहम का अपमान जान पड़ा। अतएव सरकंडों में घुसने के बजाय, वह वृक्षों की ओर बढ़ा। थोड़ी दूर चलकर खुला मैदान आ गया। मामने एक तांगा खड़ा था, वह उचक कर उसमें बैठ गया और कोचवान से शहर की ओर चलने को कहा।

एक मँल निकालने वाले का तांगे में यों आ बैठना और फिर चलने का हुक्म देना कोचवान को नागवार लगा और वह मन ही मन चिढ़ कर बोला—

“किराया दो रुपये होगा।”

“दो ही मिलेंगे जल्दी चलो, हुज्जत क्यों करते हो?”

एक की जगह दो मिल रहे थे, कोचवान ने चावुक संभाला और षोड़ा चल पड़ा।

तिलक तांगे में बैठा ध्यान से देख रहा था कि बशीर उसका पीछा तो नहीं कर रहा। भीड़ अधिक थी। सड़क पर आने-जाने वालों का ताता लगा हुआ था; इसलिए अगर कोई पीछा कर भी रहा हो, तो जान लेना आसान नहीं था। तिलक का अनुमान था कि बशीर ने उसे तांगे में बैठते नहीं देखा, इसलिए वह उसे मेले ही में हूँद रहा होगा।

बात असल में यह थी कि तिलक पहले तो बशीर की नज़र से ओझल हो गया था, लेकिन जब तांगे में आकर बैठा तो सहसा फिर देख लिया और वह अपनी साईकिल उठाकर मुस्तैदी से उसका पीछा करने लगा। जब तांगा इसलामियां हाई स्कूल के निकट चौरास्ते में पहुंचा, तिलक ने देखा कि बशीर साईकिल पर सवार थोड़ी दूरी पर साथ-साथ आ रहा है। वह तांगे वाले को पहले ही लोअर की ओर चलने को कह चुका था। आगे थाना और पीछे बशीर, गिरपतारी निश्चित दिखाई देती थी। लेकिन वह घबराया नहीं, तांगे को चलने दिया और खुद जेब में कोई चीज टटोलते हुए साहस बटोरने लगा।

तिलक की गिरपतारी के लिए इनाम घोषित हो चुका था। पुलिस वाले हाथ धोकर उसके पीछे पड़े हुए थे। इनाम से अधिक नामवरी की

हविम थी। बशीर भी इस दौड़ में किसी से पीछे नहीं था। लेकिन दो-तीन बार घोखा खा चुका था और तिलक के बजाय ऐसे निरपराध व्यक्तियों को गिरफ्तार करा चुका था, जिन्हें पुलिस को खाहम-खाह की परेशानी के बाद साफ छोड़ देना पड़ा था। इस बार बशीर भली प्रकार जान लेना चाहता था कि वह वाकई तिलक है और ऐसी जगह पहुंच गया है, जहां से उसका निकल जाना कठिन है। हो सकता है कि उसका पीछा करने से क्रांतिकारियों का गुप्त ठिकाना भी मालूम हो जाये।

तागा घाने की बगल में से होता हुआ मोहनलाल रोड पर घूम गया। चौक में पहुंचकर तिलक ने कोचवान के हाथ में दो रुपये थमाये और उतर पड़ा। वहां से जो गली चगड मुहल्ले की जाती है, उसमें चद कदम तेज-तेज चलकर सहसा छू-मन्न हो गया। तागा सीधा मोरी दरवाजे की चला।

थोड़ी देर में बशीर भी वहां आ पहुंचा। मोड पर पनवाडी की दुकान थी, उससे पूछा,

“यहां अभी एक तागा आया था ?”

“जी हां।”

“वह किधर गया है ?”

“बया, तागा ?”

“हां, तागा।” बशीर ने जोर से कहा।

“तागा तो इधर गया है।” पनवाडी ने हाथ के इशारे से बताया।

बशीर ने पैडल मारा और चल पड़ा; लेकिन उसे दूररे ही क्षण ख्याल आया कि दुकानदार ने पहले पूछा “बया तागा ?” और फिर उत्तर दिया “तागा तो इधर गया है।” उसके मन में सदेह उत्पन्न हुआ और वह लौट कर फिर पनवाडी के पास आया।

“उसमें जो आदमी बैठा था क्या वह यहाँ उतर गया था ?”

“जी हां, उतर गया था।”

“वह किधर गया है ?”

“इस तरफ” पनवाड़ी ने ठीक दिशा बताई ।

बशीर को मालूम था कि मुहल्ले की गलियों इतनी तंग हैं कि साईकिल के साथ पैदल आदमी का पीछा करना कठिन है । इसलिए साईकिल वहीं छोड़ दी । पनवाड़ी साईकिल संभालते हुए सोच रहा था कि वह एक मील निकालने वाले का पीछा क्यों कर रहा है ? शायद वह कोई इनकलाबी हो । मैंने ठीक दिशा बताकर गलती की है ।

बशीर जब चौक में पहुंचा तो तिलक दीवार की ओट में खड़ा पनवाड़ी से उसकी गुप्तगू सुन रहा था । तांगे से उतर जाने का अभिप्राय ही यह था कि उसे घोखा दिया जाये । जब वह जल्दी-जल्दी बात खत्म करके तांगे के पीछे चला तो तिलक मन ही मन प्रसन्न हुआ और सीटी बजाता हुआ आगे बढ़ा । उसे सान-गुमान भी नहीं था कि बशीर इतनी जल्दी लौट आयेगा । लेकिन प्रतिक्षण चौकन्ना रहने से उसके कान हिरण के कानों की भांति तेज हो गये थे । थोड़ी ही दूर चलने के उपरान्त उसे अपने पीछे भारी-भारी कदमों की चाप सुनाई दी । लौटकर देखा, बशीर था । सहसा दोनों की आंखें चार हुईं और दोनों ने एक-दूसरे को पहचान लिया ।

खतरा बिलकुल सामने था । यहां से बच निकलना असाधारण साहस का काम था ।

गली लम्बी नहीं थी । तिलक ने लम्बे-लम्बे डग भरकर उसे पार कर लिया और बाईं ओर घूमकर मुहल्ले में घुस गया । बशीर का कदम भी उसके साथ ही साथ उठ रहा था और पांव की चाप साफ सुनाई दे रही थी । निस्संदेह बशीर पीछा कर रहा था और वह अकेला नहीं था । उसके पीछे पुलिस और फौज की बहुत भारी संगठित शक्ति थी ।

मुहल्ले में एक तंग और अंधेरी गली थी । तिलक उसमें घुस गया । वह जानता था कि गली कहां खत्म होती है लेकिन बशीर को इस बात का ज्ञान नहीं था, उसने सोचा कि तिलक उसे चकमा देकर इन गलियों में खो जाना चाहता है, इसलिये वह भी गली में घुसा और तेजी से आगे बढ़ा । अभी दो-तीन ही कदम उठाये थे कि तिलक बगल से निकलकर सिर पर

आ गया। उनका पिन्नों बशीर की छाती पर गना हुआ था।

“बशीर के बच्चे हकीर।” वह गरज कर बोला, “कुत्ते की तरह पीछा कर रहा है, शर्म नहीं आती है।”

बशीर को ठम्मीद नहीं थी कि तिलक भरे शहर में उस पर हमला करने का माहम करेगा। अब पिस्तौल सीने पर रखा देसकर उसके ओतान खता हो गये। गली सुनमान थी और वह जानता था कि मैं किसी को सहायता के लिए नहीं बुला सकता। जरा आवाज निकाली और तिलक ने गोली दागी।

“तूदा के लिए मुझे छोड़ दो। मैं वायदा करता हू कि पीछा नहीं करूंगा।” उसने धीमे और सहमे हुए स्वर में प्रार्थना की।

“पीछा।” तिलक विद्रूप भाव से मुस्कराया, “पीछा तब करे, जब मैं तुम्हें ज़िदा छोड़ूँ।”

“रहम।” बशीर ने भिन्नत की।

“साप की आदत है काट खाना। मैं साप पर रहम नहीं कर सकता।”

‘लेकिन मैं साप नहीं, इन्सान हूँ।’ उसके मुह से सहसा निकला।

मृत्यु को सम्मुख देखकर मनुष्य की सारी दायितयां सजग हो जाती हैं। बशीर पैसे के लिहाज से चाहे कुछ हो, आखिर इन्सान था। उसकी आखों में जीने की अभिन्नाया—मानवता की अमर भावना उभर आई। तिलक ने इस अभिन्नाया—इस भावना को देखा और पिस्तौल पीछे हटाकर बोला—

“अच्छा जा। मैं बशीर सिपाही को नहीं, इन्सान को छोड़ता हूँ।”

“और बशीर इन्सान वायदा करता है कि वह आईंदा किसी इनक-साबी को नुबसान नहीं पहुँचायेगा।”

तिलक ने पिस्तौल जेब में रखकर उससे हाथ मिसाया। फिर दोगो एक साथ गली से बाहर निकले और विपरीत दिशाओं में चल पड़े।

×

×

×

‘कान का मेल’ ‘कान का मेल’ चिल्लाता हुआ तिलक इरगीनाम से

घूम रहा था। सारा मुहल्ला छान मारा; लेकिन उसे एक भी ग्राहक नहीं मिला। वह घूमता-घामता पैसा स्ट्रीट में आया और एक दुकान—जिस पर 'तुर्फैल प्रिंटिंग वर्क्स' का बोर्ड लगा हुआ था—के सामने आकर रुक गया। उसने इधर-उधर देखा और फिर बिना भिन्नक दुकान के भीतर चला गया।

तुर्फैल काम में व्यस्त था। उसने कातिब को एक मसौदा दिया था और समझा रहा था कि उसे किस माईज पर कितना मोटा लिखना है और कब तक देना है। सामने कुर्ची पर एक ग्राहक बैठा था। कातिब से निपटकर तुर्फैल ने ग्राहक से बात शुरू की। वह अहरार धरकर था और 18 × 22 माईज का एक पोस्टर छपवाना चाहता था। उससे मामला जल्द तय हो गया। जब वह दुकान में बाहर चला गया तो तिलक ने आगे बढ़कर कहा—

“सलाम हजूर !”

“क्या चाहिए ?”

“कान का मैल निकलवा लीजिये। ग्राहकों की बात ध्यान से सुन सकेंगे।”

तुर्फैल सोच रहा था कि लिटथो की बड़ी मशीन पर क्या चीज छप रही है; इसके बाद कौनसी चीज छापनी होगी। अब सहसा चौंका और तिलक से हाथ मिलाकर बोला, “तुम क्या मुझे बहरा समझते हो ?”

“बिलकुल नहीं तो थोड़े बहुत जरूर।”

“अच्छा, तुम अंदर चलो ! मैं अभी आकर मैल निकलवाता हूँ।”

तुर्फैल के ठीक पीछे एक दरवाजे पर पर्दा लटक रहा था और उसके ऊपर 'प्राईवेट' लिखा था। दुकान में कोई दूसरा नहीं था, तिलक पर्दा उठाकर भीतर चला गया।

वक्तियों का आलोक था। वहाँ अग्रेजी छापने की दो मशीनें थी और लकड़ी के चौखटों में टाईप भरा हुआ था। पार्टी के गुप्त बंटने वाले सब पर्चे यहीं छपते थे।

उर्मिला एक चौखटे पर झुकी हुई कोई लेख कम्पोज कर रही थी, जो पार्टी के गुप्त पत्र 'वालशेविक' के लिए लिखा गया था।

"मियां बहुरूपिये सलाम?" उर्मिला ने मुस्कुराकर तिलक का अभिवादन किया।

"सलाम, सुनाओ क्या हाल है?"

"हाल जो है, वह देख ही रहे हो।"

उर्मिला ने एक कच्छा और आधी आस्तीन का कमीज पहन रखा था, इसलिए कि बाल आंखों पर न गिरे, उन्हें एक कपड़े से ढांपकर पीछे बांध लिया था, और हाथ कुहनियों तक कालिख में सने हुए थे। काम करते समय वह सदा यही वस्त्र पहनती थी। जब वह कम्पोज करने के लिए अक्षर उठाती थी, तो उसके होंठ धीरे-धीरे हिलते थे, जैसे वह अपने मन में कोई राग गुनगुना रही हो, आंखें प्रसन्नता से चमक उठती थीं और होंठों पर मुस्कुराहट फैल जाती थी। अगर वह सुन्दर वस्त्र पहनती तो निसंदेह आदमी उसे नहीं उसके वस्त्रों को देखना पसंद करता। लेकिन अब वस्त्र गौण थे, उसका अपना ब्यक्तित्व मुख्य था, जो निखरा हुआ था। उसके अंग-अंग में विस्मरणीय कोमलता और माधुर्य था। तिलक ने एक प्रेमभरी दृष्टि उस पर डाली और कहा—

"हाल तुम्हारा अच्छा है, बहुत अच्छा। जो चाहता है कि तुम्हें देखता ही रहूँ।"

"चलो, झूठे कहीं के।" उर्मिला ने तुनककर कहा।

तिलक की निगाहों के नीचे वह पहले से भी अधिक निखर गई थी। बोली, "तुम्हें हमेशा मजाक ही सूझता है।"

"मजाक नहीं उर्मिला, जब मैं तुम्हें देखता हूँ तो हेलेन की सुन्दरता भी हेच दिखाई देती है।"

"ओह, तुम मुझे हेलेन से भी सुन्दर समझते हो?"

“हा ।” तिलक ने दृढ़ और स्पष्ट स्वर में कहा, और तनिक रुककर बोला, ‘हेलन की सुन्दरता युद्ध और रक्तपात के कारण बनी, लेकिन तुम्हारी सुन्दरता दुनिया को बेहतर बनाने के लिए सघर्षरत है ।’

वह रुका । खामोशी का एक लम्बा क्षण बीत गया । वह चुप और मौन खड़ा कुछ सोचता और अपने आप में डूबा हुआ, किसी मधुर और मनोहर विचार से मुग्ध होता रहा । उसने फिर एक गहरी दृष्टि उमिला पर डाली और कहा—

‘जिस तरह मैं देख रहा हूँ, काश दुनिया भी उसी तरह तुम्हारी सुन्दर आत्मा को देख सकती ।’

उमिला इन शब्दों के सत्य से इनकार न कर सकी । तिलक उसका साथी था, हमराही था—दोनों के हृदय एक ही भावना से घडक रहे थे ।

खरा-खोटा

सोना कुठाली में पड़ने के बाद चमक उठता है, क्योंकि उसका खोटा अंश दूर हो जाता है। मनुष्य जब एक आदर्श के लिए कष्ट भोगता और संघर्ष करता है तो उसकी आत्मा महान और उदार बनती है, क्योंकि उसके भीतर की तुच्छता कष्टों की आच से पिघल जाती है।

लेखराम का जीवन जेल में बीता है, जब से उसने होश संभाला है, वह आजादी के लिए और समृद्ध जीवन के लिए जेल काटता आया है। जेल काटना तो मामूली बात है, वह कभी जान पर खेल जाने से भी पीछे नहीं हटा। अब कष्ट भी उसके लिए कष्ट नहीं रहा। वह हर स्थिति में प्रसन्न रहता है। पिस्तौल के मुकदमा में उसे दो साल की कैद हुई थी। अभी कल ही रिहा होकर आया है। और मित्रों की महफिल में बैठा चहक रहा है। बातचीत का विषय पुलिस द्वारा दी गई यातनाएँ और जेल जीवन का कष्ट है। इसमें कुछ भी कल्पित नहीं, सचमुच की घटनाएँ हैं और संस्मरण हैं। लेकिन हर घटना को वह ऐसे सुनाता है; जैसे हुई, बीत गई और अनुभव वरदान में छोड़ गई। एक बार पुलिस ने भेद जानने के लिए उसे बराबर दो दिन दो रात जागते रखा, सोने नहीं दिया। गर्मों के दिन, कमरा बन्द और ठीक सिर के ऊपर एक हजार कैंडल का बल्ब। तीसरी रात लेखराम झुंझला उठा। सिरहाना उठाकर मारा और बल्ब तोड़ दिया। बल्ब तोड़ देना इस घटना की पराकाष्ठा है, जहाँ लेखराम खिलखिलाकर हँस पड़ता है। यही घटना जब भी सुनाई गई है, यही खतम हुआ है और लेखराम

खिलखिलाकर हसा है। यह घटनायें और खिलखिलाकर हसना ही उसके जीवन की एकमात्र पूजी है।

मित्रो में बैठ बातें करने के अतिरिक्त उसे पढ़ने का शौक है। जेल में रहकर मनुष्य पिछड़ जाता है और दुनिया अपनी स्वाभाविक गति से आगे निकल जाती है। इन दिनों चीन स्वतंत्रता-प्रिय लोगों के लिए विशेष आकर्षण का कारण बना हुआ था, क्योंकि वहाँ जिद्दगी और भ्रष्टाचार में युद्ध ठना हुआ था। लेखराम जेल से आते ही एक नई पुस्तक खरीद लाया, जिसमें चीन और जापान की लड़ाई, और चीनियों की अतुल वीरता की कहानियाँ दर्ज थीं। एक दिन मित्रों की महफिल में इन कहानियों के पात्रों की कल्पना करते हुए लेखराम ने कहा—

‘हमारी आजादी की जग इस समय चीन में लड़ी जा रही है’
 “माफ कीजियेगा, मैं आपको टोक रहा हूँ।” गोपाल ने कहा। वह कोई बात कहने के लिए बड़ी देर से आतुर था।

‘बड़े शौक से। टोकोगे नहीं तो सीखोगे क्या?’

लेखराम का स्वर अगर सयत और गभीर न होता तो लोग शायद हस पड़ते और बात मजाक में उड़ जाती। गोपाल प्रोत्साहित हुआ और बोला,

“चीन कमजोर है, उसे अपनी ही जान के लाले पड़े हुए हैं, वह हमारी आजादी के लिए क्या लड़ेगा?”

“कमजोर है तो क्या हुआ, शुरू में हमारा जनआंदोलन भी तो कमजोर था, अब उसने कितनी शक्ति प्राप्त कर ली है।’ इस बार प्रह्लाद ने कहा।

‘तुम बे-मतलब बात करते हो।’

“समझने की कोशिश करो, मैं ठीक कह रहा हूँ। हम जनतंत्र के लिए लड़ रहे हैं, चीन जनतंत्र के लिए लड़ रहा है और जनतंत्र के लिए लड़ने वाले दिन-दिन सशक्त होते जा रहे हैं।”

गोपाल और प्रह्लाद आपस में उलझ गए। प्रह्लाद सिद्ध करना चाहता था, कि चीन वाकई हमारी आजादी की लड़ाई को आगे बढ़ा रहा है। उसने पहली बार अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण को आधार बनाकर बहस शुरू की थी। अधिक स्पष्ट न होते हुए भी वह अपनी बात को उत्साह और विश्वास के साथ कह रहा था। लेकिन गोपाल अपनी मानसिक परिधि से निकलने को तैयार न था। वह यह समझने में सर्वथा असमर्थ था कि चीन अथवा कोई दूसरा देश हमारे आजादी के आंदोलन को आगे कैसे बढ़ा सकता है। लेखराम ने देखा कि उनकी बहस किसी निर्णय पर पहुंचने के बजाय विवर्तन-सा बन गई है, उलझ गई है।

“देखिए” उसने प्रह्लाद और गोपाल दोनों को संबोधित किया, “इसमें बहस की ज्यादा गुंजाइश नहीं। दो और दो चार होते हैं। अगर एक आदमी प्रतिक्रियावादी शक्तियों को छोड़कर ईमानदारी से प्रगतिशील शक्तियों का माथ देने लगता है तो निसंदेह हमारी आजादी पहले से निकटतर आ जाती है। और अगर एक पूरे देश में और बड़े देश में प्रगतिवाद और जनतंत्र की जीत होती है तो सोचिए हमारी आजादी कितनी निकट आ जाती है।”

प्रह्लाद मृस्कुुरायाम और गोपाल लेखराम की ओर विस्मय से देखने लगा। लेकिन मदन अपनी ही महानता से मुग्ध होकर बोला—

“गोपाल, मैं अपनी बात फिर दोहराता हूँ कि तुम कुछ समझते नहीं हमेशा बच्चों की सी बातें करते हो।”

गोपाल ने घूरकर मदन की ओर देखा। उसके गाल क्रोध से तमतमा उठे। वह भीतर ही भीतर उबल रहा था; कठोर बात कहने के लिए शब्द नहीं मिल रहे थे।

“कोई बात नहीं हम सभी बच्चों की-सी बातें करते हैं।”

लेखराम ने परिस्थिति को संभाला।

“और अहंवादी बनने से तो अच्छा है कि आदमी बच्चा ही बना रहे।” नारायण के तीसे स्वर ने सबको चौंका दिया।

‘मुझे बड़े-बड़े की कविता याद आ रही है।’ लेखराम ने अपने सफेदी मिल भूरे बालों को दोनों हाथों से पीछे हटाते हुए कहा, “वह कहता है कि इन्द्र धनुष को देख मेरा मन बल्लियों उछलने लगता है, जिस प्रकार बचपन में उछला करता था। मनुष्य और वृक्षों में अटूट संबंध है। बच्चा मनुष्य का पिता है।”

बात कविता और दर्शन के गिदं घूम गई। प्रसिद्ध कवियों के अनेक पद और कथन लेखराम के मस्तिष्क में सकलित थे। वह जब कोई पद अथवा शेर पढ़ता तो कविता से अनभिज्ञ लोग भी झूम उठते। खुद पढ़ने और उससे सुनने में बड़ा अंतर था। पुस्तक के शब्द ठोस, ठंडे और जड़ होते हैं। लेकिन वही शब्द जब लेखराम के मुख से निकलते हैं तो वे संप्राण और सशक्त बन जाते हैं, उनमें एक विचित्र स्निग्धता और ताजगी आ जाती है इसीलिए उसकी महफिलें खूब जमती हैं।

लेखराम को रिहा हुए दस-पंद्रह दिन ही बीते थे, कि ओकाढा में मजदूर काफ़ेस हुई। साल भर पहले वहां शानदार सफलता प्राप्त हुई थी। रामदास ने यूनियन के पौधे को खून से सींचकर जवान किया था। उसके ऊँचे तले सब मजदूर सगठित हो गए थे। मनचढ़ा की अब वहां जरूरत नहीं रह गई थी। मिल मालिक ने उसे अपनी अहमदाबाद की मिल में भेज दिया था। अब वह वहां मजदूरों को अध्यात्मवाद का पाठ पढ़ाता था और मिल-मालिकों को पिता के तुल्य समझने की सीख देता था। उसका अनुभव चूँकि अब काफी बढ़ गया था, इसलिए तनखाह भी बढ़ गई थी। सदीक, बदरी, करमा, रहमा और नदा सभी एक यूनियन में थे। आपस में घड़े-बाजी खत्म हो चुकी थी। जाबर अब उनपर जुल्म नहीं कर सकते थे। मजदूरों ने अपने हित को और यूनियन के महत्व को समझ लिया था और वे काफ़ेस की सफलता के लिए प्रयत्नशील थे।

काफ़ेस वाकई सफल रही। मजदूरों के अलावा आसपास के देहात से किसान भी भारी तादाद में शामिल हुए। ताया चेतसिंह भी अपने गांव से एकजत्था साथ लाया था वह अब देहात में ही काम कर रहा था। उसका

वेटा कृपालसिंह इलाके की किसान सभा का सेक्रेटरी था। वह लोगों से उसके काम की प्रशंसा सुनकर खुश होता था। और खुद काम करता था। अंग्रेजी पढ़ना छूट गया था, दूसरे ही कामों से फुर्सत नहीं मिलती थी। लेकिन जब कभी तारासिंह से भेंट होती, वह जरूर पूछ लेता—“सुनाओ ताया, अंग्रेजी कितनी पढ़ ली। लकड़ी की जवान में भी लचक आई या नहीं?”

कॉंग्रेस 17 मई को शुरू हुई और पहले ही दिन हंगामा शुरू हो गया। जगदीश को प्रधान चुना गया। उसने जो भाषण दिया, उसकी लगभग सभी बुनियादी बातों पर अशोक और लेखराम सहमत नहीं थे। म्यूनिख की संधि के बाद परिस्थिति तेजी से बदल रही थी। युद्ध अनिवार्य दिखाई देता था जगदीश ने आने वाले युद्ध का उल्लेख विशेष रूप से किया और हिटलर की नीति, शक्ति और प्रोग्राम को खूब सराहा। उसके नेशनल सोशलिज्म के बारे में यहां तक कह दिया कि माक्सवाद का युग खत्म हुआ, अब नेशनल सोशलिज्म का युग शुरू होता है और इसी में हमारे युग की कठिनाइयों का हल होगा।

अशोक ने जगदीश के लेखों से जिस प्रवृत्ति को भांप लिया था, वह अब स्पष्ट रूप में सामने आई। विरोध अनिवार्य था। जगदीश के बाद लेखराम भाषण करने खड़ा हुआ। उसने मजदूरों, किसानों की समस्याओं पर, संगठन और वर्ग-संघर्ष पर प्रकाश डाला और दुनिया में जो बेकारी और मंदवाड़ा फैला हुआ था, उसके राजनीतिक कारण बताते हुए कहा—

“इस समय दुनिया में तीन शक्तियां काम कर रही हैं। एक प्रगतिशील शक्ति है, जो सोशलिज्म और जनतंत्र की शक्ति है, और जनता की शक्ति है। हम इस शक्ति के साथ हैं, क्योंकि हम भी अपने देश में अपनी जनता का राज चाहते हैं, बेकारी और भूख का अंत चाहते हैं। दूसरी साम्राज्यवाद की शक्ति है, जो दुनिया की मंडियों पर कब्जा जमाये हुए है, जो इसलिए युद्ध के खिलाफ है कि उसे अपनी मंडियों के छिन जाने का भय है। हम साम्राज्यवाद के विरुद्ध हैं, क्योंकि इन्हीं लोगों ने हमें गुलाम बना

रखा है, और हमारा खून चूस रहे हैं। तीसरी शक्ति जो साम्राज्यवाद ही का धिनोना रूप है, फासिस्तवाद है। जर्मनी, जापान और इटली के सर-मायादार सौदागर दुनिया की मडियों पर अपना कब्जा चाहते हैं। हिटलर उन्ही का प्रतिनिधि है। वह अंग्रेज का दुश्मन इसलिए है कि अंग्रेज मडियों पर पहले से छाया हुआ है। हम भी अंग्रेज शासक वर्ग को अपना दुश्मन समझते हैं, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि हिटलर हमारा दोस्त है, बल्कि वह भी हमारा दुश्मन है, अंग्रेज से भी बड़ा दुश्मन है क्योंकि वह समस्त प्रगतिशील और जनवादी शक्तियों को कुचल देना चाहता है। वह चाहता है कि अंग्रेज साम्राज्यवादियों की जगह जर्मन साम्राज्यवादी हमारा खून चूसें.....”

लेखराम ने एक चुभती-सी नजर जगदीश पर डाली और आगे कहा, “युद्ध होगा तो हम अंग्रेज की कमजोरी से लाभ उठावेंगे और देश को आजाद कराने का प्रयत्न करेंगे। लेकिन हम हिटलर की जीत नहीं चाहेंगे, क्योंकि हिटलर की जीत जनता के दुश्मन की जीत। हिटलर की नीति का वही लोग समर्थन कर सकते हैं, जो कितारों चाटकर विद्वान् बने हैं। जिन्हें जनशक्ति पर भरोसा नहीं है, जो अपाहिज और विवश हैं और जो दुनिया की बढ़ती हुई शक्तियों को नहीं पहचानते। वे लोग दया के पात्र हैं। उनके लिए मार्क्सवाद मर चुका है और उनके नजदीक नेशनल सोशलिज्म ही इस युग की समस्याओं का एक मात्र हल है। लेकिन मैं उन्हें बता देना चाहता हूँ कि वह अपने आपको धोखा दे रहे हैं, जनता को धोखा दे रहे हैं, वे एक बहुत बड़ी भूल कर रहे हैं और इतिहास इस भूल को कभी माफ नहीं करेगा.....”

लेखराम जनता के लिए जीवित था, जनता की शक्ति को अपने भीतर अनुभव करता था और जनता को अपने साथ बहा ले जाने में समर्थ था। लोग मंत्र-मुग्ध से उसका भाषण सुन रहे थे और बार-बार तालिया पीटकर अपनी मनोभावनाएं व्यक्त कर रहे थे।

पहला अधिवेशन सक्षिप्त था। इस भाषण के बाद खत्म हो गया। लेकिन जो बहस चल पड़ी थी, वह इसके बाद भी जारी रही। जगदीश इस

बात से चिढ़ गया कि खुले अधिवेशन में उसका विरोध हुआ है और विरोध-उन लोगों ने किया है, जिन्हें वह सियासत पढ़ा सकता है। अशोक ने लेखराम के प्रत्येक शब्द का समर्थन करते हुए कहा कि जगदीश का यह मत इसलिए बना है कि वह जन-संपर्क और उनके संघर्ष से अलग रहता है, निरा बुद्धिजीवी है।

दो-तीन घंटे बात होती रही। लेकिन उनमें और जगदीश में कोई समझौता न हो सका। वह कान्फ्रेंस छोड़कर चला गया। दूसरे अधिवेशन का सभापतित्व खुद लेखराम ने किया।

तोहे के मोजे

पावती का जीवन दिन दिन बोझिल होता जा रहा था। वह उदास और खिन्न रहती थी। एक ओर जेल में बन्द पति की चिन्ता और दूसरी ओर बच्चों की। राज हठी और आवारा हाता जा रहा था। उसके मन में माँ का तनिक भी आदर-सत्कार नहीं था। हाँ, बिना बात ही उस भिडक देता था। बेटे के व्यवहार से माँ का जी जल जाता। वह जिसके पास अपना दुखड़ा रोए कोई उसे समझाने वाला नहीं था। पति जेल में जाता तो राज यो कभी न बिगड़ता। एक उसी की बात नहीं, देखा देखी दूसरे बच्चों के बिगड़ जाने की सम्भावना थी, ऊँचा भी उसका कहना कम मानती थी। उसके भीतर सन्तोष नहीं था। परेशानियाँ बढ़ रही थी, प्रतिक्षण अभाव-सा खटकता। रहने को मकान मिला हुआ था। अशोक नारायण और दूसरे लोग उसका हर तरह ध्यान रखते थे, बच्चों से प्यार करते थे लेकिन यहाँ घर का वातावरण नहीं था। जब वह मुहल्ले में रहती थी तो दूसरी ओरतों में मिल बैठती थी। उनके दुख सुख की बातें सुनती और अपनी उन्हें सुनाती थी। यहाँ कौन ऐसा था, जिसके सामने वह अपने दिल का बोझ हल्का करे? वे योग मनमौजी थे, अजीब मिट्टी से बने भालूम पड़ते थे, जैसे दुखों का उनके लिए कोई अस्तित्व ही नहीं हो। जेल जाना उनके लिए मामूली बात थी। वे क्या जानें कि पति के जेल चल जान के बाद एक स्त्री पर क्या गुजरती है। उससे सपने भयानक रूप धारण कर लेते हैं। वे अनोखी ओर विचित्र बातें करते थे, जो पावती की समझ में साक नहीं आती थीं।

बात से चिढ़ गया कि खुले अधिवेशन में उसका विरोध हुआ है और विरोध उन लोगों ने किया है, जिन्हें वह सियासत पढ़ा सकता है। अशोक ने लेखराम के प्रत्येक शब्द का समर्थन करते हुए कहा कि जगदीश का यह मत इसलिए बना है कि वह जन-संपर्क और उनके संघर्ष से अलग रहता है, निरा बुद्धिजीवी है।

दो-तीन घंटे बात होती रही। लेकिन उनमें और जगदीश में कोई समझौता न हो सका। वह कान्फ़ेंस छोड़कर चला गया। दूसरे अधिवेशन का सभापतित्व खुद लेखराम ने किया।

लोहे के मोजे

पार्वती का जीवन दिन-दिन बोझिल होता जा रहा था। वह उदास और खिन्न रहती थी। एक ओर जेल में बन्द पति की चिन्ता और दूसरी ओर बच्चों की। राज हठी और आवारा होता जा रहा था। उसके मन में मा का तनिक भी आदर-सत्कार नहीं था। हा, बिना बात ही उसे भिड़क देता था। बेटे के व्यवहार से मा का जी जल जाता। वह जिसके पास अपना दुखड़ा रोए, कोई उसे समझाने वाला नहीं था। पति जेल न जाता तो राज यो कभी न विगड़ता। एक उसी की बात नहीं, देखा-देखी दूसरे बच्चों के विगड़ जाने की सम्भावना थी, ऊया भी उसका कहना कम मानती थी। उसके भीतर सन्तोष नहीं था। परेशानिया बढ़ रही थी; प्रतिक्षण अभाव-सा खटकता। रहने की मकान मिला हुआ था। अशोक, नारायण और दूसरे लोग उसका हर तरह ध्यान रखते थे, बच्चों से प्यार करते थे, लेकिन यहाँ घर का वातावरण नहीं था। जब वह मुहल्ले में रहती थी तो दूसरी औरतों में मिल बैठती थी। उनके दुख-सुख की बातें सुनती और अपनी उन्हें सुनाती थी। यहाँ कौन ऐसा था, जिसके सामने वह अपने दिल का बोझ हल्का करे? ये लोग मनमौजी थे, अजीब मिट्टी से बने भालूम पड़ते थे, जैसे दुखों का उनके लिए कोई अस्तित्व ही न हो। जेल जाना उनके लिए मामूली बात थी। वे क्या जानें कि पति के जेल चले जाने के बाद एक स्त्री पर क्या गुजरती है! उसके सपने भयानक रूप धारण कर लेते हैं। वे अनोखी और विचित्र बातें करते थे, जो पार्वती की समझ में खाक नहीं आती थी।

“तुम चिंता न करो बहन, हम लोग बड़े आराम से रहते हैं वहां।”

लेखराम जब जेल से आया, तो उसने पार्वती के एक प्रश्न के उत्तर में कहा था। लेकिन पार्वती कैसे मान ले कि लोग जेल में भी आराम से रहते हैं।

लेखराम की एक बड़ी बहन थी, जिसने उसे पाल-पोसकर जवान किया था। मां बचपन ही में मर गई थी। वह बहन भी अब इस दुनिया में नहीं थी। लेखराम पार्वती को उस बहन के रूप में देखता था; उसका आदर करता था, उसकी बातें ध्यान से सुनता और हमदर्दी से पेटा आता था। लेकिन यही हमदर्दी पार्वती को झंझोड़ देती थी और उसका मन विषाद और कटुता से भर जाता था।

मनुष्य की आत्मा संतुष्ट उस समय होती है, जब उसे किसी की हमदर्दी अपेक्षित न हो।

लेखराम जो बात पार्वती को सांत्वना देने के लिए कहता था, उसी से दुःख का पहलू निकल आता था क्योंकि उन दोनों के सोचने ममझने में अंतर था; उनके दृष्टिकोण में सामंजस्य सम्भव नहीं था। एक दिन बच्चों को पढ़ाने की बात चल रही थी, लेखराम बोला—

“बहन जी, तुम खुद भी पढ़ना शुरू कर दो।”

“मैं!” पार्वती ने आंखें झपकाईं और चकित-सी लेखराम की ओर देखती रह गई, जैसे उसे सुनी हुई बात का विश्वास न हो, जैसे वह स्वप्न देख रही हो।

लेखराम संयत और गम्भीर सामने बैठा था। उसकी बात को अनसुनी करके टालना सम्भव नहीं था।

“मेरी अब पढ़ने की कौनसी उम्र है?” पार्वती ने धीमे से कहा।

“बहन, पढ़ने की कोई उम्र नहीं होती। मनुष्य अगर मरने से दो मिनट पहले भी अकल की बात सीख ले, तो मूर्ख रहकर मरने से अच्छा है।”

लेखराम ने अपनी बात धीमे स्वर में कही और चुप हो गया। लगता था जैसे वह कोई श्रद्धि और तपस्वी है, सदियों का अनन्त सत्य उसके सीने

मे छिपा है और अब उसी सत्य के एक अंश का उद्घाटन हुआ हो।

दोनों मौन थे। सिर्फ लेखराम के अन्तिम शब्द कमरे में गूँज रहे थे। पार्वती को यह शब्द अमर, अनन्त और जाने-बूझें से जान पड़े, जैसे वह उन्हें बचपन ही से सुनती आई हो। तनिक सोचा तो मरण हो आया।

एक बार वह अपनी मा के साथ कथा सुनने गई थी। पंडित ने कहा था कि किसी पापी और दुष्ट के कानों में मरते समय ज्ञान के दो अक्षर पढ़ने से उसे मुक्ति मिल गई। ज्ञान मुक्ति का भाग है। पार्वती इस सत्य को मानती थी। उसके मन में भी कई बार पढ़ने की लालसा उत्पन्न हुई थी। उसने सोचा था कि लोग जो अनोखी बातें करते हैं, उन्हें वह समझ सके। बलवन्त जब नौकरी छोड़ कर कांग्रेस में भर्ती हुआ था तो पार्वती ने अत्यन्त दुखी होकर कहा था—“अपना नहीं तो बच्चों का ही ख्याल कर लिया होता।” पति ने हस कर उत्तर दिया था : “मैंने जिस उद्देश्य के लिए नौकरी छोड़ी है, वह तुमसे, मुझसे और बच्चों से बहुत बड़ा है।”

पार्वती पति के मुह की ओर ताकती रह गई। उसने अपने शब्दों को फिर दोहराया—“बहुत बड़ा है वह उद्देश्य पार्वती। काश, तुम समझ सकती। वाकई वह उद्देश्य बहुत बड़ा है। हा, हा !”

बलवन्त के भीतर से कहकहे फूट रहे थे और आँखों में उन्मत्त उल्लास था। पार्वती चकित और स्तब्ध उसकी ओर देख रही थी। वह उसके उन्माद और उल्लास से प्रभावित थी। तब उसने सोचा था काश में भी कुछ पढ़ लेती, पति के इस उद्देश्य को समझ पाती।

इसके बाद बलवन्त जेल का जीव बन गया। पार्वती की परेशानियाँ बढ़ती रहीं, बच्चे जान खाते रहे और गृहस्थी सुखद और समृद्ध होने के बजाये दुखद और विपन्न होती रहीं। नौकरी छोड़ने का अर्थ पागलपन के अतिरिक्त कुछ न जान पड़ा। पार्वती की सारी उमर्गें, सारी आकांक्षाएँ शिथिल पड़ गईं। इतनी शिथिल कि लेखराम के शब्द भी स्फूर्ति और स्पन्दन न ला सके। पूंशी फर्श पर चैठी खेल रही थी। पार्वती उसे घुटनों

पर बिठाकर उसके बाल संवारने लगी और लेखराम की ओर बिना देखे ही बोली --

“हे तो ठीक, पर अब मैं बच्चे पालूँ या कितावें पढ़ूँ ?”

दरवाजे की ओर पार्वती की पीठ थी। जब वह यह शब्द कह रही थी, शीला और पद्मा ने कमरे में प्रवेश किया। शीला अक्सर पार्वती से मिलने और बच्चों की ख़बर-खबर पूछने आ जाती थी। कई बार पद्मा भी उसके साथ होती थी। आज भी वह दोनों आई थी। अभिवादन के पश्चात् चारपाई पर बैठते हुए पद्मा ने पूछा—कितावों की क्या बात हो रही थी भाभी ?”

पार्वती ने सोचा था कि वे आ गईं तो अब पढ़ाई की चर्चा नहीं चलेगी। पद्मा ने यह प्रश्न पूछा तो फिर उसी उलझन में फँस जाने की आशंका उत्पन्न हुई।

“कुछ नहीं योंही बच्चों की पढ़ाई की बात हो रही थी।” वह बात टालने के भाव से बोली—

“और मैं इनसे कह रहा था कि बहनजी आप खुद भी पढ़िए।” लेखराम ने भेद खोल दिया।

“बात तो ठीक है।” पद्मा ने समर्थन किया।

“आपका एतराज है कि मैं अब बच्चे पालूँ या कितावें पढ़ूँ।”

“पर भाभी, कितावें पढ़कर बच्चे पालना और भी आसान हो जाता है।”

“अच्छा !” पार्वती ने पलकें हटाकर पूर्ण दृष्टि से पद्मा को देखा और मुस्कुराकर कहा, “तब तो तुम खूब बच्चे पालोगी !”

यह भाभी का नन्द से मजाक था; लेकिन पद्मा ने बिना किसी संकोच के सगर्व उत्तर दिया, “क्यों नहीं कितावें पढ़ी हैं, तो बच्चे पालना भी खूब आता है।”

पार्वती जब कुंवारी थी, बच्चे तो क्या अपने ब्याह की बात सुनकर लजा जाती थी। लेकिन पद्मा अजीब ढीठ लड़की थी कि बड़ी बहन और

एक मर्द की उपस्थिति में बच्चे पालने की बात सगर्व कह रही थी और फिर किसी के चेहरे पर अप्रसन्नता नहीं थी, विरोध-भाव नहीं था। पार्वती मन ही मन में सोचने लगी—“यह कैसे लोग हैं, जो अनहोनी बात की भी निन्दा नहीं करते।” इस परिस्थिति में वह स्वयं भी कुछ नहीं कह सका। उसका अपना सिर लज्जा से झुक गया, और वह पूंजी की पीठ सहलाने लगी।

“मैं एक मजेदार बात सुनाऊँ।” लेखराम ने निस्तब्धता भंग की, “चीन के लोग भी हमारी तरह रूढ़िवादी थे। उनका खयाल था कि जो औरत किताब पढ़ती है, वह सारी उम्र बाध रहती है।”

‘जो लोग औरत के पाव बाधकर उसे अपाहिज बना देते हो, उनसे और क्या आशा हो सकती है।’ पद्मा ने तुनककर कहा।

“लेकिन अब चीन बदल रहा है।” लेखराम ने एक क्षण चुप रहकर कहा, “वहाँ अब मर्द बदल गये हैं, औरतें बदल गई हैं। पाव बाधने का रिवाज नहीं रहा।”

पार्वती ने चीन का नाम सुन रखा था, लेकिन उसके बारे में कोई बात उसे मालूम नहीं थी। वह एक अबोध बालक की भाँति लेखराम की ओर देखते हुए बोली—“पाव बाधने का भी कोई रिवाज हो सकता है?”

‘हा बहन, था।’ लेखराम ने सहज भाव से कहा, “वहाँ जब लड़की पैदा होती थी, उसके नन्हे-नन्हे पाव पर लोह के मोजे पहना दिये जाते थे, ताकि वह बड़ न सके, ताकि लड़की बड़ी होकर आज्ञादी से चल-फिर न सके।”

“यह भी कोई रिवाज है, निरा पागलपन है। नहीं, यह नहीं हो सकता।” पार्वती न आश्चर्य से हाथ मलते हुए कहा।

“हो क्यों नहीं सकता, भाभी? अब तब होता रहा है।”

पद्मा बोली। वह कुछ और भी कहना चाहती थी, लेकिन हठात् रुक गई और पार्वती की ओर देखने लगी। पार्वती, जिसने अपने समाज की हर पाबन्दी को स्वीकार कर लिया था, चीन के इस रिवाज पर झुंकला उठी।

उसने अपना सिर ज़िन्दगी में पहली बार ऊपर उठाया और नारीत्व की समस्त शक्ति आंखों में खिच आई।

“यह रिवाज नहीं, जुल्म है। मैं अगर चीन में पैदा होती तो पांव बंधवाने से साफ इन्कार कर देती।” पार्वती तुनककर बोली।

पद्मा और लेखराम मुस्कराये; लेकिन शीला वदस्तूर सौम्य और गम्भीर बनी रही। उसके चेहरे पर विनम्रता और कोमलता का भाव अंकित था और बड़ी-बड़ी आंखें प्रत्येक वस्तु को स्नेहपूर्वक देख रही थी। बालों की एक लट आगे लटक रही थी, जिसके कुछ बाल स्याह और कुछ सफेद थे। उसके बायें हाथ पर एक चूड़ी थी, जो इस बात का प्रतीक थी कि वह भी कभी सुहागन रह चुकी है।

पार्वती काफी देर मन ही मन प्रसन्न होती रही, अपने शब्दों पर गर्व करती रही। उसका चेहरा अब विकसित फूल के सदृश खिल उठा था। उसने पूशी को प्यार से झुंझोड़ा। गोद से उतार कर फर्श पर खड़ा कर दिया और उसके नन्हे-नन्हे पावों को देखने लगी। मां का प्यार देख बच्ची लहक उठी और ठुमक-ठुमककर चलने लगी जैसे कह रही हो—“मा मैं अपने पाव पर चलूंगी, दौड़ूंगी, नाचूंगी। किसी को बाधने की इजाजत नहीं दूंगी।”

पूशी को लहकते देखकर शीला भी मुस्कराई और चांहीं फँलाकर उसे अपने पास बुलाया, लेकिन वह उसके पास आने के बजाये एक ओर को दौड़ गई और गुड़िया उठाकर खेलने लगी।

“भाभी !” पद्मा जो बात कहते-कहते रुक गई थी, उसने अब यों कहा, “चीन का यह रिवाज तो वाकई जुल्म है; पर कभी अपने देश पर भी दृष्टि डाली? हमारे पांव तो नहीं बांधे जाते; लेकिन दिमाग पर लोहे के मोजे जरूर पहना दिये जाते हैं। हम जिन धर्मशास्त्रों को मानते हैं, उन्होंने औरत को कोई चीज ही नहीं समझा। वह बचपन में पिता के, जवानी में पति के और बुढ़ापे में पुत्र के आधीन है। पुरुष, पुरुष, पुरुष ! वस वह हमेशा पुरुष की गुलाम है और उसके लिए आजादी से सांस लेना पाप है।”

घोंघे को अपने मिट्टी के घर से प्यार होता है। वह उसे टूटते देखना

नहीं चाहता। पार्वती को पद्मा की यह बात नागवार गुजरी और वह उसका वार रोक्ते हुए बोली—

“इसमें क्या बुराई है, औरत मर्द के बराबर तो नहीं हो सकती?”

“क्यों नहीं हो सकती? मर्द में कौन-सा सुर्खाव का पर लगा है, जो औरत में नहीं होता।” पद्मा ने तुनककर कहा, “देखा जाये तो औरत का दर्जा मर्द से ऊँचा है। वह अपने रक्त से नव-जीवन का निर्माण करती है, उसके लिए कष्ट भैलती है।”

शीला ने बहन की ओर सगर्व देखा। कभी उसमें भी इतना ही जोश था। सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध वह इसी तरह झुंझला उठती थी। लेकिन विद्रोह के जो मनसूबे बाधे थे, वे पूरे नहीं हुए। उसे खुद इन रूढ़ियों के सामने झुकना पड़ा। प्रकाश ऐसे आबारा और शराबी पति को वह अपना पवित्र शरीर सौंपने पर विवश हुई थी। और जो पुरुष उसकी आत्मा में समा गया था, उसे अगुली तक छूने की आज्ञा नहीं थी कि कहीं दुनिया को उस आदर्श से घृणा न हो जाये, जिसे वह शरीर और प्राण दोनों से अधिक प्यार करती है।

समाज की पूरी व्यवस्था बदले तो वह क्रान्ति है और कोई एक व्यक्ति स्वेच्छा से उसकी मान्यताओं को तोड़े तो वह अराजकता है। क्रान्ति कल्याणकारी है और अराजकता अमंगल और घृणित है।

“अच्छा बीबी, तुम करना मर्दों की बराबरी। हमने तो इतनी उन्नत व्यर्थ खोई है।” पार्वती ने तनिक खीझ कर कहा।

“पार्वती बहन, नाराज होने की जरूरत नहीं।” शीला ने विनम्र और मधुर स्वर में कहा, “जमाने-जमाने की बात है। हमने अपने जमाने के अनुसार जीवन बिताया और ससार की सेवा की। ये नई लड़कियाँ अपना समय अपने डग से बितायेंगी। किसी की उन्नत व्यर्थ नहीं जाती।”

पार्वती जो थोड़ी देर पहले इतनी प्रसन्न थी, अब उतनी ही उदास हो गई। शीला की ढाढस भी उसे सात्वना न दे सकी। यह लोग उसे झुंझोड़ कर योही विवर्त में धकेल देते, वह चकरा जाती और उसे कोई सहारा न दीखता।

पद्मा चुप बैठी थी। उसका चेहरा कठोर था। सिर्फ लेखराम पूशी से खेल रहा था। वह गुड्डी रखकर गेंद उठा लाई थी। लेखराम उसे उछाल रहा था। गेंद जितना ऊपर उठनी पूशी उतना ही खुश होती और लेखराम से फिर उछालने का आग्रह करती थी।

“दूसरे बच्चे कहां हैं ?” शीला ने पार्वी से पूछा।

“ऊपा स्कूल गई है, महेँदी ऊपर नारायण के पान होगा।”

और नारायण ने कमरे में प्रवेश किया। उसके हाथ में एक मासिक पत्रिका थी।

“आप लोगों को आधुनिक नारी दिखाऊँ।” वह आते ही बोला।

उसने एक पृष्ठ खोलकर पत्रिका फर्श पर रख दी। सब की निगाहें एक चित्र पर गड़ गईं, जिसमें एक रमणी कुतब की लाट के पास खड़ी थी। उसका चेहरा भरा हुआ गोल-मटोल था और बांहें मुड़ी थी। उसने चलाऊँ पहन रखा था। साड़ी सिर से कंधों पर ढलक गई थीं, मुख मुद्रा गम्भीर और आंखों में कोई दृढ़ संकल्प था। ठोस और बुलंद लाट के सम्मुख खड़ी थी जैसे क्षण-क्षण ऊपर उठ रही है और लाट से भी ऊँचा उठ जाना चाहती हो।

“पद्मा जीजी !”

महेँदी चिल्लाया और दौड़कर पद्मा की गोद में जा बैठा। वह नारायण के साथ ही चला था; लेकिन सीढ़ियाँ देर से उतरा।

और सब ने देखा कि चित्र की रमणी और पद्मा में विस्मयजनक साम्य है।

धुंधला आकाश

ममय बीत रहा था और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति तेजी से बदल रही थी। आठवें महीने की पच्चीस तारीख थी। अशोक दफ्तर में बैठा था, उसके सामने बहुत से अखबार पड़े थे, वह उनके सम्पादकीय पढ़ रहा था। पत्र विभिन्न थे, लेकिन उन सब के शीर्षक मिलते-जुलते थे—“कम्यूनिज्म फासिज्म की गोद में” “डिक्टेटर से गठजोड़” आदि-आदि। इन शीर्षकों के नीचे इन पत्रों के सुयोग्य सम्पादकों ने कलम के जो चमत्कार दिखाये थे, उन्हें पढ़कर अशोक मुस्कुरा रहा था, जैसे वह ‘अलिफ लैला’ की कहानियाँ अथवा ‘तोता मैन’ के किस्से पढ़ रहा हो।

म्यूनिख की संधि के नौ-दस महीने बाद एक ऐसी घटना घटित हुई, जिसकी आशा नहीं थी और जिसने सारी दुनिया को चौंका दिया। घटना ऐतिहासिक थी। रूस और जर्मनी में तटस्थ संधि हुई थी। दोनों में तय पाया था कि वे एक दूसरे पर हमला नहीं करेंगे। रूस की ओर से यह म्यूनिख की संधि का तोड़ था। फ्रांस और ब्रिटेन के प्रधान मंत्री हिटलर की जिन तोपों का मुह रूस की ओर घुमा था, वे एक बार फिर उन्हीं के सीनो पर तन गई थी। पूँजीवादी प्रेस बिलबिला उठा। वह सोवियत रूस पर फासिज्मवाद की सहायता का आरोप लगा रहा था। जनतंत्र और समानता की दोहाई देकर उसे कोस रहा था। उनका कहना था कि रूस में व्यक्तिगत स्वाधीनता का अभाव है, एक सर्वाधिकार मग्न व्यक्ति सब को भेड़ों की तरह हाक रहा है। अन्त में ट्राट्स्की और उसके साथियों के मुकदमे की हजारों बार दोहराई गई कहानी को एक बार फिर दोहरा कर पाठकों को स्टालिन की तानाशाही से अवगत किया था।

“कामरेड अशोक, इतना, खु...खुश हो रहे हो, क्या जंग की कोई सूरत प...पैदा हो गई है ?”

पराशर ने बीड़ी का कश लगाते हुए कमरे में प्रवेश किया और अशोक को मुस्कराते देख यह प्रश्न पूछा ।

वह चार-पांच महीने के बाद लाहौर आया था । बांगडा जिला में उसका एक चचेरा भाई रहता था, नन्ही को साथ लेकर वह उसके पास चला गया था । अब वह पहले से स्वस्थ था । जल-वायु के परिवर्तन से उसके सूखे गालों पर कुछ सुर्खी आ गई थी । वह पिछले तीन दिन से ठीक अखबार पढ़ने के समय आ रहा था । इस संधि से जो नया वातावरण बन गया था, वह उसे पहाड़ के स्वास्थ्यवर्धक वातावरण से भी अधिक सुखकर जान पड़ता था । सोचने का उसका अपना ढंग था । उसका खयाल था कि जर्मनी रूस की ओर से निश्चिन्त हो गया है, अब वह अंग्रेजों से अवश्य लड़ेगा । जिम युद्ध का उसे मुद्दत से इन्तजार था, वह अब अनिवार्य है दुनिया युद्ध की कल्पना मात्र से घबरा रही थी; लेकिन पराशर खुश था । इसलिए उसने मुंह से घुआ छोड़ते हुए पूछा—“कामरेड अशोक, इतना खुश हो रहे हो, क्या जंग की कोई सूरत पैदा हो गई है ?”

अशोक ने पराशर की ओर देखा और उसे अपने करीब बिठाते हुए कहा—

“जंग तो होगी, इसमें अब संदेह नहीं ।”

पराशर के होंठों पर मुस्कराहट दौड़ गई । लेकिन अशोक पहले से अधिक गम्भीर हो गया । वह पराशर के भीतर की उस कटुता को देख रहा था, जिसने इस मुस्कराहट को जन्म दिया था । पराशर ने बीड़ी का कश लगाकर घुआ ऊपर छोड़ा, तो मुस्कराहट भी हवा में बिखर गई ।

“मुझे इन लोगों पर हंसी आती है ।” अशोक ने अखबारों की ओर देखते हुए कहा, “सम्पादक बने फिरते हैं, एक भी बात अबल की नहीं करते । रूस को कोसना जैसे इनका ईमान बन गया है ।”

“इनकी बात ही छोड़िये ।” पराशर ने नाक-भौं घडाकर कहा, “ईमान शिमान कुछ न...नहीं । इनका घ...घम है पैसा । हरेक बुद्धमल

बधाऊमल चाहे वह सातवी जमात फेल हो, पैसे के जोर से अखबार न नवीस बन बँठता है। ये लोग अगर सात पुस्तक तक भी पढ़ते रहें, इतना न नही समझ पायेंगे कि सयासत किस चिडिया का नाम है। इन्हें हमरो को बुद्ध बनाने से मतलब है।" और एक तबील कश लगाकर फिर बोला, "पह बताइये जग बब तक शुरू हो जायेगी?"

"पराशर जी, जग को अब शुरू ही समझो। ताकतें तुली खडी हैं। ऐलान की देर है। कल हो जाये, चार दिन बाद हो जाये। होगी जरूर।"

"एक बार शुरू होने दो, फिर अग्रेज की बहादुरी देखेंगे और पूछेंगे कि निहत्थे हिन्दुस्तानियों पर गोली चलाना आसान है। लडो हिटलर से।"

दन दना दन। गोलियों, तोपों की आवाज मासल ला और जलियानवाला बाग का खूनी दृश्य पराशर की आँखों में उभर आया और उसके पीछे थी डायर की भयानक शकल, जिसे देख उसके भीतर प्रतिशोध और प्रतिहिंसा की आग धधक उठती है। ज्वालित डायर पर किसी भी ओर से हमला होते देख वह प्रसन्न होता था। उसे वे दिन स्मरण हो आये, जो उसने अहमदनगर में बिताये थे। यह एक विवश व्यक्ति का प्रतिशोध था।

"पिछली जग में उन्हें अमरीका ने बचाया और हम हिन्दुस्तानियों ने बचाया।"

वीडी का धुआं मरगूले बनाता हुआ ऊपर उठ रहा था।

एक हफ्ता बाद जग का खूनी बिगुल बज उठा। नवें महीने की पहली तारीख को पोलैंड पर हमला हुआ और तीसरी तारीख को इंग्लैंड और फ्रांस ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया।

देश भर में हलचल मच गई। तत्क्षण एक बहुत बड़ी शक्ति हरकत में आई। नौजवानों के दिलों में मुद्दत से जो आग मुलग रही थी, वह एकदम भडक उठी और शोले उगलने लगी। चारों तरफ "विद्रोह! विद्रोह!" की ध्वनि गूज उठी। पराशर सुबह मुह अघरे घर से निकलता और सारा दिन घूमता रहता। उसे अब नन्हीं की चिन्ता नहीं थी। कागडे से लौटते

समय वह उसे चचेरे भाई के पास छोड़ आया था। ताकि आराम से रहे। वह मित्रों से मिलता और दांत भींचकर कहता—“अंग्रेज से वेदला लेने का समय अब आया है।”

जगदीश भी पराशर से सहमत था; लेकिन उसका सोचने का ढंग दूसरा था। एक दिन नारायण और प्रह्लाद उसके पास बैठे थे कि पराशर भी आ गया। उस दिन गांधी जी का एक वयान अखबारों में प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने अपनी युद्ध सम्बन्धी नीति को स्पष्ट करते हुए कहा था—“मैं एक सत्याग्रही हूँ; इसलिए अंग्रेज की मुसीबत से लाभ नहीं उठाऊंगा।” इसी पर आलोचना हो रही थी।

“गांधी त... तो महात्मा है, वह अंग्रेज की मुसीबत से फायदा उठाना न... नहीं चाहता, न... न उठाये। पर हमें इस मौके पर चुकना नहीं चाहिये।” पराशर के स्वर में जोश भी था और क्रोध भी।

“पराशर जी, ठीक कहते हो, पर मेरी एक बात सुनो।” जगदीश बोला, “हमारे संस्कृत के नाटकों में एक पात्र सूत्रधार होता है। हर एक नाटक आरम्भ होने से पहले वह मंच पर आकर दर्शकों को बताता है कि उनके सामने किस प्रकार का नाटक खेला जायेगा। जब तक सूत्रधार यह न बताये, नाटक शुरू नहीं होता।”

नारायण और प्रह्लाद मुस्कराये; लेकिन पराशर ने घुआं ऊपर छोड़ते हुए पूछा—“इससे आपका मतलब क्या है?”

“मतलब यह है कि गांधी जी हमारे सयासी ड्रामा के सूत्रधार हैं। जब तक वे नहीं बताएंगे कि किस ढंग का ड्रामा खेलना है, आंदोलन शुरू नहीं होगा।”

कुछ देर मौन रहा। पराशर जोर-जोर से कदा लगा रहा था; लेकिन व्यर्थ। बीड़ी बुझ चुकी थी।

“यह हमारी भूल है।” वह बुझी हुई बीड़ी को परे फेंक कर बोला, “बहुत बड़ी भ... भूल। आजादी के इतने बड़े आंदोलन को एक आदमी— चाहे वह आदमी कितना ही बड़ा क्यों न... न हो—की मर्जी पर छोड़ा न... नहीं जा सकता।”

“भूल समझो या दुर्भाग्य; पर यह एक सत्य है कि जगदीश के व्यक्ति-स्वर में कहा, “राजनीति को धार्मिक रंग देने का यही परिणाम होता है कि व्यक्तियों की पूजा होने लगती है।”

“लेकिन इतिहास का रुख बदलने के लिए व्यक्तियों ही की जरूरत होती है।” नारायण बोला। उसने दरअसल खुद जगदीश की व्यक्तिवादी धारणा पर व्यंग किया था। पर इसे किसी ने नहीं समझा।

“न... नहीं, नहीं, हम व्यक्ति न नहीं चाहिए।” पराशर ने अगुली हिलाते हुए कहा, “सूत्रधार न नहीं चाहिए। हम बुद्धमल बघाऊमल न नहीं हैं। हम लडेंगे जरूर लडेंगे और हम अंग्रेज की म... मुसीबत से लाभ उठावेंगे।”

उसने एक नई बीड़ी सुलगाकर कश लगाया।

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पर विचार करने के लिए अशोक ने पार्टी के प्रमुख सदस्यों की एक मीटिंग बुलाई, जिसका स्थान गुप्त रखा गया। जगदीश इस मीटिंग में शामिल नहीं था, कांग्रेस के बाद मतभेद और भी बढ़ गये थे। किसी संगठन में रहने के बजाय उसे अपनी व्यक्तिगत राय प्रकट करना अधिक प्रिय था; इसलिए उसे पार्टी से अलग कर दिया गया था। लेखराम अभी तक जेल से बाहर था, लेकिन सरकार ने उसकी जमानत-बंदी कर दी थी। मीटिंग दो बजे रात तक चलती रही। उसमें फैसला किया गया कि गांधी जी चाहे किसी प्रकार का आंदोलन, चलायें, उसे जनक्रांति में परिवर्तित कर दिया जाये। क्रांति को सफल बनाने के लिए फौज, पुलिस और दूसरे सरकारी महकमों में जितने भी व्यक्ति घुस सकते हैं, घुस जायें ताकि उन महकमों को इस्तेमाल किया जा सके। इसके अलावा गुप्त संगठन, प्रेस और प्रचार के अन्य साधनों की ठीक-ठीक व्यवस्था की जाए।

इस मीटिंग में जो प्रोग्राम बना, दूसरे दिन उस पर अमल भी शुरू हो गया

“भी आऊ ! भी आऊ !”

रूही आवाज़ सुनकर बाहर आई; मगर उसे विश्वास नहीं था कि इखलाक बोल रहा है या मोर। पिछले चन्द महीने में उसने मोर की आवाज़ सुनकर कई बार धोखा खाया था। वह दौड़ी-दौड़ी उस कुंज में आई थी; जहाँ प्रेम-मिलन होता था। अगरचे वह इखलाक की आवाज़ से इतनी परिचित हो चुकी थी कि किंचित भिनक पाकर पहचान जाती थी; पर अब लम्बे इन्तजार ने एहसास को शिथिल कर दिया था और वह असल और नकल का भेद मूल बैठी थी। शायद इसकी जरूरत ही नहीं थी। आवाज़ तो उस कुंज में आने का बहाना मात्र थी। जिस कोमल घास पर इखलाक और वह मौन बैठे एक-दूसरे को ताकते रहते थे, जिन वृष्टों की आड़ में छिप-छिपकर सरगोशियां होती थी, जो कलियां उनके प्रेम-रहस्य को जानती थी, उन्हें देख लेना ही कुछ कम सुखप्रद नहीं था।

लेकिन आज—आज उसे धोखा नहीं हुआ। इखलाक सामने बैठा मुस्करा रहा था। उसने इस्क-पेन्ना की बेल का एक सिरा आहिस्ता से हाथ में धाम रखा था। रूही कुछ क्षण खोई-खोई सी खड़ी रही, फिर बैठ गई और एकटक उसकी ओर देखने लगी। वे काफी देर तक निश्चेष्ट और अचल आमने-सामने बैठ रहे, जैसे निष्प्राण मूर्तियां हों, जिन्हें किसी चतुर मूर्तिकार ने एक बड़े पत्थर से तराशकर आमने-सामने रख दिया हो। मनोगत भावनाओं को चेहरों पर यों झलका दिया था। जैसे वे बोलना चाहती हैं। लेकिन बोल न पाती हैं। वे इसी तरह स्तब्ध और मौन बैठे रहे—और एक दूसरे की ओर देखते रहे।

“रूही !”

आखिर इखलाक बोला।

जिस प्रकार 'सुप्त सुन्दरता' कहानी में राजकुमार के पुकारते ही सोई हुई राजकुमारी जाग उठी थी, महल में जीवन लौट आया था और बाग पक्षियों के मधुर स्वर से मुखरित हो उठा था, उसी प्रकार इखलाक की आवाज़ सुनते ही रूही ने लम्बी पलकों को ऊपर उठाया और बड़ी-बड़ी सुन्दर आंखों को पूर्ण रूप से खोल दिया। इखलाक इन आंखों की अथाह गहराइयों में डूबने-उभरने लगा।

“इतने दिनों क्यों नहीं आये ? मैं तो देखने को तरस गई ।”

रूही की आँखों में शिक्वा था और इम शिक्वे ने उन्हें और भी सुदर बना दिया था ।

‘अब आ गया हूँ । जी भरकर देख लो ।’ इखलाक खचल हो उठा ।

फिर भारी मौन ।

रूही इखलाक के चौड़े चक्के सीने की ओर मुस्युराते हुए होठों को देख रही थी । और अपनी आत्मा के एक रिक्त स्थान को भर रही थी ।

लेकिन इखलाक कुछ और ही सोच रहा था । उसे चचा के यह शब्द याद आ रहे थे—‘मैं रूही की जिन्दगी बरबाद नहीं होने दूँगा ।’ जब से ये शब्द सुने थे, उसने रूही से मिलना छोड़ दिया था । वह उसके हजार बुलाने पर भी नहीं आया था और उसे मुला देने का प्रयत्न करता रहा था । आज वह चार-साढ़े चार महीने बाद आया था और रूही की सुदर आँखों, गुलाब की पल्लडियों से नाजूक होठों और मस्त जवानी को देख वह भूल सुधार कर रहा था—‘क्या दिल से निकाला जा सकता है ? निकालना मुमकिन है ?’

‘तुम कितने सगदिल हो, इतना बुलाने पर भी नहीं आये तुम्हारी शान में फर्क आता था तो मुझे बुला लिया होता ।’ रूही बोल रही थी और गुलाब की पल्लडियाँ हिल रही थीं । इखलाक चाहता था कि वह इसी तरह गिकायत करती रहे और वे होंठ योंही हिलते रहे ।

अगर मैं बुलाता तो क्या तुम वाकई आ जाती ?’

“आजमा लिया होता ।’

‘अब चलती हो ?’

“हाँ, चलो ।’

रूही एकदम उठ खड़ी हुई । इखलाक का अब मालूम हुआ कि उसके दिन कितनी व्यग्रता में बीते हैं । उसने रूही का हाथ पकड़कर उसे फिर बिठा लिया और प्यार भरी दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा—

“रूही ! अब मैं खुद आ गया हूँ और तुम्हें छोड़कर कहीं न जाऊंगा।”

“सच ?”

“हां, मैंने फैसला किया है कि तुम्हें हासिल करने के लिए चचा जान की बात मानूंगा।”

रूही ने इखलाक की ओर ध्यान से देखा, सिर से पांव तक एक नजर डाली, फिर सहमी हुई-सी पीछे हट गई, जैसे उसके सामने बैठा हुआ इखलाक, वह इखलाक न हो, जिसे वह बचपन से जानती थी और प्यार करती थी, जिसे वह अपने दूसरे चचेरे, मुमेरे और फुफेरे भाइयों से अलग समझती थी। उनमें से एक रशीद था। वह भी उसका चचेरा भाई था। शकल, कद और डील-डौल में इखलाक से मिलता-जुलता था; लेकिन हर बात में दिखावा, हर बात में शेखी। वह अंग्रेज सरकार का वफादार फौजी अफसर था। वह रूही से प्रेम करता था और बाप उससे ब्याह देने को भी तैयार था। लेकिन रूही को उससे नफरत थी। जो मनुष्य परम्परा का दास है; गुलामी जिसके रग-रग में समा चुकी है, जो ऐश्वर्य की ओर पद की शेखी बघारता है, औरत उसे प्रेम क्या करे? उसका प्रेम झूठा है, विडम्बना मात्र है। रूही इखलाक से नहीं, वह उसके स्वतन्त्र विचारों से, उसकी विद्रोह-भावना से प्रेम करती थी। इसी गुण ने उसे दूसरों से विशेष और श्रेष्ठ बना दिया था। उसे यह विश्वास हो चुका था कि इखलाक जो अपने निश्चय पर दृढ़ और अचल रह सकता है, उसका प्रेम भी दृढ़ और अचल है।

इखलाक का फैसला सुनकर उसे आघात-सा लगा, जैसे कोई अमूल्य वस्तु उससे छिन गई हो। वह जाने क्या सोचती हुई निचला होठ चबा रही थी।

“तुम्हारे लिए तो यह खुशखबरी थी रूही ! और तुम उदास हो गईं !”

“खुशखबरी !” रूही ने दोहराया और इखलाक की आंखों में आंखें डालकर पूछा, “क्या तुम वाकई यह फैसला कर चुके हो ?”

सामने एक तितली नृत्य कर रही थी, एक बूटे से उठकर दूसरे पर जा रही थी। इखलाक उसके रंगीन पंखों को देखते हुए बोला—

“हां !”

एक क्षण मौन का बीता। फिर रुही बोली, “और तुम्हारा सयासी अकीदा ?”

तितली एक फूल पर बैठ गई। इखलाक ने रुही पर निगाह डाली। उसकी आंखों में बहुत बड़ा प्रश्न-सूचक चिह्न था। इखलाक को वस्तुस्थिति का ज्ञान हुआ, उसका चेहरा ठोस और मजिदा हो गया और वह दूर क्षितिज की ओर देखते हुए बोला—

“रुही, यह मेरा नहीं पार्टी का फैसला है कि फौज में भरती हो जाऊं।”

तितली फिर उड़ने लगी। अब रुही भी उसे देख रही थी और मुस्करा रही थी।

औरत को जब किसी मर्द से प्रेम होता है तो वह उसके विचारों से भी प्रेम करती है अर्थात् वह उन विचारों के कारण ही उससे प्रेम करती है।

पिता का पत्र

चीन की एक कहावत है कि पेड़ आराम से सोना चाहता है; लेकिन हवा उसे चैन नहीं लेने देती। इसके सर्वथा विपरीत लेखराम चाहता था कि दिन-रात सरगर्मी से काम करे, हर वक्त मारा-मारा फिरे; लेकिन सरकार चाहती थी कि वह जेल जाये और वहां आराम करे। इसलिए उसने पहला काम यह किया कि जबान-बंदी करके लेखराम के कार्य-क्षेत्र को सीमित कर दिया। इस बीच में उसने एक पुस्तक "हमारा स्वाधीनता-संग्राम" लिखी। इस पुस्तक को प्रकाशित हुए एक महीना भी नहीं हो पाया था कि सशस्त्र पुलिस आ धमकी। इस बार वह सिर्फ तलाशी लेने नहीं आई थी, लेखराम का वारन्ट गिरफ्तारी भी साथ लाई थी। सरकार ने पुस्तक को जब्त कर लिया था और लेखक, प्रकाशक और मुद्रक पर मुकदमा चलाने का फैसला किया था। जब्त का कारण बताते हुए लिखा था—

“इस किताब का मंशा बादशाह सलामत की प्रजा को वर्गों में बांट कर उनमें नफरत फैलाना है।”

पुस्तक एक स्थानीय प्रकाशक ने लिखवाई थी। लेकिन वह अनुभव से जानता था कि इस बारे में सरकार का रवैया क्या होगा। इसलिए पुस्तक पर अपना नाम नहीं दिया था, लेखक और प्रकाशक लेखराम आप ही थे। मुद्रक इसलिए कानून की गिरफ्त में नहीं आता था कि मुकदमा प्रान्तीय सरकार ने चलाया था और पुस्तक पंजाब से बाहर मेरठ में छपी थी। पंजाब का प्रेम उगे छापते हुए डरता था और यू० पी० के कांग्रेस मंत्रि-मण्डल ने प्रेम की पाबंदियां कुछ ढीली कर दी थी।

दो महीने मुकदमा चलता रहा। लेखराम ने अदालत में बयान देते हुए कहा—

“मुझ पर यह आरोप लगाना कि मैंने लोगो को वगों में बाटा है और नपरत फँलाई है, झूठ है। यह आरोप वर्तमान सामाजिक व्यवस्था पर और खुद सरकार पर लागू होता है, जिसने मनुष्य को लुटेरो और लूटने वालो में बाट रखा है। मेरा कसूर सिर्फ यह है कि मैं किसी के घर में सँघ लगी देखकर चुप नहीं रह सका? ‘चोर, चोर’ बह कर घर वालो को चौकन्ता कर दिया।”

‘चोर को यह बात अवश्य बुरी लगेगी।’ विनोदप्रिय मैजिस्ट्रेट कलात्मक ढंग से मुस्कराया और लेखराम को लेखक और प्रकाशक के तौर पर दो अलग-अलग जुर्मों में छ-छ महीने कैद की सजा सुना दी और वारंट दोहरा बना दिया।

दुनिया के रगमच पर बड़ी-बड़ी घटनायें घट रही थी। उनके मुकाबिले में यह छोटा-सा नाटक कोई महत्त्व नहीं रखता था। पोलैंड पर जर्मनी का वज्रा हो चुका था और सर्दियों शुरू होते ही खुदकी की लड़ाई बढ़ हो गई और हवाई लड़ाई होने लगी। सैकड़ों बमबार बलिन से उड़कर इंग्लैंड पर आते और टनों बम गिराकर लौट जाते थे। इन बमों के खोफनाक घमाको से भव्य और आलीशान इमारतें क्षण भर में भूमि पर आ गिरती थी और कितने ही शातिप्रिय और निरपराध प्राणी मारे जाते थे। मर्द, औरतें और बच्चे मसखे के नीचे दबकर कट-कटकर और सिसक-सिसक कर मर रहे थे। यद्यपि यह सब कुछ सात समुद्र पार हो रहा था, लेकिन इस बमबारी की कर्हण-कहानियाँ अखबारों में छपती थी, रेडियो पर सुनाई जाती थी और एक-दूसरे की जबानी जनसाधारण तक पहुँचती थी। गनी अकेला बैठा सोचा करता और सोचते-सोचते जाने-अनजाने यह शब्द उसके मुह से निकल जाते—

“घम-घमा, घम “घमा घम।”

अशोक ने उसे कई बार बड़बड़ाते हुए सुना; लेकिन समझ नहीं पाया कि उसका आशय क्या है?

पिता का पत्र

चीन की एक कहावत है कि पेड़ आराम से सोना चाहता है; लेकिन हवा उसे चैन नहीं लेने देती। इसके सर्वथा विपरीत लेखराम चाहता था कि दिन-रात मरगर्मी से काम करे, हर वक्त मारा-मारा फिरे; लेकिन सरकार चाहती थी कि वह जेल जाये और वहां आराम करे। इसलिए उसने पहला काम यह किया कि जवान-बंदी करके लेखराम के कार्य-क्षेत्र को सीमित कर दिया। इस बीच में उसने एक पुस्तक "हमारा स्वाधीनता-संग्राम" लिखी। इस पुस्तक को प्रकाशित हुए एक महीना भी नहीं हो पाया था कि सशस्त्र पुलिस आ घमकी। इस बार वह सिर्फ तलाशी लेने नहीं आई थी, लेखराम का वारंट गिरफ्तारी भी साथ लाई थी। सरकार ने पुस्तक को जब्त कर लिया था और लेखक, प्रकाशक और मुद्रक पर मुकदमा चलाने का फैसला किया था। जब्ती का कारण बताते हुए लिखा था—

"इस किताब का मंशा बादशाह सलामत की प्रजा को बगों में बांट कर उनमें नफरत फैलाना है।"

पुस्तक एक स्थानीय प्रकाशक ने लिखवाई थी। लेकिन वह अनुभव से जानता था कि इस बारे में सरकार का रवैया क्या होगा। इसलिए पुस्तक पर अपना नाम नहीं दिया था, लेखक और प्रकाशक लेखराम आप ही था। मुद्रक इसलिए कानून की गिरफ्त में नहीं आता था कि मुकदमा प्रान्तीय सरकार ने चलाया था और पुस्तक पंजाब से बाहर मेरठ में छपी थी। पंजाब का प्रेम उसे छापते हुए डरता था और यू० पी० के कांग्रेस मंत्रि-मंडल ने प्रेम की पावदियां कुछ ढीली कर दी थी।

कहानी, जो सयासत की नकाब ओढकर शरीफजादी बनी घूमती है।”

इस दिलचस्प कहानी को जाने कितने लोगो ने मजे लेकर पढा होगा, लेकिन जिन लोगो के लिए यह लिखी गई थी, उन्होने महज बकवास समझ कर इसकी उपेक्षा की। वे सम्पादक की कौवा-वृत्ति से परिचित थे, उसका स्वभाव ही गिलाज्जत में चोच मारकर प्रसन्न होना था। लेकिन पद्मा अपने बारे में यह कहानी पढकर चकित और स्तब्ध रह गई। वह इसे बकवास समझकर टालने के बजाय हकीकत को समझ लेना चाहती थी। शीला से अतीत की कहानी सुनी थी, उसमें कुछ कडिया टूटती थी। पद्मा को यह बात कौचती रही थी। समय ने इसे भुला दिया था, लेकिन अखबार पढकर वह यही बात फिर से सोचने लगी। कितनी देर अखबार हाथ में लिए वह सोचती रही और कितनी ही छोटी-बड़ी घटनायें मस्तिष्क में उभरती रही।

“किसे एक्सपोज किया जा रहा है?”

‘आप का।’

‘मरा तो कोई राज ही नहीं?’

“जब तक मालूम न हो, लोग ऐसा ही कहते हैं।”

चाकई पद्मा को भी मालूम नहीं था। लेकिन अब वह मालूम करके ही दम लेगी।

दिसम्बर की सदं रात थी। शीला अपने कमरे में अकेली बंठी आग ताप रही थी और मन में अतीत की घटनाओं को दोहरा रही थी। उस स्वर्गीय पिता की याद आ रही थी मा याद आ रही थी - भाई याद आ रहा था—और उनसे सम्बन्धित कितनी ही बातें याद आ रही थी - कि पद्मा ने कमरे में प्रवेश किया और आते ही बोली, “दीदी, आपने जो बात मुझसे छिपा रखी थी, वह आज प्रकट हो गई। मैं इस बारे में सच भूँस सब जान लेना चाहती हूँ।

शीला ने पद्मा की ओर देखा। वह दुख और अवसाद की मूर्ति दीख पडती थी। शीला चुप रही और सोचने लगी कि अगर मैं यह बात पद्मा को पहले ही बता देती तो वह कदाचित्त इतनी परेशान न होती। उसे

“यह घम घमा घम क्या बला है ?” उसने गनी से पूछा ।

“वम !” गनी ने मुंह फुलाकर उत्तर दिया ।

“वम !” अशोक ने दोहराया ।

“जर्मन के हवाई जहाज धूं-धूं..... उड़कर आते हैं और घम घमा घम

जब “धूं-धूं” और “घम घमा घम” के शब्द गनी के मुंह से निकले तो उसकी आंखें उल्लास से चमक उठी थीं और उसके दोनों हाथ यों हिल रहे थे, जैसे वह खुद गोले फेंक रहा हो ।

अशोक के मस्तिष्क में चित्र उभर आया — हिन्दुस्तान का चित्र, जिसमें हजारों लाखों गनी और पराशर इस जर्मन बमबारी से खुश हो रहे थे । शायद वे सोचते थे कि यह बम चंचिल और चम्बरलेन के सीने पर और बलाईव और हेस्टिंग्स की कमरों पर गिर रहे हैं और इंग्लैंड के उन बैंकों को तबाह और वरबाद कर रहे हैं, जिनमें हिन्दुस्तानियों के खून-पसीने की कमाई का पैसा भरा पड़ा है ।

परिस्थिति तेजी से बदल रही थी, साम्राज्य के प्रति घृणा बढ़ रही थी और बड़ी-बड़ी घटनाओं के घटने की आशा थी । लोग बड़ी-बड़ी घटनाओं के सम्मुख भी जिदगी की छोटी-छोटी आवश्यक बातें भूल नहीं जाते । पद्मा ने बी० ए० की परीक्षा पास कर ली थी और राजेन्द्र से उसके ब्याह की बात पक्की हो चुकी थी । शीला चाहती थी कि उनका ब्याह शीघ्र सम्पन्न हो जाये ताकि वह इस काम से निपट कर सारा ध्यान सघर्ष को सफल बनाने में लगा सके । इसके अतिरिक्त उसे एक विचार और कौब रहा था । उसने जो रहस्य अपने सीने में छिपा रखा था, उसे अब वह पद्मा को बताना चाहती थी । कई दिन से बताने का बराबर निश्चय करती और फिर कल पर स्थगित कर देती । सहसा उसके बिना बताये ही इस रहस्य का उद्घाटन हो गया ।

शिवदयाल ने, जिसे अंग्रेज औरत ने अपमानित किया था, जिसका काम ही ब्लैक-मेलिंग करना, गंदी और सनसनीखेज कहानियां छापना था, अपने साप्ताहिक पत्र में लिखा—“एक वेदया की लड़की की दिलचस्प

कहानी, जो सयासत की नकाब ओढ़कर शरीफजादी बनो धूमती है।”

इस दिलचस्प कहानी को जाने कितने लोगों ने मजे लेकर पढ़ा होगा; लेकिन जिन लोगों के लिए यह लिखी गई थी, उन्होंने महज बकवास समझ कर इसकी उपेक्षा की। वे सम्पादक को कौवा-वृत्ति से परिचित थे, उसका स्वभाव ही गिलाजत में चोच मारकर प्रसन्न होना था। लेकिन पद्मा अपने बारे में यह कहानी पढ़कर चकित और स्तब्ध रह गई। वह इसे बकवास समझकर टालने के बजाय हकीकत को समझ लेना चाहती थी। शीला से अतीत की कहानी सुनी थी, उसमें कुछ कड़ियां टूटती थी। पद्मा को यह बात कौबती रही थी। समय ने इसे भुला दिया था, लेकिन अखबार पढ़कर वह यही बात फिर से सोचने लगी। कितनी देर अखबार हाथ में लिए वह सोचती रही और कितनी ही छोटी-बड़ी घटनायें मस्तिष्क में उभरती रही।

“किससे एक्सपोज किया जा रहा है?”

‘आप का।’

“मरा तो कोई राज ही नहीं?”

“जब तक मालूम न हो, लोग ऐसा ही कहते हैं।”

चाकई पद्मा को भी मालूम नहीं था। लेकिन अब वह मालूम करके ही दम लेगी।

दिसम्बर की सड़ रात थी। शीला अपने कमरे में अकेली बैठी आग ताप रही थी और मन में अतीत की घटनाओं को दोहरा रही थी। उस स्वर्गीय विला की याद आ रही थी - मा याद आ रही थी - भाई याद आ रहा था—और उनसे सम्बन्धित कितनी ही बातें याद आ रही थी—कि पद्मा ने कमरे में प्रवेश किया और आते ही बोली, “दीदी, आपने जो बात मुझमें छिपा रखी थी, वह आज प्रकट हो गई। मैं इस बारे में सच-भूट सब जान लेना चाहती हूँ।”

शीला ने पद्मा की ओर देखा। वह दुःख और अवसाद की मूर्ति दीख पड़ती थी। शीला चुप रही और सोचने लगी कि अगर मैं यह बात पद्मा को पहले ही बता देती तो वह कदाचित्त इतनी परेशान न होती। उसे

पहली बार मालूम हुआ कि लोग किंचित और निरोह घटनाओं को भी भयानक बनाकर पेश कर सकते हैं। शीला पद्मा को बैठने का संकेत करके खुद दूसरे कमरे में गई। लौटकर पिता का अन्तिम पत्र पद्मा के हाथ में थमा दिया। वह उसे खोलकर पढ़ने लगी।

“प्यारी बेटी,

मेरे मन पर जो बात बोझ बनती रही, उसे मैं मरने से पहले तुम्हें बता देना जरूरी समझता हूँ। बात यह है कि पद्मा कोई पराई लड़की नहीं, तुम्हारी अपनी छोटी बहन है। उसकी माँ एक निर्धन परिवार में पैदा हुई। सत्रह-अठारह साल की उम्र में उसका ब्याह पैसे के लालच में मेरे एक सम्बन्धी से कर दिया गया। वह बड़ी उम्र का दुर्बल व्यक्ति था और ब्याह के दो साल बाद मर गया। बीमार दरअसल वह पहले ही रहता था। पद्मा की मा लीलावती सुन्दर और स्वस्थ थी, अंग-अंग में यौवन का रस था। उसे देख मैं सोचता कि उसका ब्याह इस बूढ़ और रोगी व्यक्ति से क्यों हुआ? एक दिन समय से यह बात मैंने लीला से कह दी। सुनते ही आंखों में आंसू उमड़ आए। बेटी! वह आंसू नहीं, उसकी हसरती और अरमानों का खून था, जिसने मेरे मन को द्रवित कर दिया और फिर हममें अक्सर दुख-सुख की बातें होने लगीं।

उन दिनों तुम्हारी माँ मर चुकी थीं। जिदगी मेरे लिए बोझल हो रही थी। मैं बूढ़ा भी नहीं था, लेकिन समाज में अपनी शान बनाये रखने के लिए दूसरा ब्याह करने से इनकार कर दिया था।

पति की मृत्यु के उपरांत लीला फिर माता-पिता के घर चली गई। पति की सम्पत्ति पर निकट-सम्बन्धियों ने अधिकार जमा लिया और उसके पास नकद पैसा कुछ नहीं था। वह खाली हाथ माता-पिता के घर चली आई, जिनका अपना गुजारा ही मुश्किल से चलता था। विधवा जवान बेटी को कैसे सम्भाले। लेकिन थोड़े ही दिनों बाद जब मैंने वहाँ आना-जाना शुरू किया तो लीला उन्हें बोझ महसूस होने के बजाय सहारा मालूम होने लगी क्योंकि मुझसे उन्हें आर्थिक सहायता मिल जाती थी। हम घंटों बड़े सुख-दुख की बातें करते। हमारा यह मेल-जोल उन्हें किंचित न अघरता।

अबरा तो उस समय जब पद्मा लीला के पेट में सात महीने की हो गई । उन्हें अपनी बदनामी का डर था । विधवा लड़की बच्चा जनेगी !

मैंने उन्हें बदनामी से बचने का उपाय बताया । वे लीला को हरिद्वार ले गये । मैं पहले ही वहाँ मौजूद था और उनके रहन-सहन की सुध्ववस्था कर दी थी । दस-पन्द्रह दिन वहाँ रहकर माता-पिता गांव लौट आए और यह प्रसिद्ध कर दिया कि लीला गंगा में स्नान करते समय डूब गई है । वह चार महीने हरिद्वार में ही रही और हमारा वफादार बूढ़ा नौकर दयाराम उसकी देखभाल करता रहा । इस बीच में पद्मा का जन्म हुआ और वह दो महीने की हो गई । हरिद्वार से लौटकर वह हमारे शहर के उस मुहल्ले में, जहाँ हम पद्मा को देखने जाया करते थे, रहने लगी ।

कुछ दिन बाद पद्मा बीमार रहकर मर गई और नौकर उसे दफनाने के लिए ले गया । दरअसल वह मरी नहीं थी । तुम्हें याद होगा एक दिन सैर से लौटते समय मैं एक मन्ही लड़की को घर लाया और कहा कि मुझे वह नहर के किनारे पड़ी मिली है । वह पद्मा थी और हमने उसे लीला को पालने के लिए दे दिया था । तुम सोचोगी कि जब वह उसे पहले ही पाल रही थी तो फिर यह हेर-फेर करने की क्या जरूरत थी ? इसके दो कारण थे । एक मुझे लीला के पास आने-जाने का सहज बहाना मिल गया । लोग मुझे वहाँ देखकर कानाफूसी नहीं कर सकते थे । दूसरे, लोगों को लीला के बारे में संदेह करने की गुंजायश न रही । सबको मालूम था कि पद्मा की परवरिश के लिए मैं उसे सौ रुपये महीना देता हूँ, इससे मेरी उदारता और दानशीलता की घूम मच गई । लोग कहते थे कि मैं एक अनाथ कन्या की परवरिश पर इतना खर्च करता हूँ और उसे अपनी बेटी के समान समझता हूँ ।

इसके बाद जो हुआ, वह तुम जानती हो । अब शायद तुम यह सोचो कि अगर मैं तुम्हें यह बात न बताता तो क्या हानि थी । हानि जो हो सकती है वह आगे चलकर तुम्हें खुद मालूम हो जायेगी । आखिर कुछ लोगों को यह भेद मालूम है । मेरे जीवन में वह इसलिए चुप हो रहे कि उन्हें मुझसे लाभ पहुंचता था । लेकिन मैं जानता हूँ कि मेरी मृत्यु के

पश्चात् उनके पेट में घात नहीं पचेगी। फिर दूसरों की जवानी तुम यह कहानी सुनोगी। हो सकता है वे इसे तोड़-मरोड़कर और बढ़ा-चड़ाकर सुनाएं, उम समय तुम मुझसे और पद्मा से नफरत कर सकती हो। मुझे अपने से नफरत की तो कुछ परवा नहीं, लेकिन पद्मा की चिंता है। उमका जीवन कटु और नीरम हो जाने की आशंका है। अब तुमने खुद पिता से यह कहानी सुन ली है। उसके मन का बोझ उतर गया है और वह आशा करता है कि तुम अगर उसे पापी समझती हो तो भी घेटी के नाते क्षमा कर दोगी, और छोटी बहन के भविष्य का ध्यान रखोगी।”

पिता की मृत्यु के साल, डेढ़ साल बाद शीला अपने चचा से मिलने में गई तो पड़ोस की एक बुढ़िया ने उसके पिता के गुण वर्णन करते हुए पद्मा की मां का भी उल्लेख किया और थोड़े से हेर-फेर के साथ यह कहानी कह सुनाई। अब वही कहानी अखबार में छपी थी और उसमें पद्मा की मां को विधवा की जगह वेश्या लिखा था। दुनिया का मुंह कौन बन्द कर सकता है ?

पद्मा पत्र पढ़कर दो-तीन मिनट चुप बैठी रही। फिर उसने शीला की ओर देखा। उसकी आंखों में दुःख या अवसाद नहीं था, गम्भीरता और निश्चय था। बोली—“क्या यह उन्हें भी पढ़ा दिया है ?”

मतलब राजेन्द्र से था। शीला ने दहकते कोयलों से भरी हुई अंगीठी को दोनों हाथों से हिलाते हुए कहा—“नहीं।”

पद्मा ने खत जेब में रख लिया। सुबह जब राजेन्द्र मिलने आया तो वह उसे अलग ले जाकर बोली—

“मैं तुमसे एक बात पूछना चाहती हूँ।”

“क्या ?” स्वर के तीखेपन ने राजेन्द्र को चौंका दिया।

“अखबार में मेरी जो कहानी छपी है, वह पढ़ी ?”

“हां, पढ़ी।”

“तुम उसे सच समझते हो ?”

“नहीं, झूठ।”

“अगर वह सच हो ?”

“जब मैं जानता हूँ कि वह सच नहीं हो सकती तो ‘अगर’ का सवाल ही पैदा नहीं होता।”

“नहीं, तुम नहीं जानते। वह सच है।”

पद्मा ने कहा और खत जेब से निकालकर राजेन्द्र को दे दिया।

जिस कमरे में बैठे थे, उसमें लीडरी और शहीदों के चित्रों के साथ सुरेन्द्र का चित्र भी लगा हुआ था। पद्मा उसकी ओर देख रही थी और उसे वह दिन याद आ रहा था, जब वह उसे ‘भाई’ कहकर और उन्मत्त होकर नाच उठी थी। “हाँ, वह मेरा भाई है”। पद्मा ने अपने आप में दोहराया और उसका हृदय स्नेह से भर गया। सुरेन्द्र के होठ अब भी हिल रहे थे, लेकिन वह जो बात वह रहा था, वह उस दिन से कुछ भिन्न थी। इसका कारण शायद यह हो कि उस दिन से पद्मा भिन्न थी, बहुत कुछ बदल चुकी थी। वह भाई को कहते हुए सुन रही थी—“जिस जालिम हाथ ने मेरी हत्या की है, वही वर्तमान सामाजिक व्यवस्था और उसकी बुराइयों के लिए जिम्मेदार है।”

पद्मा चित्र की ओर देख रही थी और इन शब्दों पर विचार कर रही थी। राजेन्द्र ने खत पढ़कर बिना कुछ कहे उसे लौटा दिया और वह भी चित्र की ओर देखने लगा। लेकिन पद्मा उसे सम्बोधित करते हुए बोली—

“मैं तुमसे पूछना चाहती हूँ।”

“क्या ?”

‘यही’ वह कहते-कहते रुक गई, एक क्षण चुप रही, साहस करके फिर बोली—“क्या तुम अब भी मुझे उसी तरह चाहते हो, जैसे यह पत्र पढ़ने से पहले चाहते थे ?”

“पद्मा यह भी कोई पूछने की बात है।” राजेन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा, “अगर भौरे को कह दिया जाए कि तुम जिस कमल को चाहते हो, वह कीचड़ से उत्पन्न हुआ है, तो उसके प्यार में कोई अन्तर नहीं आएगा। वह फूल को चाहता है, कीचड़ से उसे कोई सरोकार नहीं।”

“मजाक न करो।” पद्मा ने तीखे स्वर में कहा, “इस प्रकार के

कमजोर और बीमार आदमी से करने पर मजबूर किया। विधवा हो जाने पर दोबारा शादी क्यों नहीं कर दी? उन्हें हरिद्वार क्यों जाना पडा? और पिता ने सचाई को छिपाने की क्यों कोशिश की? जिस स्त्री से वे प्रेम करते थे, उसे सीधे तौर पर घर में क्यों नहीं रखा? इन सब बातों के लिए कौन जिम्मेदार है? नाना, मा, पिता? उनमें से कोई भी नहीं। वे सब निर्दोष हैं.. ”

राजेन्द्र आवेश में भरकर कह रहा था कि बाहर किसी की आहूट सुनाई दी। शीला को दरवाजे पर ठिठकते देख राजेन्द्र ने कहा—

“आजाइए ना भीतर।”

“मेरे आने से तुम्हारी बातों में हर्ज तो न होगा?” वह बोली।

“नहीं, नहीं, आप आइए।” पद्मा बोली और थोड़ी देर रुककर फिर कहा, “अच्छा हुआ कि आप आ गईं, वरना हम आते और आप से कहते कि हमारे ब्याह की तिथि निश्चित कर दीजिए।”

स्त्री और पुरुष

नववर्ष अर्थात् सन् 1940 के पहले महीने की छब्बीस तारीख को पद्मा और राजेन्द्र का ब्याह हुआ। सीधी-सादी रसम थी। दुल्हा-दुल्हन अदालत के कमरे में खड़े थे। मित्रों की उपस्थिति में उनके नाम सिविल-मैरेज रजिस्टर में लिखे गए और दोनों से उसपर हस्ताक्षर टाककर अनुमति प्रदान की। मित्रों और राजनैतिक कार्यकर्ताओं ने नए जोड़े को बधाई अथवा आशीर्वाद दिया। कुछ लोग अपने सामर्थ्य और रुचि के अनुसार उपहार भी लाये थे। नारायण जो उपहार लाया था, वह उसके स्वभाव और सुगन्धि का सूचक था। उस पर स्पष्ट अक्षरों में लिखा हुआ था—

“सुगन्ध और मुस्कराहटें।”

विवाह का वास्तविक उद्देश्य वाकई जीवन को सुगन्ध और मुस्कराहटों से भरना होता है। नारायण ताजा और नव-विकसित कलियों की जवानी दुल्हा-दुल्हन के लिए यही संदेश लाया था। पद्मा इन कलियों को देख मुस्कुरा उठी। इस मुस्कुराहट में वह सुगन्ध निहित थी, जिसके कारण स्त्री पुरुष के मन में बास करती है।

“तुम्हें भी कभी सुगन्ध और मुस्कुराहटें नसीब होंगी या बस पतझड़ ही बीतेगी ?”

राजेन्द्र ने मजाक किया।

“पतझड़ तो खैर किसे पसंद है; लेकिन बसंत आने की भी कोई आशा नहीं।” नारायण विनोदभाव से अपनी बात कहना चाहता था, लेकिन

कहने के बाद उसे खुद यो महसूस हुआ कि उसने अपने अभाव का शिकवा किया है क्योंकि राजेन्द्र और दूसरे साथी उसकी ओर हमदर्दी से देख रहे हैं।

“निराश क्यों होते हो, सुन्दरी से सिफारिश की जा सकती है।”

बूढा मिह ने कहा। उमिला को अब सब सुन्दरी कहते थे।

“उमिला भी धायद मुझे पसद न करे। औरत को पसद का अधिकार तो अब मिलना ही चाहिए।”

“मिलना चाहिए से तुम्हारा क्या मतलब है?” पद्मा तुनककर बोली, “ऐसे देने वाल थे तो अब तक क्यों न दिया। अधिकार लिये जाते हैं, दिये नहीं जाते।”

“माफी चाहता हूँ—औरत अब यह अधिकार लेगी। अब खुश हो?”

“सिर्फ पद्मा और सुन्दरी ही तो नहीं, ससार में और भी बहुत सी लडकियाँ हैं।” गोपाल बोला। उसने बात बड़ी देर से मुह में घूँक के सदृश रोक रखी थी।

‘हां, लडकियों की तो कमी नहीं। दुनिया भरी पडी है, पर अपनी-अपनी पहुँच होती है।’

“मैं एक बात पूछता हूँ कि हम सिर्फ हिन्दुस्तानी लडकियों को ही पसद करते हैं, चीनी, जापानी अथवा अमरीकी लडकियों को क्यों पसद नहीं करते?” प्रह्लाद ने अंतर्राष्ट्रीय प्रश्न पूछा।

‘फिर वही नारामण वाली बात। पसद कभी पहुँच से बाहर नहीं हो सकती।’ अशोक जो अब तब पीछे सडा दूसरो की बातें गुन रहा था, एक कदम आगे बढ़कर बोला—“हम हिन्दुस्तान में रहते हैं और हिन्दुस्तानी औरतों को पसद करते हैं, बल्कि यो कहिये कि पंजाब में रहते हैं और पंजाबी लडकियों को पसद करते हैं। सिविल जो गोग गोग हों भागे हैं, उनके यहाँ अंग्रेज और फ्रांसीसी औरतें भी हैं। बीड़े यिनों में अब इन्वार्ड जहाज आम चलेंगे और उसकी रगतार भी तेज होगी, एक दिन तो मुझे देश में आना-जाना इतना ही गहरा होगा, जितना कि हम माय का मुलतम या दिल्ली जाना है। उस माय अंतर्राष्ट्रीय विचार का भाग लेंगे।”

जाति-भेद मिट जायेगा। रंग और नसल का तास्सुब नहीं रहेगा। अफ्रीका के हवशी और योरुप की सफेद औरत के मेल से जो संतान उत्पन्न होगी, उससे मानव-आकृति में नए रंग-रूप और नए अंग-विधान भी रचना होगी। जापानियों के कद लंबे हो जायेंगे और चीनियों की नाक चपटी नहीं रहेगी। सारी दुनिया एक परिवार दिखाई देगी। प्रत्येक मनुष्य को प्रत्येक देश में रहने का अधिकार प्राप्त होगा और वह वहाँ के जनतन्त्र में पुराने नागरिक की तरह वोट दे सकेगा। गोरे काले का भेद मिट जायेगा।”

सब लोग अशोक की ओर देख रहे थे। एक महान् और विराट कल्पना उसकी आंखों में साकार हो उठी थी। वे मौन थे और इस कल्पना का आनन्द ले रहे थे कि मदन ऊंची आवाज और पूरे जोश के साथ बोल उठा—

“हमने तो प्रण किया है कि सिर्फ आजादी की दुल्हन से शादी करेंगे।”

“जिंदाबाद ! जन्म के इनकलाबी ऐसा ही करते हैं।”

नारायण ने कहा और एक कहकहा बुलन्द हुआ। मदन भी हँस रहा था। वह इस प्रकार की बातों का आदी हो चुका था और अब वह व्यंग की भी अपनी प्रशंसा समझकर खुश होता था।

फिर सादा और संक्षिप्त दावत की व्यवस्था थी। भोजन के दौरान में भी दिल्लगी जारी रही। नारायण आज मामूल से ज्यादा बातें कर रहा था और उसके कहकहे सबको सुनाई दे रहे थे। इस उत्सव में दूल्हा-दुल्हन के बाद शायद शीला प्रसन्न थी, क्योंकि वहन का विवाह उसकी इच्छा के अनुसार हुआ था लेकिन वह चुप थी। खुशी के इस शुभ अवसर पर भी उसकी गम्भीर मुद्रा में कोई अंतर नहीं आया था। वह एक सफेद साड़ी पहने मेहमानों के खिलाने-पिलाने की व्यवस्था कर रही थी। लेकिन नारायण की बातें सुनकर और उसे कहकहे लगाते देखकर ऐसा लगता था, जैसे वह शीला और दूल्हा-दुल्हन से भी अधिक प्रसन्न हो। अशोक उसे ध्यान से देख रहा था।

भोजन के उपरांत लोग अपने-अपने घरों की चले । नारायण भी शीला के मकान से निकलकर दफ्तर की ओर चल पड़ा । उसका कदम जल्दी-जल्दी उठ रहा था और वह खोमा-खोया सा जान पड़ता था । गली से निकलकर वह सड़क पर जा पहुंचा और थोड़ी देर इधर-उधर देखकर सस्वर बोला—

“वधन ! अशोक ! रीजेंट !”

और इन शब्दों पर वह आप ही चौंक पड़ा । विचार करने पर मालूम हुआ कि उसने यह शब्द बिना सोचे अवचेतन रूप से दोहराये हैं और वे सिनेमा के एक इश्तहारी तरते पर लिखे हुए हैं, जिसे एक आदमी पहियो पर घुमाता फिर रहा है, और वे शब्द क्रमश — फिल्म, एक्टर और सिनेमा घर का नाम है ।

“नारायण !”

किसी ने पुकारा और वह ठिठक गया ।

“इस तरह भागे क्यों जा रहे हो ?”

जगदीश उसके पीछे पीछे आ रहा था । अब वे दोनों साय-साय चलने लगे ।

‘तुमसे एक बात पूछना चाहता हू ।’

“पूछिये ।”

“पार्वती के खर्च की क्या व्यवस्था कर रखी है ?”

“खर्च की व्यवस्था !” नारायण जैसे नींद से जगा । वह अभी तक अपने आप में डूबा हुआ था, इसलिए जगदीश के शब्दों को पूरी तरह ग्रहण नहीं कर पाया था ।

“परसों राज मेरे पास आया था, उसने घर का दु ख रोते हुए कहा था कि बीस रुपये महीना मामा से मिलते हैं, उनसे खर्च नहीं चलता । यही बात आज पार्वती ने कही थी ।”

‘लेकिन दस रुपये महीना शीला देती है, दस रुपये बकील देता है और पंद्रह रुपये परिवार सहायक बनेटी की ओर से मिलते हैं । अगर इन पर भी खर्च नहीं चलता तो न चले और क्या हो सकता है ?’

“तुम इतने चिढ़े हुए क्यों हो।” जगदीश ने उसके मुँह की ओर देखते हुए पूछा।

“नहीं, चिढ़ा हुआ तो नहीं।” नारायण ने उत्तर दिया। लेकिन फिर भी अपने स्वर को स्वाभाविक न बना सका।

“बच्चों का घर है। मुमकिन है इतने में गुजारा न चलता हो। खयाल है कि पन्द्रहके रुपये का इन्तजाम और कर दिया जाये!”

“खुशी है आपकी।” नारायण बोला और एक मिनट रुककर हठान् कहा, “सोने के बटन बने हैं, फिर चूड़ियाँ बन जायेंगी।”

जगदीश ने उसके इन वाक्यों पर ध्यान नहीं दिया। वे एक मोड़ पर पहुँच गए थे, जहाँ से उनके रास्ते अलग-अलग होते थे।

“अच्छा मैं इधर चलता हूँ।” जगदीश ने कहा और वह बाईं ओर घूम गया।

नारायण का कदम फिर तेज-तेज उठ रहा था। वह परेशान था। और उसके मस्तिष्क में बहुत से विचार उठ रहे थे। इन विचारों में कोई श्रम का सम्बन्ध न था क्योंकि वह सोच नहीं रहा था, सोचना चाहता भी नहीं था। विचार अपने आप आ-जा रहे थे।

सड़क पर लोग चल रहे थे। वह उनकी ओर देख नहीं रहा था, जल्द जल्द चल रहा था, जैसे उसे किसी से कोई मरोकार न हो।

उसने कमरे में पहुँचकर दम लिया, घम से चारपाई पर सेट बना, जैसे मौलों की यात्रा करके आया हो और घरून से पुर और निश्चेष्ट सेटा रहना चाहता था; अपने आपको,

प्रत्येक वस्तु को मुँहा देना चाहता था। मन में उनपर राीक उठना था, पर उन्हें रोक नहीं था और इन्तजाम कर दिया जाये...” “गुशी

उसने जोर से गाँग छोड़ी और अपने आपको का प्रयत्न किया। लेकिन विचारों से से बेवम सोचने की दिना ही बदली।

तुम्हारे जीवन में भी आयेंगी या पत्रमद

उठा। उसे यह मोड़ घूमना पसंद नहीं था। फिर उलटे पाव लौट आया और पार्वती के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें सोच गया और उसका वह गौरवमय और स्वाभिमानो रूप मस्तिष्क में उभर आया—जब उसने कहा था, “दबन्नी की तो कोई बात नहीं, इस तरह बच्चों की भादतें बिगड़ जाती हैं।” वह इस वाक्य पर रुके रहना और पार्वती के इसी रूप को मस्तिष्क में बनाये रखना चाहता था। लेकिन वह रुक नहीं सका, दूसरे ही क्षण दृश्य बदल गया। प्रह्लाद का बटुआ खुला था और पुष्पा के नन्हें हाथ के नीचे पार्वती का हाथ फैला हुआ था। फिर वह फैलता ही चला गया।

विचारों का यह साकार रूप था। नारायण उन्हें छू रहा था, उसट-पलट कर देख रहा था। पार्वती उनसे सम्बन्धित होते हुए भी अलग खड़ी दिखाई दे रही थी। वह एक पत्नी और एक मा थी। वह एक ऐसी पत्नी थी जो पति की पूजा करती थी। जब वह बराबर दृष्टि से ओझल रहा तो बच्चे पूजा का केन्द्र बन गए। वह उनकी उचित और अनुचित मांग को पूरा करने के लिए दूसरों की मोहताज बनती गई। मोहताजी स्वाभिमान की शत्रु है। पति जेल में बसा गया, पार्वती से उसका आत्म-गौरव और स्वाभिमान छिन गया। नये विचारों में उसकी आस्था नहीं थी, पुराने टिक नहीं पाये। अब उसके भीतर रिक्त था—एकमात्र शून्य था। यह रिक्त, यह शून्य बढ़ता जा रहा था। जो रुपये, कपड़े और जेवर से नहीं भर सकता था। उसने अतृप्त भूख का रूप धारण कर लिया था...

दृश्य फिर बदला। जगदीश कह रहा था—“पंद्रहेक रुपये का और इन्तजाम कर दिया जाए।” नारायण का मन आत्मग्लानि से भर उठा। वह सोच रहा था कि मैंने बटन और चूटियों की बात क्यों कही? अब उसे पार्वती से नहीं अपने आप से घृणा हो रही थी।

“तुच्छता ही जीवन का अंग बनी रहेगी या कभी उत्कृष्टता भी आयेगी?”

वह ऊँचे स्वर में यह शब्द कह रहा था, अपने आपसे यह प्रश्न पूछ रहा था और शून्य में भँक रहा था। उसे अपने भीतर भी शून्य महसूस

“तुम इतने चिढ़े हुए क्यों हो।” जगदीश ने उसके मुख की ओर देखते हुए पूछा।

“नहीं, चिढ़ा हुआ तो नहीं।” नारायण ने उत्तर दिया। लेकिन फिर भी अपने स्वर को स्वाभाविक न बना सका।

“बच्चों का घर है। मुमकिन है इतने में गुजारा न चलता हो। खयाल है कि पन्द्रहेक रुपये का इन्तजाम और कर दिया जाये !”

“खुशी है आपकी।” नारायण बोला और एक मिनट रुककर हठात् कहा, “सोने के बटन बने हैं, फिर चूड़ियां बन जायेंगी।”

जगदीश ने उसके इन शब्दों पर ध्यान नहीं दिया। वे एक मोड़ पर पहुंच गए थे, जहां से उनके रास्ते अलग-अलग होते थे।

“अच्छा मैं इधर चलता हूं।” जगदीश ने कहा और वह बाईं ओर घूम गया।

नारायण का कदम फिर तेज-तेज उठ रहा था। वह परेशान था। और उसके मस्तिष्क में बहुत से विचार उठ रहे थे। इन विचारों में कोई क्रम या सम्बन्ध न था क्योंकि वह सोच नहीं रहा था, सोचना चाहता भी नहीं था। विचार अपने आप आ-जा रहे थे।

सड़क पर लोग चल रहे थे। वह उनकी ओर देख नहीं रहा था, जल्द-जल्द चल रहा था, जैसे उसे किसी से कोई सरोकार न हो।

उसने कमरे में पहुंचकर दम लिया, धम से चारपाई पर लेट गया, जैसे मौलों की यात्रा करके आया हो और थकन से चूर हो। वह स्थिर और निश्चेष्ट लेटा रहना चाहता था; अपने आपको, वातावरण को और प्रत्येक वस्तु को भुला देना चाहता था। मन में विचार उठते थे तो वह उनपर खीभ उठता था, पर उन्हें रोक नहीं सकता था—“पंद्रहेक रुपये का और इन्तजाम कर दिया जाये...” “खुशी है आपकी...” सूं...सूं... उसने जोर से सांस छोड़ी और अपने आपको इन विचारों से मुक्त करने का प्रयत्न किया। लेकिन विचारों से छुटकारा पाना सम्भव नहीं था। इस से केवल सोचने की दिशा ही बदली। “सुगन्ध और मुस्कुराहटें कभी तुम्हारे जीवन में भी आयेंगी या पतझड़ ही रहेगा?” वह परेशान हो

उठा। उसे यह मोड़ घूमना पसंद नहीं था। फिर उलटे पाव लीट आया और पार्वती के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें सोच गया और उसका वह गौरवमय और स्वाभिमानी रूप मस्तिष्क में उभर आया—जब उसने कहा था, “दवन्नी की तो कोई बात नहीं, इस तरह बच्चों की आदतें बिगड़ जाती हैं।” वह इस वाक्य पर हके रहना और पार्वती के इसी रूप को मस्तिष्क में बनाये रखना चाहता था। लेकिन वह हक नहीं सका, दूसरे ही क्षण दृश्य बदल गया। प्रह्लाद का बटुआ खुला था और पुष्पा के नन्हें हाथ के नीचे पार्वती का हाथ फैला हुआ था। फिर वह फैलता ही चला गया

विचारों का यह साकार रूप था। नारायण उन्हें छू रहा था, उलट-पलट कर देख रहा था। पार्वती उनसे सम्बन्धित होते हुए भी अलग खड़ी दिखाई दे रही थी। वह एक पत्नी और एक मां थी। वह एक ऐसी पत्नी थी जो पति की पूजा करती थी। जब वह बराबर दृष्टि से ओझल रहा तो बच्चे पूजा का केन्द्र बन गए। वह उनकी उचित और अनुचित मांग को पूरा करने के लिए दूसरों की मोहताज बनती गई। मोहताजी स्वाभिमान की शत्रु है। पति जेल में क्या गया, पार्वती से उसका आत्म-गौरव और स्वाभिमान छिन गया। नये विचारों में उसकी आस्था नहीं थी, पुराने टिक नहीं पाय। अब उसके भीतर रिक्त था—एकमात्र शून्य था। यह रिक्त, यह शून्य बढ़ता जा रहा था। जो रुपये, कपड़े और जेवर से नहीं भर सकता था। उसने अतृप्त भूख का रूप धारण कर लिया था...

दृश्य फिर बदला। जगदीश कह रहा था—“पढ़ेक रुपये का और इन्तजाम कर दिया जाए।” नारायण का मन आत्मग्लानि से भर उठा। वह सोच रहा था कि मैंने बटन और चूड़ियों की बात क्यों कही? अब उसे पार्वती से नहीं अपने आप से घृणा हो रही थी।

“तुच्छता ही जीवन का अग बनी रहेगी या कभी उत्कृष्टता भी आयेगी?”

वह ऊँचे स्वर में यह शब्द कह रहा था, अपने आपसे यह प्रश्न पूछ रहा था और शून्य में भाँक रहा था। उसे अपने भीतर भी शून्य महसूस

हो रहा था, जैसे उसने सब कुछ खो दिया हो, वह एक किंचित प्राणी हो — गुंवारे के मदुश हीन और तुच्छ !

पांव की घाप सुनकर वह हठात् उठ बैठा। अशोक ने कमरे में प्रवेश किया और उसके पास चारपाई पर आ बैठा। कुछ क्षण मौन के बीते। ख्याल था कि नारायण बात शुरू करेगा, लेकिन उसे चुप देख अशोक बोला, “बहुत परेशान नजर आते हो ?”

नारायण चुप रहा और अशोक की ओर देखने के बजाय दीवार पर एक मकड़ी की सरकते हुए देखने लगा।

“तुम मुस्कराने का यत्न कर रहे हो; पर मुस्करा नहीं सकते। आखिर तुम्हें किन बात का रंज है ?

“रंज कुछ नहीं” नारायण ने उत्तर दिया, “मैं सिर्फ मोच रहा हूँ कि मनुष्य जो चाहता है, कर नहीं सकता। अच्छा बनना चाहे तो बन नहीं सकता।.....”

“अपने आपको धोखा देने की कोशिश न करो।” अशोक ने मुस्कराते हुए कहा, “मैं देख रहा हूँ कि तुम्हें आघात लगा है और इमीलिए तुम भाग कर यहां आ लेते हो और अब ऊटपटांग हांक रहे हो।” अशोक रुका और प्यार से उसके कंधे पर हाथ रखकर फिर बोला—“घात यह है कि तुम पद्मा से प्रेम करते हो.....”

नारायण ने करुण दृष्टि से अशोक की ओर देखा और फिर आंखें झुका लीं। वह जिस मोड़ से बचना चाहता था, बरबस उसी पर घूमना पडा।

“हां, मुझे पद्मा से मुहब्बत थी।” कुछ देर चुप रह कर नारायण ने स्वीकार किया और अशोक की ओर देखते हुए कहना जारी रखा, “अब भी है। वह सुन्दर, शालीन और समझदार है। कौन आदमी है, जो उससे मुहब्बत नहीं करेगा। मुझे वाकई इस बात का रंज है कि मैं उसे हासिल नहीं कर सका। लेकिन मुझे राजेन्द्र से किसी प्रकार की ईर्ष्या नहीं, द्वेष नहीं और पद्मा से कोई गिला नहीं, मैं हृदय से उन्हे बघाई देता.....”

नारायण चुप हो गया और अशोक की ~~दृष्टि~~ ^{दृष्टि} ~~हृदय~~ ^{हृदय} ~~मुस्कुराने~~ ^{मुस्कुराने} लगा।

अशोक ने इस व्यक्ति को भली प्रकार समझ लिया था। वह उनकी कटुता, उद्वेगिता और मन की उलझनों को इसी प्रकार प्यार से और स्पष्ट विश्लेषण से दूर करता आया था। इसी से उनमें गूढ़ सम्पर्क आत्मोद्यता स्थापित हो गई थी। नारायण उसका अभार मानता था और जरा सी हमदर्दी पाकर खुल जाता था। अब भी कृतज्ञता में भीगा हुआ सा वह उसकी ओर देखता रहा। उसके मन में स्त्री और पुरुष सम्बन्धी बहुत से विचार उठ रहे थे। लेकिन वह सबल चुका था और जब वह अपने आप में होता था, तो उसे अधिक बोलना पसन्द नहीं था। इसलिए साव-सोचकर सक्षेप में कहा—

“हर मर्द के दिल में एक औरत बसती है।”

अब अशोक की बारी थी कि वह अपनी पडताल करे और देखे कि क्या उसके हृदय में भी नारी के लिए कोई स्थान सुरक्षित है।

उसे अपनी जीवन की दो घटनायें याद थीं, जो कभी नहीं भूलती थीं। एक बार शीला और वह रात गये किसी मुहिम से लौटे थे। अशोक उसे घर तक पहुंचाने जा रहा था। अलग होने से पहले उस दिन शीला ने कहा था—“मैं कई बार सोचती हूँ कि मेरा विवाह होना ही था तो...”

शीला जो बात सारा रास्ता सोचती आई थी, उसे जबान पर न ला सकी, लेकिन इस “तो” का मतलब अशोक बिना कहे ही समझ गया था।

इसी प्रकार एक दिन वह सुबह-सुबह किसी मीटिंग से लौट रहे थे। अजायबघर के पास पुलिस की नजर से बचने के लिए वे गुलाब के बूटों की ओट में छिप गये। शीला ने एक ताजा खिता हुआ फूल तोड़ कर अशोक को दिया और मुस्कुरा उठी।

ये दोनो घटनायें कई बार एक साथ स्मरण ही आतीं और अशोक सब कुछ मूल कर उनमें डूब जाता। एक दिन वह पुस्तक पढ़ते-पढ़ते ऊब गया और चाकू उठाकर अनमना-सा मेज कुरेदने लगा। वह काफी देर अपने आप में डूबा योही कुरेदता रहा और जब होश में आया तो देखा कि

बाईं ओर बिल्कुल दिल के सामने मेज पर "शीला" शब्द खुदा हुआ है। वह वहां अब तक इसी प्रकार खुदा हुआ था।

"ठीक है।" अशोक ने कहा, "हर औरत के दिन में मर्द और हर मर्द के दिल में एक औरत बसती है। हमें उनके बीच के विघ्नों और बाधाओं को दूर करना है। इस समाज में पति पत्नी से मांग की जाती है कि वे एक दूसरे को प्रेम करें। और हम यह चाहते हैं कि जो पुरुष और स्त्री एक दूसरे से प्रेम करते हैं, उन्हें पति-पत्नी बनने का अधिकार प्राप्त हो।"

गनी बाल्शेविक सिपाही की वर्दी पहने और बिगुल हाथ में लिए कमरे में दाखिल हुआ। वह विवाह-उत्सव में भी यही वर्दी पहन कर गया था और अब तक पहने हुए था।

"बलो, जुलूम!" उसने आते ही कहा—

नीचे बहुत से लोग जमा थे, और जुलूस की तैयारियां हो रही थी, जो 26 जनवरी को स्वतन्त्रता दिवस के सिलसिले में हर साल निकलता था।

चरवा और अहिंसा

वसन अब के भी आई। लेकिन इस बार सुगन्ध और उल्लास के स्थान पर रक्त और चीत्कार का उपहार लाई। सर्दो खत्म होते ही जर्मनी ने हवाई बमबारी के अलावा स्थल-युद्ध भी तेज कर दिया। उसके विजली के सदृश तेज हमले देखकर दुनिया दग रह गई। प्रथम विश्व युद्ध के बाद जो भौगोलिक सीमाएँ कायम की गई थी, वे नाज़ोवाद के आगे टूटने लगी। देखते ही देखते जर्मन सेना नारवे, हालैंड और डैनमार्क को रौंदती हुई बेलजियम में घुस आई। किसी से कुछ करते न बन पडा।

जर्मन सेना जिस तेजी से बढ़ रही थी, हमारी राजनीति उतनी ही उग्र होती जा रही थी। ब्रिटिश सरकार ने देश को युद्ध में शामिल कर लिया था, बल्कि चालीस करोड़ इंसानों की आजादी की माग की अपेक्षा की थी। मुट्ठी भर राजाओं और नवाबों के अतिरिक्त बच्चा-बच्चा अंग्रेज की इस घोषणा का मजाक उड़ा रहा था कि युद्ध जनतंत्र, स्वतन्त्रता और स्वाधीनता की रक्षा के लिये लड़ा जा रहा है। जिस सरकार के दावे इतने थोड़े हों, उसे जनता का सहयोग कैसे प्राप्त हो सकता है ?

कांग्रेस देश की प्रतिनिधि संस्था थी जिसकी बागडोर गांधी के हाथ में थी। वह अंग्रेज की आपत्ति से लाभ उठाना नहीं चाहता था। इंग्लैंड के गिरजाघरों पर बम गिरत देख उनकी घर्म-परायण आत्मा आहत हो उठती थी, और अपनी इस मनोगत भावना को वह अक्षरों द्वारा कई बार

घोषित कर चुका था। लेकिन कांग्रेस इधर कुछ सालों से मजदूरों और किसानों का दम भरती आ रही थी, गर्म दल वाले काफी संगठित थे, उनकी आवाज भी कुछ महत्व रखती थी, और वे देश को आजाद कराने के लिए विद्रोह पर तुले हुए थे। बम्बई में नब्बे हजार मजदूरों की हड़ताल हुई और उन्होंने देश को जबरदस्ती युद्ध में शामिल करने का विरोध किया। इस प्रकार के प्रदर्शन हर जगह हो रहे थे। जन-सागर में तूफान आया और तरंगें ऊंची उठ रही थी।

गांधी भी इन तरंगों को उठते देख रहा था और चिंतित था कि कहीं यह कावू से बाहर होकर तूफान न बन जायें। इसलिए उन्होंने सत्याग्रह करने का निश्चय किया। लेकिन वह कब होगा और कैसे होगा? यह किसी को कुछ मालूम नहीं था। प्रत्येक प्रान्त में सत्याग्रही कैम्प खोले गये, जिसमें आगामी सत्याग्रह के लिए लोगों को ट्रेनिंग दी जाने लगी। गांधी को आजादी की लड़ाई लड़ने के लिए ऐसे सत्याग्रही दरकार थे, जो न जीत से खुश हों और न हार से मायूस, वैयक्तिक कीर्ति और सांसारिक लाभ से निलिप्त हों और जो शत्रु को भी अपना मित्र समझें। ऐसे लोग वही हो सकते थे, जो खद्दर पहनते और चर्खा कातते हों।

अप्रैल के महीने में इसी प्रकार का सत्याग्रही कैम्प शालामार बाग के सामने लाहौर में भी खोला गया, जो पन्द्रह दिन तक जारी रहा और जिसमें प्रान्त के प्रमुख कांग्रेसी नेताओं और कार्यकर्ताओं ने चर्खा कातने और अपने हाथ से बतन साफ करने की ट्रेनिंग हासिल की। एक जनप्रिय आल इण्डिया लीडर इन कैम्पों का इंचार्ज था। वह इस कैम्प का उद्घाटन करने लाहौर आया और यहां उसने कैम्प की देख-भाल के अतिरिक्त हर रयाल के लोगों को मुलाकात का समय भी दिया। वामपक्षी इस प्रोग्राम से सहमत नहीं थे। अशोक के नेतृत्व में उनका एक वपद इस आल इण्डिया लीडर से मिलने आया। देश की राजनीतिक परिस्थिति पर कोई घंटा भर बात-चीत हुई। अशोक और उसके साथियों ने इस कैम्प-नीति की कड़ी आलोचना की। उनका कहना था कि देश की आजादी के लिए तत्क्षण प्रांतिकारी जनांदोलन शुरू करने की जरूरत है, इस कैम्पवाजी में व्यर्थ समय

नष्ट हो रहा है। जिस व्यक्ति को आजादी के लिए लड़ना है, उस पर चर्खा कातने और खदर पहनने की कैंद क्यों हो? आजादी की लड़ाई जनता की लड़ाई है, उसे सफल बनाने के लिए हमें जनता को साथ लेना होगा। गांधी बीस वर्षों से खदर, अहिंसा और सत्य का राग अलाप रहा है। अगर इतने अरसे में सच्चे सत्याग्रही तैयार नहीं हुए तो इन कैंम्पो से भी नहीं होंगे।

आल इण्डिया कैंम्प इन्चार्ज ने इन सब एतराजों को मुस्कराते हुए स्वीकार किया और स्पष्ट शब्दों में कहा—

“आप लोग जानते हैं कि मैं भी गांधी जी की अकसर बातों से सहमत नहीं हूँ। पर मुश्किल यह है कि इस समय वे देश के अग्रिम पर इतने छाये हुए हैं कि अगर उनकी लीडरशिप से इनकार किया जाय, तो नई लीडरशिप कायम करने में दस साल लगेंगे। दस साल में दुनिया कहीं से कहीं निकल जायेगी। इसलिए बेहतर यही है कि हम गांधी जी को ही अपना प्रोग्राम लेख करने के लिए कहे। जब हमें उनकी कमान में लड़ना है, तो उन्हीं के प्रोग्राम पर चलना भी होगा।”

“भाफ कीजियेगा इस सिलसिले में मैं आपसे सहमत नहीं हूँ।” अशोक ने विनम्र भाव से कहा, “यही बात यों भी कही जा सकती है कि अगर हमें सिर्फ इसी प्रोग्राम पर चलना पड़ा तो हमने 1930 से 1940 तक पिछले दस साल बेकार खोये हैं। अगर दस साल और गांधी हमारा नेता बना रहा, तो अगले दस साल भी हम बेकार खोयेंगे।”

आल इण्डिया लीडर मुस्कराया और कोई उत्तर देने के बजाय घड़ी पर नजर डाली।

“आप लोगो का समय खत्म हो गया। मुझे अब दूसरे लोगो से मिलना है।” उसने विनम्र घोषणा की।

जब आल इण्डिया लीडर वहाँ से उठकर दूसरे खेमे की ओर चला, तो मदन भी उसके पीछे-पीछे हो लिया और यों बातें करने लगा; जैसे उससे चिर-परिचित हो, जैसे किसी विशेष समस्या पर परामर्श करना हो। लेकिन चन्द कदम चलकर आल इण्डिया लीडर हठात् रुक। और झुकला

कर बोला—“तुम लोग पता नहीं क्या सोचते रहते हो।” उसके ये तेंवर देखकर मदन लौट आया।

“क्या बात थी?” गोपाल ने दरियापत किया।

“मैं कह रहा था कि कांग्रेस ने वजारतें छोड़कर गलती की है। हमें चाहिए था कि गवर्नरों को गिरफ्तार करके आजादी का ऐलान कर देते।” मदन ने मुट्ठियां भीचकर जोश से कहा।

“उन्होंने क्या उत्तर दिया?”

“उत्तर क्या देते तेज होकर बोले—साहब हमारी कौन सुनता है, वहां बस गांधी जी की चलती है, मैं खुद गवर्नरों को गिरफ्तार करने की बात कह रहा था।”

“इसका मतलब है कि वे भी आपकी राय से सहमत हैं?”

“बिलकुल” मदन ने सगर्व कहा और मुस्करा कर बोला, “दुनिया भर के बड़े आदमी हमेशा एक ही बात सोचते हैं।”

कैम्प का मैदान लम्बा-चौड़ा था। एक बाग में तम्बू लगाये गये थे, जिसमें रहन-सहन और मीटिंगें करने की व्यवस्था थी। हर शाम को पांच बजे चर्खा काता जाता था और इस मतलब के लिए आमों की घनी छाया में विशेष आयोजन से चौरस जगह बनाई गई थी, जिसमें लोग पंक्ति दर पंक्ति बैठकर चर्खा कात सकते थे। पांच बजने में दस-पन्द्रह मिनट बाकी थे, काफी लोग जमा हो गये थे और चर्खों को तेल दे रहे थे। जो लोग इस क्षेत्र में एकदम नये थे, लाला देमराज उन्हें चर्खे के साथ तिरछा बैठने का ढंग सिखा रहे थे। इतने में अशोक और उसके साथी तम्बू से बाहर निकले, लाला जी ने चुटकी ली।

“कभी कुछ रचनात्मक कार्य भी कर लिया करो, देश सिर्फ बातों से तो आजाद नहीं होगा?”

वे लोग ठहर गये और प्रह्लाद आगे बढ़कर बोला—“हम बे-अमल ही अच्छे। लेकिन आप यह बताइये कि आजादी के लिए आप लोग चर्खा ही क्यों कातते हैं, माला क्यों नहीं जपते?”

“छाज तो बोले छलनी क्यों बोले? कल तक कातते रहे और आज

व्यग्न करते हो।" लाला जी ने आँखें झपकाईं और मुह बिगाड़ कर कहा, "आईने में चरा शकल तो देखो, जब से बहादुर बने हो चेहरा काला पड़ गया है।"

"शायद मेरा चेहरा आपके लिए आईने का काम दे रहा है।" प्रह्लाद मुस्कराया।

"मजाक की बात नहीं प्रह्लाद जी, मैं सच कहता हूँ। कोई बीमारी हो तो इलाज कराइये।

"लाला जी बीमारी और क्या होगी?" एक दूसरे चर्खा-भक्न ने कहा, "गांधी के अध्यात्मवाद को छोड़कर भौतिकवाद की दलदल में जा फना है। और अब पछता रहा है।"

"नहीं, अभी वह समय नहीं आया।" लाला जी ने विद्रूप भाव से मुस्कराते हुए कहा, "जब समझ आयेगी तो पछतायेगा जरूर।"

"समझ आयेगी नहीं, आ गई है।" प्रह्लाद ने कहा और बात जारी रखी, "इस समय मुझे उन लोगों पर दया आ रही है, जो चर्खा कात कर आजादी चाहते हैं, जो यह नहीं सोचते कि अंग्रेजों के आने से पहले जब मशीनें नहीं थीं, हम सिर्फ चर्खा ही कातते थे, फिर गुलाम बयो बने?"

"देखा लाला जी, यह वही प्रह्लाद है, जो कल तक हमारे साथ झगडा करता था और आज उसे चर्खा कातना मूर्खता जान पड़ती है।" नारायण बोला।

"बेचारा भटक गया। उसे चर्खे के फायदे मालूम नहीं।" लालाजी आँखें मूढ़ कर झूमने लगे, जैसे वे सचमुच चर्खे के फायदों की कल्पना कर रहे हों।

"लालाजी म...माफ कीजियेगा। मुझे बीच में धोलने का मरज है।" पराशर ने धुआँ ऊपर छोड़ने के बाद कहा, "वह इतना अरसा आप लोगों के साथ रहा, उसे यह फायदे बयो न...नहीं बताये? बुद्धमल बधाऊमल बयो रहने द...दिया?"

"बताये बयो नहीं! गांधी जी हरिजन में बराबर लिख रहे हैं, न पढ़े तो यह उसका कसूर है."

“आप बजा फरमाते हैं। सोलह आने इसी का कसूर है।” नारायण ने लाला जी की बात का समर्थन किया और प्रह्लाद से पूछा, “बताइये साहब आपने क्यों नहीं पढ़ा हरिजन ?”

नारायण की बात पर प्रह्लाद मुस्कराया और बोला—“मैं तो हरिजन बराबर पढ़ता हूँ और चर्खे के फायदे भी जानता हूँ। सुन लीजिए जबानी याद हैं।” और उसने उंगुलियों पर गिनना शुरू किया, “1—स्वराज लेना हो तो चर्खा कातो; 2—मुक्ति प्राप्त करनी है तो चर्खा कातो 3—ब्रह्मचारी बनना है तो चर्खा कातो; 4—बंगाल के कंदी रिहा कराने हों तो चर्खा कातो और 5—सिपाही भरती होकर पिस्तौल-बन्दूक चलाना हो तो चर्खा कातो...”

“वाह! मुझे तो यह आज ही मालूम हुआ”, ताया चेतसिंह दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बोला, “जब कभी मैं नहीं बरसेगा तो मैं किसानों से कहूंगा—भाइयो, चर्खा कातो !”

सब ठहाका मार कर हंसे। ताया ने बात कुछ ऐसे स्वर में कही थी कि लाला जी के अपने साथी भी हंसने लगे।

“इन बातों को समझने के लिए श्रद्धा चाहिये, श्रद्धा के बिना काम नहीं चलता।” लाला जी ने अत्यन्त गम्भीर होकर कहा।

“और चर्खा भी नहीं चलता”

ताया फिर बोला और लोग फिर हंसे।

“जिस तरह करोड़ों हिन्दू पत्थर को सालिगराम बनाकर पूजते हैं और अपनी श्रद्धा से उसमें भगवान् देखते हैं, मैं चर्खे में भगवान् देखता हूँ।” प्रह्लाद ने गांधी के शब्द दोहराये।

एक मोटर उनके सामने आकर रुकी। उसमें से पंडित बदरीनाथ अपने प्राइवेट सेक्रेटरी के साथ उतरे। वे निहायत उमदा, महीन और कीमती खदर पहने हुए थे। बायें हाथ में चर्खा घाम रखा था और कलाई पर मोने की घड़ी बधी हुई थी, जो शायद स्विटजरलैंड से बनकर आई थी। चर्खा शुरू होने में अभी दो-चार मिनट बाकी थे। उन्होंने मोटर से उतर कर घड़ी पर नजर डाली और आल इण्डिया लीडर के तम्बू की ओर

चल दिये। जब वे करीब से गुजरे तो पराशर ने बीड़ी का बश लगाते हुए उनकी ओर देखा।

“कांग्रेस में एक शक्त वह था कि मुझसे गरीब आदमी ट...टके की ट...टोपी सिर पर रख कर लीडर बन सकता था। पर अब त... तो सात रुपये का चर्खा पास होना जरूरी है। हम सात रुपये कहा से लायें?”

पराशर अपनी बान ऊंचे स्वर में कह रहा था, मगर पंडित जी को सुनने की फुरसत नहीं थी। उन्हें प्रोग्राम ठीक समय पर शुरू कराना था। वे आल इण्डिया लीडर के साथ उलटे पांच तम्बू से निक्ले और चर्खा घातने के अहाते में पधारे। लाला देसराज ने सबके बीच में उनके लिए जो जगह बना रखी थी, दोनों नेता वहाँ बैठ गये। दूसरे लोगो ने भी अपने-अपने चर्खे सभाले और ठीक पांच बजे चर्खे का प्रोग्राम शुरू हुआ।

कोई पांच मिनट बीते थे कि अंग्रेजी में सबसे अधिक छपने वाले अखबार “ट्रीब्यून” का फोटोग्राफर फोटो लेने आ पहुँचा। तेज-तेज चलते हुए हाथ सहसा रुक गये और लोग यह सोचने लगे कि किस पहलू बँठने से पोज अच्छा आयेगा। जो सत्याग्रही तनिक दूर बैठे थे, वे सरक कर आल इण्डिया लीडर के करीब आने लगे ताकि उनके चेहरे भी फोकस की जद में आ जाए। तस्वीर में जितने अधिक चेहरे होंगे, लोगो पर उतना ही अधिक प्रभाव पड़ेगा, और जितना अधिक प्रभाव पड़ेगा स्वराज्य उतना ही निकट आयेगा। स्वराज्य नूरुद्दीन तकली हाथ में लिए आल इण्डिया लीडर के दाईं ओर विराजमान थे।

दो दिन बाद आल इण्डिया लीडर पण्डित बदरी नाथ को इस प्रान्तीय कैम्प का इन्चार्ज बना कर चला गया और प्रोग्राम चाकायदा जारी रहा। चर्खे के अतिरिक्त और बहुत सी सरगमियां थीं। ट्रेनिंग के लिए जितने सत्याग्रही आये थे, वे अपना भोजन अपने हाथ से तैयार करते, रात को वही सोते, बारी-बारी पहरा देते, दिन भर रचनात्मक-कार्य, खट्टर और अहिंसा पर भाषण सुनते थे।

देहात और छोटे शहरों से भी कुछ नौजवान आये हुए थे, एक रात उन्हें नाटक खेलने की सूझी। जद सब लोग अपने-अपने तम्बुओं में सो रहे थे, चंद नौजवान डाकू बनकर आ गए और उनके दो वालंटियर साथियों ने जो पहरा दे रहे थे, शोर मचा दिया—

“जागो, जागो ! चोर, चोर ! डाकू, डाकू !”

और उधर डाकूओं ने एक खाली तम्बू को लाठियों से पीटना शुरू किया। सारे कैम्प में भगदड़ मच गई।

“वालंटियर ! वालंटियर !”

“वालंटियर क्या करेंगे ? डाकूओं की तादाद ज्यादा है और वे हथियारबंद हैं।”

“पुलिस को बुलाओ।”

“पुलिस कैसे आ सकती थी, कैम्प और शहर में तीन-चार मील का फासला और टेलीफोन का कोई प्रबंध नहीं।”

लोग इधर-उधर भागने और छिपने की कोशिश करने लगे।

नाटक की इस सफलता पर छद्मवेपी ठाकू खिलखिला कर हंसने लगे। उन्हें हंसते देख भागने वालों पर भेद खुला और जान मे जान आई।

“क्यों जी, हम डाकूओं का मुकाबिला अहिंसा से नहीं कर सकते थे ?” खूब हंस लेने के बाद एक वालंटियर ने पूछा।

दिन में पंडित बदरी नाथ का अहिंसा पर भाषण हुआ था और उन्होंने कहा था कि अहिंसा कायरों का नहीं वीरों का हथियार है। हम अहिंसा द्वारा बड़ी से बड़ी शक्ति पर विजय पा सकते हैं, बसतों कि हमारे अपने मन में किसी प्रकार का भय उत्पन्न न हो।

पंडित बदरी नाथ तो घुप रहे, उत्तर दिया साला देसराज ने—

“क्यों नहीं, अहिंसा द्वारा डाकू तो क्या बड़ी से बड़ी शक्ति का

मुकाबला किया जा सकता है; बशर्ते कि हम सच्चे सत्याग्रही हों।”

जब लाला देसराज यह बात कह रहे थे, पंडित बदरी नाथ की नज़र अपनी कलाई पर जा पड़ी, उनकी सास अभी तक ठिकाने नहीं आई थी, उखड़े स्वर में बोले—

“जरा ‘‘लालटेन जलाना, मेरी घड़ी’’जाने कहा गिर पड़ी ?”

कंकर

हालात तेजी से बदल रहे थे। अंग्रेजों की साढ़े, तीन लाख सेना फ्लैंडर्ज के युद्ध-क्षेत्र से पिट-पिटाकर भागी और युद्ध-सामग्री पीछे छोड़ आई। फ्रांस की सिगफ्रैड पंक्ति सहज में टूट गई और योरुप की इस एक नम्बर शक्ति ने दो सप्ताह में हथियार ढाल दिए। साम्राज्य के पांच उखड़ गए थे। वह हर जगह पिट रहा था, भाग रहा था, नाजी आक्रमण के आगे वह अपने आपको दुबल चूहे के सदृश विवश और लाचार महसूस कर रहा था; प्राण-रक्षा के लिए बिल बूढ़ रहा था।

लेकिन हिन्दुस्तान में यही चूहा हिसक दरिदा बना हुआ था। ब्रिटिश साम्राज्य का प्रतिनिधि वायसराय नित्य नए जंगी कानून और आर्डिनेंस लागू कर रहा था। आजादी की मांग करने वालों की जबान-बन्दी हो रही थी। क्रांतिकारी शक्तियों के दमन के लिए बर्बर शक्ति हरकत में आ चुकी थी। कांग्रेस ने बार-बार सहयोग का हाथ बढ़ाया, लेकिन दम्भी शासक ने इसकी तनिक भी परवा नहीं की। गर्म दल वाले यह सब कुछ सहन करने को तैयार नहीं थे, वे चाहते थे कि समझौते और सहयोग की बातें छोड़कर क्रांति का पथ अपनाया जाय।

पर गांधी। निराश नहीं था वह सोचता था कि जाने कब शत्रु का हृदय-परिवर्तन हो जाय, कब वह अपने आप स्वराज दे दे और सत्य और अहिंसा की विजय का डंका संसार में बज उठे। फ्रांस की हार के बाद ब्रिटिश सरकार को अपनी सेवार्यें अर्पित करते हुए उसने लिखा था कि यदि वे हथियार छोड़ कर अहिंसा से हिटलर का मुकाबला करना चाहें, तो मैं नेतृत्व करने को तैयार हूँ।

अग्नेज ने न हथियार डाले और न गांधी को युद्ध का नेतृत्व सौंपा, पर उसे यह विश्वास हो गया कि देश की आजादी की समस्या चाहे कितनी ही महत्वपूर्ण क्यों न हो, गांधी अहिंसा के सिद्धांत का परित्याग नहीं करेगा और इस सकट में हमें परेशान भी नहीं करेंगा। चुनावों से गर्मदल वालों और श्रान्तिकारी नौजवानों पर हमला करने का अवसर मिल गया। जुलाई के आरम्भ में पुलिस ने विभिन्न शहरों और कस्बों में एक साथ छापे मारे और हजारों नौजवानों को गिरफ्तार कर के जंगी नजरबन्दों के कैम्प में भेज दिया।

उस दिन जो लोग गिरफ्तार हुए, उनमें राजेन्द्र, पराशर, तारा सिंह और राजाक शामिल थे, अशोक, तिलक की तरह रूपोश हो गया, और वह हाथ नहीं लगा।

ब्रिटिश सरकार का हमला एक बार शुरू होकर जारी ही रहा, जिसे जवान खोलते देखा, भूट गिरफ्तार कर लिया। लेखराम और बलवन्त की अवधि खत्म हो चुकी थी, लेकिन उन्हें रिहा करने के बजाय जेल ही से जंगी कैदी बनाकर नजरबन्दों के कैम्प में भेज दिया। तीन-चार दिन बाद मदन भी गिरफ्तार हो गया।

लोगों को जेल जाते देख गनी को आश्चर्य होता था कि उसे क्यों गिरफ्तार नहीं किया जाता? जब उसकी अपनी समझ में कुछ न आया तो नारायण से दरियाफ्त करने पर मालूम हुआ कि सरकार जिन लोगों को ज्यादा खतरनाक समझती है, सिर्फ उन्हीं को गिरफ्तार कर रही है।

अब गनी के लिए यह बात असह्य थी कि वह सरकार के लिए खतरनाक नहीं है। इसके बाद उसने नियम बना लिया कि वह हर रोज बालशेविक सिपाही की वर्दी पहनकर दफ्तर से निकलता और सारा-सारा दिन सड़कों पर घूमता रहता और मुट्ठी भीचकर हवा में हिलाते हुए प्राणों की समस्त शक्ति से कहता—“मैं सरकार के लिए खतरनाक हूँ।”

फिर भी दो महीने बीत गये, उसे किसी ने गिरफ्तार नहीं किया।

शहर सरकार हरेक खतरनाक आदमी को गिरफ्तार करने लगती तो उसे हिन्दुस्तान के अस्सी फीसदी लोग जंगी कैदी बनाकर जेलों में भेजने पड़ते । इस समय कौन देश-भक्त अंग्रेज के लिए खतरनाक सिद्ध होना नहीं चाहता था ?

कल की ही बात है कि नारायण एक मरम्मत की दूकान पर सार्ईकिल को पंचर लगवा रहा था । मिस्तरी ने उसे खद्दर पहने देख उसके कांग्रेसी होने का अनुभव लगाया और पूछा—

“कहो जी, अब कांग्रेस क्या कर रही है ? हम तो इन्तजार करते-करते थक गये । कुछ-न-कुछ जरूर होना चाहिए ।”

एक फल बेचने वाला खोमचा सिर पर उठाये पास से गुजर रहा था, मिस्तरी की बात सुनकर ठिठक गया और उसका समर्थन करते हुए बोला—

“यही तो मौका है, कांग्रेस को जरूर कुछ करना चाहिए ।”

प्रत्येक देशवासी के दिल से यही ध्वनि निकल रही थी, जो प्रतिक्षण दृढ़ और ऊंची होती जा रही थी । यहां तक कि गांधी ने भी महसूस किया कि यदि इस समय कोई कार्रवाई न की गई तो सम्भव है कि लोग काबू से बाहर हो जायें और अंग्रेज के प्रति उनके मन में जो तीव्र घृणा है, वह विद्रोह का रूप धारण कर ले ।

सत्याग्रही तैयार हो चुके थे । बड़े दिनों से आंदोलन की बातें चल रही थी । आखिर सितम्बर के मध्य में आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन बम्बई में हुआ और उसमें गांधी के विचार प्रस्ताव के रूप में प्रस्तुत हुए ।

प्रस्ताव यह था । सरकार से तकरीर की आज्ञादी की मांग की जाय । मांग स्वीकार न हो तो सत्याग्रह किया जायेगा और सत्याग्रह सामूहिक नहीं, व्यक्तिगत होगा । हर एक आदमी को सत्याग्रह करने से पहले गांधी से आज्ञा लेनी होगी । और आज्ञा सिर्फ उसी को मिलेगी, जो कांग्रेस का सदस्य हो, चर्खा कातता हो और अहिंसा के सिद्धान्त को शुद्ध हृदय से मानता हो ।

वामपक्षियों ने सशोधन पेश किया कि चर्खा कातने और काग्रेस का सदस्य होने की शर्त व्यर्थ है और व्यक्तिगत सत्याग्रह के बजाये सविनय मग का सामूहिक आंदोलन शुरू किया जाये। उनके एक प्रतिनिधि ने मूल प्रस्ताव के विरोध में भाषण करते हुए कहा 'यह व्यक्तिगत सत्याग्रह क्रांतिकारी शक्तियों को काबू में रखने की एक सोची समझी चाल है। अगर हम अब भी चूक गये तो आने वाली पीढ़िया हमें कभी माफ नहीं करेंगी और इतिहास में इसे इनकलाब के साथ गढ़ारी लिखा जायेगा।'

यह प्रतिनिधि अशोक था, जो गुप्त रूप से वहाँ पहुँचा था। वह अपनी बात कहकर मंच से उतरा और जाने कहा गायब हो गया।

लेकिन सशोधन गिर गया। गांधी का मूल प्रस्ताव बहुमत से पास हुआ। एक अलग प्रस्ताव द्वारा सत्याग्रह कब और कैसे शुरू हो, यह काम सर्वाधिकार सहित, गांधी को सौंप दिया गया।

अगले दिन सुबह सवेरे नारायण और प्रह्लाद बरामदे में बैठे थे। गनी भीतर चाय बना रहा था। इतने में अखबार आ गया। नारायण और प्रह्लाद ने काग्रेस अधिवेशन की कारंवाई बड़ी उत्सुकता से पढ़ी और पढ़ कर एक दूसरे का मुँह ताकने लगे।

"आखिर इससे बनेगा क्या?"

'कुछ नहीं, वजारतें छोड़ने की तरह यह भी एक प्रोटेस्ट है। सरकार के कान पर जू तक नहीं रेंगेगी।' प्रह्लाद बोला और कटुता का एक घूट भर कर दोबारा कहा "अशोक के कथानुसार हमने यह दस माल व्यर्थ खोये हैं।'

इतने में गनी बाहर आया और अखबार देखकर पूछा--

"क्या खबर है?"

"कांग्रेस ने पास कर दिया है कि गांधी जी सत्याग्रह शुरू करेंगे।"

गनी ने नारायण के होठों पर विद्रूप और कटुता भरी मुस्कराहट नहीं देखी और यह भी नहीं सोचा कि उसने सत्याग्रह शब्द पर खास जोर क्यों दिया है। वह खबर सुन कर प्रसन्न हुआ और अपने मनोगत उदगारों को व्यक्त करने के लिए भीतर से बिगुल उठा लाया।

“कामरेड गनी खुश तो हो रहा है, लेकिन उसे शायद जेल जाने की भी इजाजत न मिले।” प्रह्लाद ने उसके जोश को देखते हुए कहा।

गनी बिगुल बजाने के लिए फेफड़ों का सारा जोर लगा रहा था; लेकिन उसमें से आवाज नहीं निकलती थी। उसने बिगुल को उलटा-पलटा, जोर से हिलाया, भटका और दोबारा फूंक मारी; लेकिन आवाज फिर भी नहीं निकली।

“कामरेड। कल शाम महेंदी इससे खेल रहा था, उसने कंकर न डाल दिया हो?” उसे परेशान होते देख नारायण बोला।

“कंकर!”

गनी बिगुल के आर-पार भांकते हुए चिल्लाया।

(1943)

□□□

